तुम मर्त्य-लोकवासी प्राणियोंके मुख्य महाराज हो। तुम शान्त, धर्म्ममें तत्पर, जितेन्द्रिय और शूर हो; तुम्हारी बुद्धि, भक्ति तथा महत् श्रद्धासे देवताओंकी परमप्रीति प्राप्त हुई है, इससे मैं तुम्हें अभिलषित वरदान करूंगा।"

मान्धाता बोले, हे भगवन्! मैं निज मस्तकसे आपको प्रसन्न करके निश्चय ही उस आदिदेव विष्णुके दर्शनकी इच्छासे अन्य सब कामना परित्याग करके साधुओंसे अवलम्बित और लोक दृढ़ बनके बीच गमन करनेकी इच्छा करता हूं! मैंने विपुल, अप्रमेय क्षात्र धर्म्मसे सबको अपने वशमें करके पालन किया; परन्तु आदिदेव विष्णुसे जो धर्म्म प्रवृत्त हुआ है, किस प्रकार उस लोकश्रेष्ठ धर्म्मका आचरण किया जाता है; उसे नहीं जान सका।"

इन्द्र बोले, क्षत्रिय धर्म्मके बिना सब लोग धर्म्मकी पराकाष्ठाको नहीं प्राप्त होते, क्योंकि पहिले आदिदेव नारायणसे क्षात्र धर्म्म ही प्रवृत्त हुआ था, और उसके अनन्तर उस हीसे उसके अङ्गरूप इतर धर्म्म सब प्रवृत्त हुए हैं। हे राजन्! अगभूत ये सब धर्म्म अचिरस्थायी हैं, परन्तु परिव्राजक धर्म्मके सहित यह क्षात्रधर्म्म ही अनन्त और सबसे श्रेष्ठ है। सब धर्म्म ही इस क्षात्र धर्म्ममें प्रविष्ट हैं, इस ही कारण आर्य्य लोग इसे श्रेष्ठ कहा करते हैं पहिले विष्णुने अत्यन्त तेजस्वी देवताओं और ऋषियोंके कर्म्मसे प्रसन्न होके क्षात्र धर्म्म अवलम्बन करके ही उन लोगोंको शत्रुओंके हाथसे बचाया था; यदि वह अप्रमेय भगवान् विष्णु देवताओंके शत्रु असुरोंका नाश न करते, तो ब्राह्मण लोग, ब्रह्मा, क्षात्रधर्म्म अथवा ब्रह्मादि अन्य किसी धर्म्मकी भी रक्षा न होती। देवताओंमें श्रेष्ठ आदि देव विष्णुने पराक्रम प्रकाश करनेके वास्ते असुरोंके सहित इस पृथ्वीको नहीं जय किया, परन्तु उसमें ब्राह्मणोंकी रक्षा करना ही उनका मुख्य उद्देश्य था। क्योंकि ब्राह्मणोंके नष्ट होनेसे चारों वर्ण अथवा चारों आश्रम आदि कोई धर्म्म ही न रहते। सैकड़ों प्रकारसे नष्ट हुआ वैष्णव धर्म्म क्षात्र धर्म्मके जरिये फिर वृद्धिको प्राप्त हुआ है; और प्रति युगोंमे प्रवृत्त ब्राह्मण धर्म्म भी क्षात्र धर्म्मसे रक्षित हुआ है, इस ही कारण आर्य्य लोग क्षात्रधर्म्म कोही श्रेष्ठ कहा करते हैं। रणभूमिमें शरीर त्यागना, सब प्राणियोंके ऊपर कृपा प्रकाशित करनी, सब लोगोंकी यथार्थ अवस्थाको मालूम करना, उन लोगोंका पालन तथा रक्षा और दुखित तथा पीड़ित राजाओंका क्लेशोंसे मुक्त करना,— ये सब विषय क्षात्रधर्म्ममें विद्यमान हैं।

महाराज! राजाके भयसे ही सब लोग मर्य्यादा रहित, काम-क्रोधके वशीभूत और पाप कर्म्ममें प्रवृत्त नहीं होते, इस ही से अन्य सब धर्म्मोंके जाननेवाले बुद्धिमान् राजधर्म्मको ही धन्यवाद दिया करते हैं। सब प्राणी पुत्रकी भांति राजासे पालित होकर निर्भय चित्तसे पृथ्वीपर विचरते रहते हैं। यह लोकश्रेष्ठ क्षात्रधर्म्म सब प्रकारसे समस्त धर्म्मोंका साररूपी है, और इसके जरियेसेही मोक्ष-पद प्राप्त होता है।

६४ अध्याय समाप्त।

इन्द्र बोले, हे राजन्! तुम्हारे समान प्रजासमूहके हितमें तत्पर राजाओंको इसी भांति सब धर्म्मोंसे युक्त और समस्त धर्म्मोंसे श्रेष्ठ क्षात्र धर्म्मकी सब भांतिसे रक्षा करनी उचित है; क्योंकि उसमें अन्यथा होनेसे प्रजाका अभाव होगा। सब जीवों पर कृपा करनेवाला राजा सब भांतिसे प्रजा पालन, राजसूय आदि यज्ञों और जिस प्रकार प्रचुर परिमाणसे सब भांतिके शस्य उत्पन्न हों, उसीका अनुष्ठान करे; भैक्षचर्य्यके अतिरिक्त अन्य सब आश्रमोंमें निवास और रणभूमिमें देहत्यागरूपी श्रेष्ठ

धर्म्माचरण करे। मुनि लोग दानको ही श्रेष्ठ कहा करते हैं, उसमें शरीर दान ही सबसे श्रेष्ठ है। हे राजन्! जिस भांति राजा लोग सदा राजधर्ममें अनुरक्त होकर बहुश्रुत गुरुकी सेवा और आपसमें युद्ध करके रणभूमिमें निज शरीर दान किये हैं, उसे तुमने प्रत्यक्ष मालूम किया है। इसके अतिरिक्त धर्म्मकी इच्छावाले क्षत्रिय केवल मात्र सनातन धर्म्म रूप ब्रह्मचर्य्य नाम आश्रममें विचरें, और साधारणके विचार कार्य्योंमें प्रवृत्त होकर किसीको प्रिय अथवा अप्रिय न समझें। चारों वर्णोंका स्थापन, प्रजापालन और पहिले कहा हुआ याग, नियम, पुरुषार्थ तथा सब भांतिके उद्योग विद्यमान रहनेसे ही पण्डित लोग सब धर्म्मोंसे युक्त क्षात्रधर्म्मको ही श्रेष्ठ धर्म्म कहा करते हैं। "जो पुरुष निज आचरणीय धर्म्मका अभ्यास करके निज धर्म्माचरण नहीं करते, आर्य्य लोग उन मनुष्योंको सदा अर्थलोपक, मर्य्यादाहीन और पशु तुल्य कहा करते हैं। हे राजन्! जब कि अर्थयागसे ही सब नीति मालूम होती हैं, तब सब आश्रमोंसे राजधर्म ही कल्याणकारी है। तीनों वेदोंके जाननेवाले ब्राह्मणोंके, यज्ञादि और अन्य ब्राह्मणोंके जो सब आश्रम धर्म्म कहे गये हैं, पण्डित लोग इन दोनों कर्म्मोंकोही अवश्य आचरणीय कहते हैं, और इसके अतिरिक्त वे अन्य कोई कर्म्म करने पर शूद्रकी भांति शस्त्रसे मारने योग्य होते हैं। हे राजन्! ब्राह्मण चारों आश्रमों तथा वेदमें कहे हुए धर्म्मका आचरण करें, परन्तु शूद्रादि वर्ण कभी भी उस धर्म्मका आचरण न करें और अन्य धर्म्ममें प्रवृत्त "ब्राह्मणोंके विषयमें भी वैसी व्यवस्था नहीं कही गई है। महाराज! जो जैसा कर्म्म करता है, उसके अनुरूप ही धर्म्म होता है और वह उस धर्म्मका स्वरूप ही होता है। "ब्राह्मण यदि कुकर्म्ममें रत होके निज कर्त्तव्य कर्म्मोंको न करे, तो वह सम्मान-लाभके योग्य नहीं होता और सबका अविश्वासी होजाता है। हे राजन्! यह धर्म्म सब धर्म्मोंसे युक्त है, इस ही कारण क्षत्रियोंको इस धर्म्मके गौरवका उपाय करना उचित है। महाराज! इन सब कारणोंसे मेरे मतमें जैसे वीर धर्म्मके बीच और पुरुष ही मुख्य हैं, वैसे ही सब धर्म्मोंके बीच राजधर्म्म ही मुख्य है।"

मान्धाता बोले, हे भगवान सुरनाथ! यवन, किरात, गान्धार, चीन, शबर, बर्व्वर, शक, तुषार, कङ्क, पह्लव, अन्ध्र, मद्र, पौण्ड्र, पुलिन्द, रमठ और काम्बोज लोग तथा ब्राह्मण क्षत्रियोंसे उत्पन्न हुए सब इतर जाति, वैश्य और शूद्र लोग राज्यके बीच स्थित होके किस प्रकार धर्म्माचरण करेंगे और मेरे समान मनुष्य किस प्रकार दस्युओंको धर्म्ममें स्थापित करेंगे, मैं यह सब आपके निकटमें सुननेकी इच्छा करता हूं, क्योंकि आप ही मेरे समान क्षत्रियोंके परम बन्धु हैं।"

इन्द्र बोले, सब डाकुओंको माता पिता आचार्य्य गुरु आश्रमवासी और राजाओंकी सेवा करनी उचित है। वेदमें कहे हुए कर्म्म धर्म्म और श्राद्धादि पितृयज्ञ शूद्रका भी कर्त्तव्य कर्म्म कहके वर्णित हुआ है। वे लोग समयके अनुसार सदा ही द्विजोंको कूप; प्रपा शय्या और दूसरी सब वस्तु दान करें। दस्युओंको सदा अहिंसा, सत्य, क्षमा, पवित्रता, अद्रोह-वृत्ति, विभागका पालन, स्त्री-पुत्रोंका भरण पोषण इन सब धर्म्मोंका आचरण करना उचित है। उन ऐश्वर्य्यकी इच्छा करनेवाले डाकुओंको सब भांतिके यज्ञ करके शास्त्रोंकी कही हुई दक्षिणा और महार्ह-पाकयज्ञमें प्राणियोंको अन्नदान करना उचित है। हे पापरहित महाराज! पहिलेसे ही दस्युवृत्तिवाले पुरुषोंके विषयमें यही सब धर्म्म कहे गये हैं, और सब लोगोंको ऐसा ही आचरण करना उचित है।

मान्धाता बोले, मनुष्य लोकमें चारों आश्रमों

और वर्णोंके अन्तर्गत वर्त्तमान समस्त दस्यु लोग नष्ट हुआ करते हैं, इसका क्या कारण है?

इन्द्र बोले, हे पापरहित! दण्डनीतिके नष्ट और राजधर्म्मकी अस्थिरता होनेपर सब कोई राजदौरात्म्यदोषसे मोहित होजाते हैं। महाराज! इस सत्ययुगके निवृत्त होनेपर सब आश्रमोंमें विकल्प उपस्थित होगा, और पृथ्वीपर अनगिनत जटा आदि चिन्हधारी भिक्षुक भ्रमण करेंगे। वे लोग काम क्रोधके वशमें होकर प्राचीन धर्म्म की परम गतिमें अवज्ञा प्रकाशित करके असत् मार्गको अवलम्बन करेंगे। परन्तु दण्डनीतिसे पापबुद्धिवालोंके निवृत्त होनेपर वह मङ्गलमय परम नित्यधर्म्म कदापि विचलित नहीं होता, जो सब लोगोंके गुरु राजाकी अवमानना करता है, उसके दान होम वा श्राद्ध आदि कुछ भी फलदायक नहीं होते। महाराज! अधिक क्या कहें देवता लोग भी सनातन देवरूपी मनुष्योंके स्वामी धर्म्मात्मा राजाकी अवमानना नहीं करते भगवान प्रजापति (ब्रह्मा) ने इस अखिल जगत्की सृष्टि की है, परन्तु वह भी इसके प्रवृत्ति और निवृत्तिके वास्ते सब धर्म्मोंके बीच क्षात्रधर्म्मकी ही इच्छा किया करते हैं। जो लोग प्रवृत्त धर्म्म गतिको स्मरण करके उसके अनुसार कार्य्य करते हैं, वह पुरुष ही हमारे मान्य और पूज्य हैं; क्यों कि वैसे धर्म्मसे ही क्षात्रधर्म्म प्रतिष्ठित है।"

भीष्म बोले, इतनी कथा कहके इन्द्ररूपधारी विष्णु भगवानने देवताओंमें घिरकर निज अच्युत नित्यपद स्थानके उद्देशसे गमन किया। हे पापरहित! जब कि उत्तम चरितसे युक्त सब कर्म्म पहिलेसे ही इसी प्रकार होते चले आये हैं, तब कौन बहुश्रुत सचेतन जीव उस क्षात्रधर्म्म की अवमानना करेगा? अन्याय रीतिसे प्रवृत्त और निवृत्त सब धर्म्म ही मार्गमें चलनेवाले अन्धे भांति नष्ट होते हैं। हे पापरहित पुरुषसिंह! तुम सदा ही उस आदि कालसे प्रवर्त्तित और प्राचीन लोगोंके शरण स्वरूप क्षात्र धर्म्मका आचरण करो; उससे ही तुम्हारा मनोरथ पूरा होगा।

६५ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! आपके कहे हुए वाणप्रस्थ आदि चारों आश्रमोंके सब धर्म्म मैंने संक्षेप रूपसे सुना, परन्तु उससे मेरा मन विशेष परितृप्त नहीं हुआ; इससे आप विस्तार पूर्व्वक फिर उन सब कर्म्मोंको मेरे समीप वर्णन करिये।

भीष्म बोले, हे महाबाहो युधिष्ठिर! जो सब साधु-सम्मत धर्म्म मुझे विदित है तुम्हें वह सब मालूम हुआ है; परन्तु हे धार्म्मिक श्रेष्ठ महाराज युधिष्ठिर! तुम जो मुझसे सिद्धान्तगवात धर्म्मोंका विषय पूछते हो, उसे सुनो! हे मनुष्य श्रेष्ठ कुन्ती पुत्र! इन चारों आश्रमोंके कर्म्मोंके सब भांतिके लिगही महा श्रेष्ठ राजाओंके आचरित राजधर्म्ममें वर्त्तमान हैं। हे युधिष्ठिर! राजा लोग दण्डनीतिके नियमानुसार प्रजापालन करनेसे काम-क्रोधसे रहित समदर्शी यतियोंकी भांति सन्न्याससे प्राप्त होने योग्य ब्रह्मलोकको प्राप्त करते हैं। जिन्होंने ज्ञान प्राप्त किया है, यथा स्थानमें दान निग्रह और अनुग्रह प्रयोग करते और शास्त्रमें कहे हुए सब कार्य्योंका आचरण किया करते हैं; वह गार्हस्थ्य पुरुषोंके प्राप्त होने योग्य स्थानको अनेक युक्तिसे प्राप्त करते है। हे पाण्डुपुत्र! जो यथा रीतिसे प्रजासमूहको पालन किया करते है, वह राजा सब भांतिसे सन्न्यासियोंके पाने योग्य ब्रह्म-लोकको प्राप्त करते हैं। जो विपत्में पड़े हुए ज्ञाति, मित्र और जिनके सङ्ग सम्बन्ध है, ऐसे लोगोंको सामर्थ्यके अनुसार विपत्से बचाते हैं, वे वाणप्रस्थ पुरुषोंके भांति मोक्ष पद पाते हैं। हे पुरुषसिंह कुन्तीपुत्र!

लोकसमाजमें मुख्य धर्म्मात्माओंमें श्रेष्ठ पुरुषोंके सत्कार करनेवाले, नित्य ही बहुतसे पितृयज्ञ भूतयज्ञ और मनुष्य यज्ञोंके करनेवाले; देवयज्ञोंसे उपस्थित अतिथि और अन्य प्राणियोंके यथावत सत्कार करनेवाले, और धर्म्मात्माओं की रक्षाके वास्ते शत्रुराज्यको दमन करनेवाले, ये सब ही वाणप्रस्थ पुरुषोंकी भांति मोक्षपद प्राप्त करते हैं, हे राजेन्द्र पृथापुत्र! जो सब प्राणियोंका पालन और निज राज्यकी रक्षा करते हैं वे राजा प्रजापालनकी संख्याके अनुसार उतनेही यज्ञोंके फललाभ करके सन्न्याससे प्राप्त होने योग्य ब्रह्मलोकमें गमन करते हैं। सदा वेदाध्ययन, क्षमा, आचार्य्यकी पूजा और गुरुसेवासे भी ब्रह्मलोक प्राप्त होता है। धर्म्मपूर्व्वक नियमित जप और देवपूजामें रत राजा लोग धार्म्मिक पुरुषोंके प्राप्त होने योग्य पदको पाते हैं। प्राण संशय उपस्थित होनेपर भी जो राजा "विजय लाभ अथवा मृत्यु ही होगी," ऐसा ही निश्चय करके युद्धमें प्रवृत्त होते हैं, वे ब्रह्मलोक प्राप्त करते हैं। हे भारत! जो शठतारहित होकर सब जीवोंके विषयमें सरल भाव प्रकाशित करते हैं; उन्हें भी ब्रह्मलोक प्राप्त होता है। जो वाणप्रस्थ और तीनों वेदोंके जाननेवाले ब्राह्मणोंको बहुत सा धन दान करते हैं, वे वाणप्रस्थ पुरुषोंके पाने योग्य स्थानको प्राप्त करते हैं। हे भारत! जो राजा सब जीवोंपर दया और अनृशंसता प्रकाशित करता है, वह इच्छानुसार सब प्रकारका स्थान लाभ कर सकता है। हे पार्थ कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर! बालक और बूढ़ोंके विषयमें कुछ निठुर व्यवहार न करनेसे इच्छानुसार स्थान प्राप्त होता है। हे कुरुश्रेष्ठ!" दूसरेके बलसे पीड़ित शरणागत जीवोंका परित्राण करनेसे गृहस्थोंके पाने योग्य पद प्राप्त होता है। चराचर जीवोंकी सब भांतिसे रक्षा और यथा उचित पूजासे गार्हस्थ्य पद प्राप्त होता है।

हे पार्थ! जेठे भाईकी स्त्री, भ्राता, पुत्र और पौत्रोंके समयानुसार निग्रह वा अनुग्रहके कार्य्य ही गृहस्थोंके कर्त्तव्य कर्म्म हैं। हे पुरुषसिंह! प्रसिद्धात्मा पूजनीय साधुओंकी पूजा आदि करना ही गृहस्थ कर्म्म है। जो पुरुष विधाताकी बनाई धर्म्मरीतिसे निवास करते हैं वह सब आश्रमोंके प्राप्त होने योग्य मङ्गलमय स्थान प्राप्त करते हैं। आश्रमस्थ प्राणियोंको निज गृहमें आवाहन करके उन्हें भोजन आदि दान करना ही गृहस्थाके कर्म्म हैं। हे कुन्तीनन्दन युधिष्ठिर! जिस पुरुषमें कोई गुण भी नष्ट नहीं होते, आर्य्य लोग उस पुरुषश्रेष्ठको आश्रमस्थ कहा करते हैं। हे युधिष्ठिर! सब आश्रममें ही स्थानमान, कुलमान और अवस्थामानको रक्षा करते हुए निवास करना उचित है। हे पार्थ! राजा लोग देशधर्म्म और कुलधर्म्मोंको यथारीतिसे पालन करनेसे सब आश्रमोंमें प्राप्त होने योग्य फल लाभ करते हैं। यथा समय पर प्राणियोंको यथायोग्य विभूत और उपाय प्रदान करनेसे साधुओंके आश्रममें निवास करते हैं। हे कौन्तेय! भय उपस्थित होने पर धर्म्माधर्म्म और सैनासे रहित होकर भी जो धर्म्मकी ओर विशेष दृष्टि रखते हैं, वे सब आश्रमोंसे प्राप्त होने योग्य फल लाभ कर सकते हैं। धर्म्म करनेवाले पुरुष जिसके राज्यमें यथारीतिसे रक्षित होकर जो कुछ धर्म्माचरण करते हैं, वह राजा भी उन लोगोंके आचरित धर्म्मका अंशभागी होता है। हे पुरुषसिंह! परन्तु जो राजा धर्म्मोराम और धर्म्ममें तत्पर मनुष्योंको रक्षा नहीं करते, वे उन लोगोंके किये हुये पापकर्म्मोंके फलभागी होते हैं। हे पापरहित युधिष्ठिर! जो लोग राजाओंकी सहायता करते हैं, वे दूसरेके किये हुए धर्म्मके अंशभागी होते हैं। हे पुरुषसिंह! हम लोग जिस धर्म्मकी उपासना करते हैं वह प्रकाशमान गृहस्थ धर्म्म ही सब धर्म्मोंसे पवित्र है। जो

दम्भ रहित और क्रोधहीन होकर सब प्राणियोंको अपने ही प्राण समान समझते हैं, वे इस लोक और मृत्युके अनन्तर परलोकमें भी सुख लाभ करते हैं। हे युधिष्ठिर! सत्वरूप मल्लाहसे युक्त, शास्त्ररूपी बन्धन-रस्सीसे पूरित दानरूपी वायुसे चलनेवाले तथा शीघ्रगामी राजधर्म्म रूपी नौका पर चढ़के संसार रूपी समुद्रके पार होते हैं। जब उनके हृदयकी सब वासना विषयोंसे निवृत्त होती हैं, तभी वह सतोगुणी होकर ब्रह्मको प्राप्त करते हैं। हे पुरुष शार्दूल नरनाथ! प्रजा पालनमें रत रहनेवाले राजा ध्यान और चित्त-निरोधसे प्रसन्न होकर महत् धर्म्म लाभ करते हैं। हे युधिष्ठिर! तुम सदा वेदाध्ययनमें तत्पर और सत्कर्मोंमें रत रहनेवाले ब्राह्मणोंके पालनमें यत्नवान रहो। वाणप्रस्थ और दूसरे आश्रमवाले जो कुछ धर्म्मका आचरण करते हैं, राजा लोग प्रजा पालन रूपी धर्म्मसे ही उससे सौगुणा फल लाभ किया करते हैं। हे पाण्डव श्रेष्ठ! यही सब अनेक भांतिके धर्म्म तुम्हारे समीप कहे गये, तुम इस ही परम्परासे चले आये अनादि धर्म्मका अनुष्ठान करो। हे पुरुषशार्दूल पाण्डुपुत्र! तुम सदा एकाग्र चित्तसे प्रजा पालनमें अनुरक्त रहो; ऐसा होनेसे ही चारों आश्रमों और चारों वर्णोंके फलको प्राप्त करोगे।

६६ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! आपने चारों आश्रम और चारों वर्णोंके धर्म्म कहे, अब राज्यके सब कर्त्तव्य कार्य्योंको कहिये।

भीष्म बोले, राजाका अभिषेचन करना ही राज्यवासी सब लोगोंका कर्त्तव्य है, क्यों कि डाकू लोग राजाहीन और बल-रहित राज्यको आक्रमण किया करते हैं। अराजक राज्यमें एक दूसरे की रक्षाके निमित्त यत्नवान नहीं होते अधिक क्या कहें, आपसमें एक दूसरे की अनिष्टचिन्तामें ही तत्पर रहते हैं; इससे ऐसे राजा रहित राज्यको धिक्कार है। हे युधिष्ठिर! ऐसा ही सुना जाता है, कि राजाको आवाहन करनेसे इन्द्रका आवाहन समझा जाता है, इससे ऐश्वर्य्य की इच्छा करनेवाले पुरुषोंका इन्द्र की भांति राजा की भी पूजा करनी उचित है। मेरे मतमें राजाहीन राज्यमें वास करना उचित नहीं; क्यों कि वैसे राज्यमें अग्निदेव भी देवताओंके निकट हव्य नहीं पहुंचाते। परन्तु पराक्रमहीन अराजक राज्यके बीच राज्य की अभिलाषा करनेवाले दूसरे बलवान राजाके आगमन करने पर उठके उसका सम्मान करना ही उत्तम नीतिका कार्य्य है; क्यों कि पापमय राजाहीन राज्यसे अधिक दोष उत्पन्न होनेवाला और कोई भी कार्य्य नहीं है। उस बलवान राजाके प्रसन्न होनेसे ही सब मङ्गल है, अन्यथा वह कुपित होके सब देशोंको ही नष्ट कर सकता है।

महाराज! जो गऊ दूध दुहनेके समय विघ्न करती है, उसे बहुत ही क्लेश भोगना पड़ता है; परन्तु जो गऊ सहजमें दूध देती है, उसे कोई भी दुःख नहीं देता, और जो लकड़ी सहज होमें नत होती है, उसे अग्निमें जलानेकी आवश्यकता नहीं होता। हे वीर! इन दोनों उपमा पर दृष्टि रखके बलवानके निकट नत होना ही उचित है, क्यों कि बलवानके निकट नत होनेसे इन्द्रके समीप नत होना समझा जाता है। इससे राजरहित प्रजा-समूहको निज कल्याणके वास्ते राजा की रक्षा करनी उचित है, धन वा स्त्री आदिकोंके वास्ते नहीं। राजा रहित राज्यमें पापी पुरुष परधनको हरके अत्यन्त प्रसन्न होते हैं; परन्तु जब दूसरे पुरुष उनके धनको हरण करते हैं; तब वेही लोग राजाके वास्ते इच्छा प्रकाशित करते हैं,

क्योंकि राजाके होनेसे पापाचारी पुरुष किसी भांति कल्याण लाभ नहीं कर सकते। हे युधिष्ठिर! अराजक होनेपर दो पुरुष एकके धनको और कई पुरुष मिलके दो जनोंके धनको हरण करते हैं; दासवृत्तिके अयोग्य पुरुषोंको बल पूर्व्वक दास बनाते और बलपूर्व्वक पराई स्त्रियोंको हरण करते हैं; इस ही कारण देवताओंने प्रजापालक राजाका नियम किया है। अधिक क्या कहूं, यदि दण्ड धारण करनेवाले राजा सब लोकोंके सहित पृथ्वी की रक्षा न करते, तो बलवान लोग इस प्रकार निर्बल पुरुषोंको नष्ट करते, जैसे जलमें बड़े शरीरवाली मछली छोटी मछलियोंको भक्षण करती हैं। मैंने सुना है, जैसे बड़ी मछली जलमें छोटी मछलियोंको खाजाती हैं, वैसे ही अराजक राज्यकी प्रजा नष्ट हुई थीं; इसी भांति जब आपसमें उन सब लोगोंका कुल नष्ट होने लगा, तब उन लोगोंने परस्पर मिलके शपथपूर्व्वक यह नियम स्थापित किया था, कि "हम लोगोंके बीच जो कोई निठुर वचन कहनेवाला, कठोर दण्डयुक्त और पराया धन हरनेवाला होगा, वह हम लोगोंसे त्याज्य समझा जायगा।" वे लोग सामान्य रूपसे सब वर्णवालोंके विश्वासके वास्ते आपसमें ऐसी ही प्रतिज्ञा करके विरोधरहित होके निवास करने लगे। तिसके अनन्तर वे सब कोई मिलकर पितामह ब्रह्माके निकट जाके उनसे बोले, हे भगवन्! हम लोगोंमें कोई राजा न रहनेसे हमारा दुःख बढ़ रहा है, और हम सब नष्टप्राय होगये हैं; इससे आप हम लोगोंके वास्ते एक राजा नियुक्त करिये, जो हम सब लोगोंको प्रतिपालन करे और हम सब कोई मिलके जिसकी पूजा करें। तिसके अनन्तर पितामहने मनुको उन लोगोंका राजा होनेके निमित्त आज्ञा दिया, मनुने उनके उस वचनको स्वीकार नहीं किया, मनु बोले, पापपूरित कर्म्म आचरण करते मुझे अत्यन्त भय होता है, विशेष करके मिथ्यायुक्त मनुष्योंके बीच राज्य करना अत्यन्त ही कठिन है।

भीष्म बोले, प्रजा समूहने मनुका ऐसा वचन सुनके उनसे कहा, "आप न डरिये, पापसे आपको कुछ भय नहीं है, जो लोग पाप करेंगे वेही उसके फलको भोग करेंगे। हम लोग आपके कोष वृद्धिके वास्ते अपने प्राप्त हुए पशु, और सुवर्णके पचासवें भागका एक भाग और धान्यके दसवें भागमें एक भाग प्रदान करेंगे, विवाह उपस्थित होनेपर जिस कन्याका सबसे अधिक दायजा निरूपित होगा, आपको ही वह सुन्दरी कन्या प्रदान करेंगे। देवता जैसे इन्द्रके अनुगामी होते हैं, वैसे ही उत्तम वाहनोंपर चढ़े हुए शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ पुरुष आपके पीछे गमन करेंगे। आप इसी भांति बलशाली, प्रतापवान तथा दूसरेसे दुराधर्ष होकर इस प्रकार हम लोगोंकी रक्षा करिये, जैसे कुवेर यक्षोंकी रक्षा करते हैं। प्रजा लोग राजासे रक्षित होकर जो कुछ धर्म्माचरण करेंगे आप उसके चतुर्थांश फलभागी होंगे; और उस ही धर्म्मसे बलवान होकर इस प्रकार हम लोगोंकी रक्षा करियेगा, जैसे इन्द्र देवताओंकी रक्षा करते है। आप मरीचिमाली सूर्य्यकी भांति शत्रुओंको सन्तापित करते हुए विजयके वास्ते यात्रा करिये और शत्रुओंका अभिमान नष्ट कीजिये; ऐसा होनेसे हम लोग सुख पूर्व्वक धर्म्माचरण कर सकेंगे।" महाबलसे युक्त महातेजस्वी मनु प्रजापुञ्जसे इसी भांति पूजित होके निज तेज प्रभावसे दशों दिशाको प्रकाशित करते हुए बाहर हुए। उस समय अनगिनत श्रेष्ठ वंशमें उत्पन्न हुए पुरुष उनका अनुगमन करने लगे। देवता लोग उनका इन्द्रके समान मण्डल देखके अत्यन्त ही भयभीत हुए और सबने निज धर्म्ममें चित्त लगाया। तिसके अनन्तर जैसे हाटक जलको बर्षाके

मूर्खको निवारण करते हैं, वैसेही मनुने सबको पाप कर्म्मोंसे निवृत्त और निज धर्म्ममें प्रवृत्त करके पृथ्वीपर गमन किया। युधिष्ठिर! इसी भांति पृथ्वीपर जो मनुष्य मङ्गल कामना की इच्छा करें, वे प्रजासमूहके अनुग्रहके वास्ते राजाको ही सबसे श्रेष्ठ समझें। जैसे शिष्य गुरुके समीप और देवता लोग इन्द्रके समीप नत हुआ करते हैं; वैसे ही राजाके समीप सदा विनीत भावसे रहा करें; क्यों कि स्वजनोंसे सत्कृत होनेपर शत्रुलोग भी सत्कार किया करते हैं; परन्तु स्वजनोंसे तिरस्कृत होनेपर शत्रु लोग भी अवज्ञा करते है। विशेष करके शत्रुओंके निकट राजा की पराभव होनी सबके क्लेशोंका मूल है।

तिसके अनन्तर प्रजासमूहने राजा मनुको छत्र, सवारी, वाद्य आभूषण, खाने पीनेकी वस्तु गृह, आसन शय्या और दूसरी सब भांति की सामग्री प्रदान की। हे युधिष्ठिर! राजा दूसरेके वास्ते प्रबल होवे, और अन्य मनुष्यके प्रश्न करनेपर हंसके मधुर वचनसे उत्तर देवे। उपकार करनेवालेके निकट कृतज्ञ, गुरु जनोंमें दृढ़भक्त, सबके सङ्ग संविभागी और जितेन्द्रिय होवे। दूसरेसे दूषित होनेपर सरलस्वभावसे सुन्दर तथा मनोहर दृष्टि उसकी ओर करे।

६७ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे भरतर्षभ पितामह! ब्राह्मण लोग भी किस कारणसे मनुष्योंके प्रभु राजाको देवरूपी कहा करते हैं?

भीष्म बोले, हे भारत! पहिले वसुमनाने बृहस्पतिसे इस विषयमें जो कुछ पूछा था, पण्डित लोग इस प्रस्तावके उदाहरणमें उस ही प्राचीन इतिहासका प्रमाण देते हैं। सब लोगोंके हितमें रत, विनययुक्त वसुमनाने प्रजाओंके सुख की इच्छासे धर्म्मात्मा बृहस्पतिको सब भांतिसे शिष्टाचार प्रदक्षिणा तथा विधिपूर्व्वक प्रणाम करके राजाके समस्त कर्त्तव्य विषयोंकी पूछा।

वसुमना बोले, हे महाबुद्धिमान! जीव लोग किस प्रकार उन्नत अवस्थाको प्राप्त होते, और किन कार्य्योंसे नष्ट होते हैं; और किसकी उपासनासे अनन्त सुख लाभ करते हैं? महाबुद्धिमान बृहस्पति कल्याण चाहनेवाले वसुमनाके प्रश्नको सुनके आनन्दके सहित राज संस्कार विषयक सब वचन कहने लगे।

बृहस्पति बोले, हे महाबुद्धिमान! प्रजा जो कुछ धर्म्माचरण करती है, राजा ही उसका मूल है; क्यों कि वे लोग राजभयसे ही आपसमें हिंसा नहीं कर सकते। राजा ही धर्म्मपूर्व्वक मर्य्यादा रहित और पराई स्त्रियों तथा कुकर्म्मोंमें रत अखिल जगत्‌की प्रसन्नता सिद्ध करते हुए स्वयं प्रसन्नभावसे निवास करता है। महाराज! जैसे सूर्य्य चन्द्रमाके उदय न होनेपर जीव लोग घोर अन्धकारमें फंसते और आपसमें एक दूसरेको नहीं देख सकते; जैसे थोड़े जलसे युक्त तालाबके बीच मछलियें और हिंसा भयसे रहित पक्षी लोग बार बार हिंसा करते हुए विचरते हैं, तथा काल क्रमसे आपसमें किसीके भी वचन न सहके उसका वचन अतिक्रम और सबको पीड़ित करते हुए थोड़े ही समयमें नष्ट होजाते हैं, वैसे ही राजाके न रहनेपर प्रजा भी पालकहीन पशुकी भांति, घोर अन्धकारमें पड़के नष्ट होजाती है। यदि राजा रक्षा न करता, तो बलवान पुरुष बलपूर्व्वक निर्ब्बलोंका धन हरलेते, वे लोग अपनी अपनी सामर्थ्यके अनुसार परम आग्रह करके भी उसकी रक्षा करनेमें समर्थ न होते। कोई भी "यह वस्तु मेरी है,"—ऐसा न समझ सकते, स्त्री, पुत्र, अन्न आदि खानेकी चीज अथवा दूसरी किसी वस्तुओंमें भी किसीका कुछ भी वश न रहता; राजाके रक्षा न करनेसे समस्त धन सब तरहसे नष्ट होजाता।

यदि राजा पालन न करता, तो पापी चोर लोग सबके वस्त्र, आभूषण, सवारी, तथा दूसरे अनेक भांतिके रत्नोंको हर लेते। यदि राजा पालन न करता, तो धर्म्म-चारियोंके ऊपर बहुधा शस्त्र चलते, और सब कोई अधर्म्मका आसरा ग्रहण करते। रक्षा न करनेसे सब कोई वृद्ध माता, पिता, आचार्य्य, अतिथि और गुरु जनोंको क्लेश देते अथवा उनका नाश करनेमें भी संकुचित न होते। यदि राजा पालन न करता, तो धनवान पुरुषोंको सदा ही बध बन्धन अथवा बहुत ही क्लेश प्राप्त होते; कोई भी किसी वस्तुको अपनी न समझ सकते। राजा रक्षा न करता, तो सब ही असमयमें ही मृत्यु-मुखमें पतित होते; सब लोग ही डाकुओंके वशमें होजाते तथा सब कोई घोर नरकमें पड़ते। यदि राजा रक्षा न करता, तो योनि दोष, कृषि और वाणिज्य कुछ भी न रहते; धर्म्म डूबता और वेदादि लुप्त होजाते। राजाके रक्षा न करनेसे सात प्रकारकी दक्षिणायुक्त यज्ञ, विवाह अथवा समाज कुछ भी विधिपूर्व्वक न निर्व्वाहित होते। राजाका शासन न रहता, तो वृषभ भी गौवोंमें वीर्य्य-सिञ्चन न करते; गगरी भी न मथी जाती; इससे अहीर लोग भी नष्ट होजाते। राजा रक्षा न करता, तो सब लोग ही भयभीत और व्याकुल होके हाहाकार करके चेतरहितकी भांति क्षणभरमें नष्ट होजाते। यदि राजा रक्षा न करता, तो कोई भी निर्भयचित्त होकर यथारीतिसे दक्षिणायुक्त सम्वत्सरिक यज्ञोंका अनुष्ठान न करते, राज्य शासन न रहता, तो विद्यास्नात, व्रतचारी, तपस्वी और ब्राह्मण लोग चारोंवेदोंको अध्ययन न करते। यदि राजा पालन न करता, तो जिस पुरुषने ब्रह्म-हत्यारोंका नाश किया है, वह धर्म्मपूरित कार्य्यकी प्रशंसा प्राप्त न कर सकता, परन्तु ब्रह्मघाती तथा आलसी होकर भ्रमण करता।

राजाका शासन न होता, तो चोर लोग हाथमें स्थित धनको भी हरण करते, पुल टूटते और प्रजा भी भयसे विकल होकर चारों, ओर भागने लगती। राजा यदि रक्षा न करता, तो चारों ओर अनीति फैल जाती, वर्णसङ्कर जातिकी बढ़ती होती और राज्यमें सदा दुर्भिक्ष उपस्थित होता। जैसे घरके दरवाजेको बन्द करके इच्छानुसार घरके भीतर शयन करते हैं, वैसे ही राजासे रक्षित होकर मनुष्य लोग निर्भयताके सहित सर्व्वत्र भ्रमण किया करते हैं। जब कि बलवानके प्रहार करनेपर भी निर्ब्बल लोग सह लेते हैं, तब यदि धर्म्मात्मा राजा सब भांतिसे पृथ्वीकी रक्षा न करते, तो दूसरे पुरुष जो अन्य पुरुषोंके कठोर वचनको सहते इसमें कौनसी विचित्रता है? राजा यदि यथारीतिसे रक्षा करे, तो सब आभूषणोंसे भूषित स्त्रियां भी निर्भयताके सहित राजमार्गोंमें भ्रमण कर सकती हैं। यदि राजा रक्षा करे तो आपसमें सब कोई सबके ऊपर कृपा करते हैं, और एक दूसरेकी हिंसा न करके धर्म्म मार्गसे ही गमन करते हैं। जब राजा प्रजाकी यथारीतिसे रक्षा करता है, उस समय ब्राह्मणादिक तीनों वर्ण अलग अलग यज्ञोंको करके देवताओंकी पूजा और चित्त स्थिर करके वेदाध्ययनमें तत्पर रहते हैं। वार्त्ता-मूल यह जगत् तीनों वेदोंसे ही रक्षित होता है; परन्तु राजाके उत्तम शासनसे ही वे सब भली भांति रक्षित होते हैं। जब राजा कठिन भार ग्रहण करके महत् बलके सहारे प्रजाओंकी रक्षा करता है, तब सब कोई प्रसन्न-भावसे निवास करते हैं। जिसके स्थित रहनेसे सब ही स्वच्छन्दताके सहित निवास करते हैं और जिसके अभावसे ही सबका अभाव होता है; कौन पुरुष उसकी पूजा न करेगा? जो राजाका प्रिय और हितकारी होकर सब लोगोंको भय देनेवाला गुरु भारको उठाता है,

वह दोनों लोकोंको जय करनेमें समर्थ होता है। जो पुरुष मनमें भी राजाके अनिष्टकी शङ्का करेगा, वह निश्चय ही इस लोकमें क्लेश भोग करके परलोकमें नरकमें पड़ेगा। राजाको मनुष्य समझके कभी भी अवमानना करनी उचित नहीं है; क्यों कि वह महत् देवता नररूप धारण करके पृथ्वीपर निवास करता है। जो राजा समयानुसार पञ्चरूपके कार्य्योंको किया करते हैं, वे उस समय अग्नि, सूर्य्य, मृत्यु, वैश्रवण और यम इन पांच भांतकी पदवीको अन्यतम पदवीको प्राप्त करते हैं। जिस समय राजा वञ्चित होकर भी समीपस्थ पापोंको भस्म करता है; उस समय उसकी "पावक" संज्ञा होती है। जब दूतोंके जरिये सबके कार्य्योंका अनुसन्धान करते और प्रजा पुञ्जके मङ्गल जनक कार्य्योंका आचरण करते हैं, उस समय 'भास्कर' कहके माने जाते हैं। जब क्रुद्ध होकर पापी लोगोंका पुत्र पौत्र और सेवकोंके सहित सौ प्रकारसे नाश करते हैं उस समय उनको "मृत्यु" संज्ञा होती है। महाराज! जब राजा धनसे उपकारियोंको तृप्त, और अपकारियोंके अनेक भांतिके रत्नोंको हरके किसीको श्रीयुक्त और किसीको नष्ट भी करते हैं, उस समय वे "वैश्रवण" नामसे विख्यात होते हैं। जब तीक्ष्ण दण्डसे अधर्म्मियोंको निग्रह और धर्म्मात्माओंके ऊपर कृपा प्रकाशित करते हैं, उस समय उनको 'यम' संज्ञा होती है। महाराज! जिसमें राजाका अपवाद होवे, ईश्वरके बनाये हुए द्वेष रहित, धर्म्मकी अभिलाषा करनेवाले दक्ष, और अक्लिष्ट कर्म्मवाले मनुष्योंको वैसा कार्य्य करना उचित नहीं है; क्यों कि राजाको प्रतिकूलता करनेसे कभी भी सुख नहीं मिल सकता। जो राजाके अपवाद जनक कार्य्योंको करता है, अनिल सारथी जलती हुई अग्नि उसे भस्म करती है। परन्तु राजा जिसकी रक्षा करे, उसका किसी प्रकार नाश नहीं हो सकता, इससे राजाकी रक्षित वस्तुओंको दूरसे ही त्यागना उचित है। जैसे मृत्युसे अपनी रक्षा की जाती है, वैसेही राजस्व हरण होने पर भी आत्मरक्षा करनी उचित है; क्योंकि उसे स्पर्श करनेसे ही जैसे यन्त्र स्पर्शसे मृग नष्ट होते हैं, वैसे ही पुरुषोंका नाश होता है। बुद्धिमान मनुष्यको उचित है, अपने समान राजा की भी रक्षा करे। जो राजधन हरता है, वह सदाके वास्ते अचेतन, अप्रतिष्ठित, भयङ्कर और महत् नरकमे पतित होता है। महाराज! जिस को राजा, भोज, विराट्, सम्राट, क्षत्रिय, भूपति और नृपति आदि शब्दोंसे स्तुति की जाती है, कौन पुरुष उसकी पूजा न करेगा? इन्हीं सब कारणोंसे ऐश्वर्य्यकी इच्छा करनेवाला, जितात्मा जितेन्द्रिय, मेधावी, स्मृतिमान और दक्ष पुरुष राजाका आसरा ग्रहण करे। राजा भी कृतज्ञ, बुद्धिमान, उच्च कुलमें उत्पन्न हुए दृढ़भक्तिवाले, जितेन्द्रिय, धर्म्मनिष्ठ और नीतिज्ञ मन्त्रीका सत्कार करे। दृढ़भक्तियुक्त, बुद्धिमान, धर्म्म जाननेवाले, जितेन्द्रिय, और शूर, बड़े कार्य्योंके करनेवाले और जो कहा करते हैं मैं अकेले ही इस कर्म्मको सिद्ध करूंगा, दूसरे सहायक की आवश्यकता नहीं है; वैसे ही लोगोंका आसरा ग्रहण करे। बुद्धि मनुष्यको प्रगल्भ करती है, परन्तु राजा सब भांतिसे सब लोगोंको प्रशंसा लाभ नहीं करने देता। राजा जिसे आक्रमण करे, उसे सुख कहां? परन्तु उसके अनुगत रहनेसे सब भांतिसे सुख मिलता है। हे नरेन्द्र! राजा ही प्रजासमूहके मानसिक उत्कर्ष, सत्गति, प्रतिष्ठा और परम सुख लाभका कारण है। जो लोग राजाका आसरा ग्रहण करते हैं, वे लोग इस लोक और मरनेके अनन्तर परलोकको भी जय करनेमें समर्थ होते हैं; महायशस्वी राजा लोग भी दम, सत्य और सुहृदताके सहित पृथ्वी

शासन करते हुए महत् यश करके अमर तथा नित्य पद प्राप्त करते हैं। राज सत्तम कौशल्य वसुमना बृहस्पतिके ऐसे वचन सुनके यत्नपूर्व्वक प्रजापालन करने लगे।

६८ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे भारत! राजाके कर्त्तव्य कर्म्मके बीच और क्या शेष हैं? और वह दूत, सेवक, स्त्री, पुत्र तथा इतरवर्णके लोगोंमेंसे किसका किस भांति विश्वास करे तथा किसे किस भांतिके कार्य्योंमें नियुक्त करे, आप यह सब मेरे समीप वर्णन कीजिये।

भीष्म बोले, महाराज! राजाको दूसरे जो सब कार्य्य करने उचित हैं, तुम एकाग्रचित्तसे उन समस्त राजनीतिको सुनो। राजा पहिले अपने चित्तको जीतकर तब शत्रुओंके जीतनेकी इच्छा करे? जिसने श्रोत्र आदि पञ्च इन्द्रियों और अपने चित्तको वशमें किया है, वैसा जितेन्द्रिय राजा ही शत्रुओंको जीतनेमें समर्थ होता है। हे पुरुषसिंह कुरुनन्दन! राजाको उचित है, "किला, राज्य-सीमाका वर्ष भाग, नगर, उपवन, अन्तःपुरके बगीचे, चतुष्पथ, पुर, अन्तःपुर और सब स्थानोंमें पैदल सेना स्थापित करे। जड़, अन्धे और बधिर रूपवाले, भूखप्यास आदि क्लेशोंको सहनेवाले, बुद्धिमान और परीक्षामें निपुण पुरुषोंको दूतरूपसे नियुक्त करे। गुप्त चरोंको नियुक्त करके सब भांतिके सेवकों अनेक प्रकारके मित्रों और पुत्रोंके कार्य्योंकी परीक्षा करे। पुरजनपद और सामन्त राजाओंके समीप इस प्रकार गुप्त चरोंको नियत करे कि वे लोग आपसमें एक दूसरेको न जान सकें। हे भरतर्षभ! राजा अपने मल्लक्रीड़ा स्थान, समाज, भिक्षुक, पुष्पवाटिका, बाहिरी बगीचे, पण्डितोंकी सभा स्थान, अधिकारियोंके निवास स्थान, राजसभा और प्रधान पुरुषोंके गृह इन सब स्थानोंमें अनुसन्धान करनेसे ही शत्रुओंके भेजे हुए दूतोंको जान सकते हैं। हे पाण्डुपुत्र! बुद्धिमान राजा इसी भांति शत्रु-प्रेरित दूतोंको मालूम करे; क्योंकि पहिले दूतोंको मालूम करनेसे मङ्गल होता है। जब राजा स्वयं अपनेको बलहीन समझे, तब सेवकोंके सङ्ग विचार करके बलवानके साथ सन्धि करे। यदि शत्रुसे अपनी हीनता न समझे, तौभी बुद्धिमान राजा थोड़े स्वार्थ लाभकी आशा रहनेपर भी शत्रुके साथ शीघ्र सन्धि करे। जो लोग गुणवान, महा उत्साहयुक्त धर्म्म जाननेवाले और साधु हैं, राजा वैसे पुरुषोंके सङ्ग सन्धि करके धर्म्मपूर्व्वक प्रजा पालन करे। बुद्धिमान राजा अपनेको उच्छिद्यमान समझके लोकद्वेषी पूर्व्व अपकारी लोगोंका नाश करे। जो राजा किसी भांति उपकार और अपकार करनेमें समर्थ न हो तथा अपना भी उद्धार करनेमें असमर्थ हो; उसके विषयमें उपेक्षा प्रकाशित कर सकते हैं। युद्धके वास्ते प्रस्थान करनेकी इच्छा होने पर पहिले नगर रक्षाका उपाय, यात्राकालकी सब वस्तुओंका संग्रह करके कल्याणजनक वचनोंसे अभिनन्दित और महत् बलसे युक्त होकर स्वच्छन्दताके सहित मूर्ख विचारहीन, बन्धुओंसे रहित दूसरेके साथ युद्धमें आसक्त असावधान और निर्ब्बल राजाकी ओर चढ़ाई करे। यदि वह राजाबल और पराक्रमशील होनेपर भी निज सामर्थ्य प्रकाशित करनेकी इच्छासे स्वयं वशमें न होवे, तो उसके राज्यमें निवास करके उसे सब भांतिसे पीड़ित करे। शस्त्र, अग्नि और विष आदिसे प्रजासमूहको मोहित करके उसके राज्यको पीड़ित करे; अपने सेवकोंके जरिये उसके मित्रों तथा सेवकोंमें भेद करा देवे। बृहस्पतिने कहा है, कि बुद्धिमान राजा राज्यकी अभिलाषासे युद्धमें बिना प्रवृत्त हुए ही सन्धि आदि तीनों उपायोंसे अर्थ संग्रह

करे। पण्डित राजा साम, दान और भेद इन तीनों उपायसे जो कुछ धन प्राप्त कर सके, उसीमें सन्तुष्ट होवे।

हे कुरुनन्दन! प्रजासमूहको रक्षाके वास्ते उनको प्राप्त हुई वस्तुओंमेंसे छठवां अंश कर लेवे पुर वासियोंकी रक्षाके वास्ते मतवाले, उन्मत्त आदि दश धर्म्मागत लोगोंको दण्ड देकर उनसे बहुत वा थोड़ा हो हो, धन ग्रहण करे, क्योंकि उन लोगोंको दण्ड न देनेसे वे सब पुरवासियोंको क्लेश देते हैं। पुरवासियोंको पुत्र समान पालन करे, परन्तु विचार कार्य्यमें प्रवृत्त होकर स्वजन समझके उनके ऊपर स्नेह न करे। राजा वादी प्रतिवादियोंके वचनका विचार-कार्य्य सुननेके वास्ते सदा सब अर्थोंके जाननेवाले पण्डितोंको नियुक्त करे, क्यों कि उनसे ही राज्य प्रतिष्ठित होता है। राजाको उचित है, सुवर्ण आदिकोंकी खान, लवण उत्पत्तिके स्थान धान्य आदि बिकनेके स्थान, नदी और हाथि- योंके विचारके वास्ते निज हितकारी आत्मीय पुरुषको नियुक्त करे, सदा यथा रीतिसे दण्ड धारण करनेवाले राजा धर्म्मजनित फल प्राप्त करते हैं; क्यों कि समयके अनुसार दण्ड-वि- धान ही राजाओंका परम धर्म्म कहके वर्णित हुआ है। हे भारत! राजाओंको वेद वेदाङ्ग आदि सब विद्याओंको क्रमशकर पढ़ना और बुद्धिमान, तपस्यामें रत, सदा दानशील तथा यज्ञशील होना उचित है; क्यों कि व्यवहार लुप्त होनेसे उसे स्वर्गलाभ हो कहां और यश ही कहां है? दूसरे बलवान राजासे पीड़ित होनेपर बुद्धिमान राजा किलेके भीतर आश्रय ग्रहण करे, और समयके अनुसार मित्रको आवाहन करके उनके सङ्ग साम, भेद, वा विग्रह विषयक युक्तिका निर्णय करे। वनके मार्गोंमें अहीरोंको स्थित करे; आवश्यकता होनेपर गावोंको एक स्थानसे उठाके उन लोगोंको उपनगरमें प्रवेश करावे। राज्यमें जो सब गुप्त और कठिनतासे जानने योग्य स्थान हैं, युद्ध उपस्थित होनेपर धनशाली और बलवान पुरु- षोंको मीठे वचनसे धीरज देके उन्हीं स्थानोंमें भेजे। राजा स्वयं उपस्थित होके निज राज्यके शस्योंको पृथक् करके भाग बनावे, और उसमें यदि प्रवेश न कर सके, तो चारों ओरसे आग लगाके वह सब भस्म कर देवे। शत्रुके मित्रोंमें भेद कराके अथवा निज बलसे ही शत्रुके खेत- स्थित शस्योंको नष्ट करे। नदी पथमें स्थित बांधोंको तोड़ देवे; दीर्घिकार जल सब बाहर कर देवे और जिस जलको बाहर करनेकी उपाय न होवे, वैसे जलको विषादिकोंसे दूषित कर देवे। विशेष मित्रकार्य्य उपस्थित होनेपर भी उसे परित्याग कर वर्त्तमान और भविष्यका- र्य्योंकी चिन्ता करते हुए रणभूमिमें शत्रुको पराजित करनेमें समर्थ शत्रुके शत्रुओंके साथ मित्रता करके उनकी सेनासे ही शत्रुको निज देशसे दूर करे। जिसमें शत्रु लोग आश्रय ले सकें, वैसे छोटे छोटे किलोंको तोड़ देवे चैत्यवृ- क्षके अतिरिक्त अन्य सब क्षुद्र वृक्षोंको जड़ काट दे; परन्तु चैत्यवृक्षका पत्ता पर्य्यन्त भी न तोड़े, किलेकी दीवार, शूरवीरोंके निवासस्थान सब तैयार करे; वायुका निकास, किलेसे बाहरी शत्रुओंका देखना और उनके ऊपर अग्नेयास्त्र और गोली चलानेके वास्ते किलेकी दिवारोंमें छोटे छोटे छेदोंको तैयार करावे। किलेकी खाईं घड़ियाल और बड़ी शरीरवाली मछलि- योंसे परिपूरित करे। नगरसे बाहर जानेके वास्ते छोटे द्वार बनाके अन्य दरवाजोंकी भांति उसकी भी रक्षाकी उपाय करे। सब दरवाजों पर बड़े यन्त्र और आवश्यकता होनेपर चलाई जा सकें, ऐसी शतघ्नी स्थापित करे। बहुत सा काष्ठ संग्रह कर रक्खे, जगह जगह कूएं खुदावे और जो सब कूएं जलकी इच्छावाले दूसरे पुरुषोंने पहिलेसे खोद रक्खे हैं, उसके जलको शुद्ध करावे। चैत महीनेमें तृण आदिसे छायी

हुए गड्ढों में गीली मट्टी लेपन करावे और अन्य स्थानों के परिचित तृणों को उठवा लावे। उस समय राजा रात्रिमें ही भक्ष आदि वस्तुओं को पाक करावे और अग्निहोत्रके अतिरिक्त दूसरे किसी कार्य्यमें भी दिनके समय अग्नि न जलने देवे। लुहसार और सूतिका गृहको भली भांति रक्षित करके अग्नि प्रज्वलित करावे और उस अग्निको गृहके भीतर प्रविष्ट करके पत्ते आदिकों से छिपा रक्खे। पुरीकी रक्षा करनेके वास्ते जो दिनमें अग्नि जलावेगा, उसे प्राण दण्ड होगा" ऐसा ही ढिंढोरा दिला देवे। हे नरश्रेष्ठ! उस ही समय भिक्षुक, शकटवाले, क्लीव, उन्मत्त और कुशील पुरुषोंको राज्यसे बाहर करे; क्यों कि उस समय उन लोगोंके राज्यमें रहनेसे अनेक दोष उपस्थित होता है। चौराहे, मन्दिर अठारह भांतिके तीर्थ सभा और साधारण पुरुषोंके गृहोंके निमित्त उचित रीतिसे प्रहरी नियुक्त करे। राजाको उचित है, बहुत बड़ा राजमार्ग तैय्यार करावे, और जलका स्थान तथा बेचने खरीदनेकी जगह निर्दिष्ट कर दे। हे कुरुनन्दन युधिष्ठिर! भण्डार, अस्त्रागार, योधागार, घुड़शाल, गजशाला सेनाका निवास स्थान, परिघा, भीतरी मार्ग और अन्तःपुरके बगीचे सब इस प्रकार गोपनीय स्थानमें तैय्यार करावे, कि दूसरा कोई किसी प्रकार भी देख न सके। पराये बलसे पीड़ित राजा तेल, चर्बी, मधु, घृत, अनेक भांतिकी औषधी और धन आदि सञ्चय करे। अङ्गार, कुश, मूल, फल, शर, लेखक, घास, काठ और विषमें बुझे हुए वाण, शक्ति, ऋष्टि, प्रास आदि अस्त्र और वर्म्म आदि आवश्यकीय वस्तुओंका संग्रह कर रक्खे। सब भांतिकी औषधी, मूल, फल और विष, शल्य, रोग और कृत्या इन चार भांतिके उत्पातोंको शान्त करनेवाले, चार भांतिके वैद्योंका संग्रह करे। नट, नाचनेवाले, मल्ल और मायावियोंसे राजनगरीको शोभित और दूसरे सब पुरुषोंको आनन्दित कर रक्खे। सेवक, मन्त्री और पुरवासियोंमेंसे जिससे शङ्का हो, उसे अपने वशमें कर रक्खे। हे राजेन्द्र! यदि राजा क्रोधके वशमें होकर अकारण ही दूसरेकी अवमानना वा ताड़ना करे, तो शास्त्रमें कहे हुए यथा उचित बहुत सा धन-दान और अनेक भांतिके शान्त वचनसे उसका सम्मान करनेसे उससे अङ्गरणी होगा। जो सात विषय राजाको अवश्य रक्षा करनेके योग्य हैं, उसे सुनो;—हेकुरुनन्दन! राजाको उचित है, कि आत्मा, सेवक, कोष, दण्ड, मित्र, जनपद और पुर इस सप्तात्मक राज्य सब भांति यत्नपूर्व्वक प्रतिपालन करे।

हे पुरुषसिंह! जिन राजाओंने षाड्गुण्य त्रिवर्ग और परम त्रिवर्ग मालूम किये हैं, वेही इस पृथ्वीका भोग करनेमें समर्थ होते हैं। हे युधिष्ठिर! मैंने जो षाड्गुण्यकी कथा कही, उसे सुनो,—शत्रुके साथ सन्धि करके निःशङ्क चित्तसे निवास; शत्रुके ऊपर चढ़ाई, शत्रुका भय दिखानेके वास्ते यात्राका छल दिखाके निवास करना, द्वैधी भाव और अन्य किला तथा दूसरे प्रबल राजाका आसरा ग्रहण करना, येही छः राजाके षाड्गुण्य कहाते है। त्रिवर्गकी कथा जो मैंने कही है, उसे भी एकाग्रचित्तसे सुनो;—क्षय, स्थान और वृद्धि येही त्रिवर्ग हैं, धर्म्म, अर्थ और काम ये परम त्रिवर्ग है; समयके अनुसार इनका आचरण करना उचित है। इसी भांति राजा धर्म्मपूर्व्वक सदा पृथ्वी पालन किया करते हैं। हे यादवीनन्दन! तुम्हारा मङ्गल हो, इस ही अर्थमें वृहस्पतिने जो दो श्लोक कहे थे, उन दोनोंको तुम्हें सुनना उचित है। "पृथ्वी और पुरवासियोंको यथारीतिसे पालन और दूसरे सब भांतिके कार्य्य करके राजा लोग परकालमें सुख प्राप्त करते हैं। जो प्रजापुञ्जको यथार्थ रीतिसे

पालन करते हैं, वैसे राजाको तपस्यासे क्या फल है ? और उन्हें यज्ञको ही क्या आवश्यकता है ? क्यों कि वे स्वयं सब धर्म्मोंके जाननेवाले हैं ।

युधिष्ठिर बोले, पितामह ! दण्डनीति और समस्त राजा तथा सब ही इस उभय प्रकारसे व्यस्त हुआ करते हैं, तिसलिये किसे किस भांतिके कार्य्योंमें कैसी सिद्धि प्राप्त होती है, आप यह सब मेरे समीप वर्णन कीजिये ।

भीष्म बोले, हे भरत नन्दन महाराज ! दण्डनीतिसे जो राजा और प्रजाका महासौभाग्य होता है ; मैं युक्तियुक्त सिद्ध वाक्यसे वह सब वर्णन करता हूं, सुनो । राजाके यथा उचितसे चलानेपर दण्डनीति चारों वर्णोंकी प्रजाको अधर्म्मसे निवृत्त करके स्वधर्म्ममें स्थापित करती है ! चारों वर्णोंकी प्रजा स्वधर्म्ममें रत, सब मर्य्यादासे युक्त और दण्डनीति कृत मंगलके जरिये निर्भय होकर ब्राह्मण आदि तीनों वर्णोंके वास्ते सामर्थ्यके अनुसार यत्नवान होती है, और उससे ही मनुष्योंको परम सुख प्राप्त होता है । हे युधिष्ठिर ! काल ही राजाका कारण है, अथवा राजा ही 'कालका कारण है, तुम्हें जिसमें ऐसी शङ्का न उपस्थित होवे और इसे ही निश्चय जान रखो, कि राजा ही महा कालका कारण है । जब राजा पूरी रीतिसे दण्डनीति प्रयोग करता है, तभी कालक्रमसे सत्ययुग प्रवर्त्तित हुआ करता है, तिसके अनन्तर उस कृत युगमें केवल मात्र धर्म्म ही विराजमान रहता है ; अधर्म्म इकबारगी लुप्त होजाता और प्रजा पुरुषका मन उसमें रत नहीं होता । प्रजा संशयरहित होकर योगका आचरण करती है और उन लोगोंमें सब वैदिक गुण उत्पन्न होते हैं । सब ऋतु आपद रहित और सुखदायक होती हैं, मनुष्योंका स्वर, वर्ण और मन प्रसन्न रहता है, कोई रोगसे पीड़ित नहीं होता और किसीकी अल्पायु नहीं दीख पड़ती । युधिष्ठिर ! इस सतयुगमें कोई स्त्री विधवा तथा कोई कृपण नहीं होते बिना जोते ही पृथ्वीमें औषध और सब भांतिके अन्न उत्पन्न होते रहते हैं ; छाल, पत्ते, फल और मूल दृढ़ होते हैं । उस कृत-युगमें अधर्म्म लुप्त होजाता है और केवल मात्र धर्म्म ही विराजमान रहता है, हे युधिष्ठिर ! ऐसो सब सतयुगके धर्म्म समझ रखो ।

जब राजा पूर्ण रीतिसे प्रवृत्त न होकर दण्डनीतिके चौथे अंशको परित्याग करके उसके तीन भागके ही अनुयायी होता है, तब ही त्रेतायुग प्रवर्त्तित होता है । उस त्रेतायुगमें तीन हिस्से धर्म्म और एक भाग अधर्म्म प्रचलित होता है ; जोतनेसे पृथ्वीमें अन्न और औषध उत्पन्न होती हैं ।

जब राजा दण्डनीतिका आधा भाग परित्यागके आधे भागके ही अनुवर्त्ती होके कार्य्य करता है, तब द्वापर नाम युग उत्पन्न होता है । उस समय लोग दो हिस्से अधर्म्म और दो भाग धर्म्मके अनुयायी होते हैं ; पृथ्वी जोतनेपर भी आधा ही फल देती है ।

जब राजा दण्डनीतिको त्यागके केवल मात्र असत् उपायसे ही प्रजा समूहको पीड़ित किया करता है, तभी कलियुग प्रवर्त्तित होता है, कलियुगमें कहीं भी धर्म्म नहीं दीख पड़ता, सब ही अधर्म्मसे परिपूरित और सब वर्ण ही निज कर्म्मोंसे विचलित हुआ करते हैं, शूद्र लोग भिक्षा वृत्ति और ब्राह्मण लोग दूसरेकी सेवासे जीविका निर्व्वाह करते हैं ; योग क्षेम पुरुष नष्ट होते और वर्णसङ्करोंकी बढ़ती होती है । वैदिक कर्म्मोंके अनुष्ठान करनेसे उसमें कुछ फल न होकर उलटा विगुण ही हुआ करता है, कोई ऋतु भी सुखदायक नहीं होती बल्कि सब ऋतुओंमें ही प्रजा रोगोंसे पीड़ित होती है । मनुष्योंके स्वर, वर्ण और मनका ह्रास होता ; है, और वे लोग रोग-पीड़ित

तथा अल्पायु होकर अकालमें ही मृत्युको प्राप्त होते हैं। हे युधिष्ठिर ! कलियुगमें स्त्रियें विधवा और प्रजा नृशंस हुआ करती हैं; बादल सब स्थानोंमें जलकी वर्षा नहीं करते; अन्न आदिक भी कभी कभी उत्पन्न होते हैं। जब राजा दण्डनीतिमें स्थित न होकर प्रजाके रक्षाकी इच्छा नहीं करता, उस समय सब रसोंका भी नाश होजाता है। राजा ही सत-युग, त्रेता, द्वापर और चौथे कलियुग,—इन चारों युगोंके परिवर्त्तनका कारण है। राजा सतयुगके आचरित हुए सब कार्य्योंसे अनन्त, त्रेतायुगके आचरणसे कुछ न्यून और, द्वापर युगके आचरित धर्म और अधर्मकी संख्याके अनुसार अधिक वा अल्प स्वर्ग-सुख लाभ करता है। परन्तु कलियुगके आचरित कार्य्योंसे केवल पापयुक्त कष्ट ही भोग किया करता है। तिसके अनन्तर प्रजा समूहके आचरित पाप-पङ्कमें डूबके वह पापी नीचकर्म्म करनेवाला राजा अनेक वर्ष पर्य्यन्त नरकमें वास करता है।

युधिष्ठिर ! क्षत्रिय निखिल दण्डनीतिमें तत्पर तथा उसे ही सम्मुखवर्त्तिनी करके सदा अप्राप्त वस्तुओंकी प्राप्तिके वास्ते यत्न और प्राप्त हुई वस्तुकी रक्षाका उपाय करें। लोगोंको यथा लायत व्यवस्थापित करनेवाली मर्य्यादा और लोकभाविनी यह दण्डनीति पूर्ण रीतिसे चलाई जाने पर इस प्रकार सब लोगोंकी रक्षा करती है, जैसे माता पिता बालककी रक्षा करते हैं। हे नरनाथ ! राजाका दण्डनीति विशारद होना ही राज्यका परम धर्म्म है; क्यों कि यह निश्चय जान रखो, कि दण्डनीतिसे ही सब लोग भली भांति स्थापित हुए हैं। हे कुरु-नन्दन ! मैं इस ही कारण कहता हूं, कि तुम नीति निपुण होके धर्म्मपूर्व्वक प्रजापालन करो; क्यों कि इसी भांति प्रजाकी रक्षा करनेसे दुर्ज्जय स्वर्गको भी जीतनेमें समर्थ होगी।

६९ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे नृसत्तम ! राजा कैसे कार्य्योंसे इस लोक और मृत्युके अनन्तर पर-लोकमें भविष्यत सुखदायक सब अर्थोंको अना-यास ही प्राप्त कर सकते हैं ?

भीष्म बोले, गुणवान मनुष्य जो सब धर्म्मका आचरण करके कल्याण प्राप्त किया करते हैं; अकटुक आदि छत्तीस गुणोंसे युक्त वह धर्म्म छत्तीस प्रकारका है। राग द्वेषसे रहित होके धर्म्म कार्य्योंका आचरण, लोभके वशमें न होकर परलोककी ओर दृष्टि रखके स्नेह प्रकाशित करना; किसी भांतिका निठुर आच-रण करके धन उपार्ज्जन न करना, और जिसमें धर्म्म तथा अर्थ नष्ट न होवे, उस ही भांति यथा उचित इन्द्रियोंकी प्रीतिको साधन करना उचित है। दीनता रहित होके प्रिय वचन कहे, शूर होके भी अपनी बड़ाई न करे, प्रगल्भ होकर भी दयावान होवे और दाता होके भी अपात्रको दान न देवे। अनार्य्योंके साथ सन्धि, बन्धुजनोंके सङ्ग विग्रह, अल्पान्न पुरुषको दूत कार्य्योंमें नियत और दूसरेको पीड़ित न करके कार्य्य करना उचित है। झूठेके निकट प्रयोजन कहना, अपने मुखसे निजगुण वर्णन करना, साधुओंके निकटसे धन हरण करना कर्त्तव्य नहीं है। बिना परीक्षा किये ही महा दण्ड प्रयोग, दूसरेके निकट विचार प्रकाश, लोभियोंको धन दान और अप-कारियोंका विश्वास करना उचित नहीं है। राजा सदा ईर्षारहित, गुप्तदार; शुद्ध और घृणा रहित होवे; जिससे हानि हो, वैसे अन्नको त्यागके शुद्ध अन्न भोजन करे और एकबारगी स्त्रियोंमें आसक्त न होवे। शान्तभावसे माननीय पुरुषोंका आदर, माया रहित होकर गुरुज-नोंकी सेवा, दम्भ रहित होकर देवताओंकी पूजा करे और जिस धनकी लेना निषेध नहीं है उसे ही ग्रहण करे। प्रणय परित्याग करके सेवा करे और दक्ष होकर समयकी प्रतीक्षा

करे। धन देके सन्धि करना और आश्रयदान करके परित्याग करना उचित नहीं है। विशेष रीतिसे बिना मालूम किये प्रहार, मंत्रको नाश करके शोक, अकस्मात् क्रोध और अपकारियोंके निकट कोमलता प्रकाश करनी उचित नहीं है। हे युधिष्ठिर ! यदि तुम कल्याण प्राप्तिकी इच्छा करते हो, तो राज्य करते हुए ऐसा ही आचरण करना; क्यों कि इसके विपरीत आचरणसे राजाओंका मङ्गल नहीं हो सकता। जो यथार्थ रीतिसे इन सब गुणोंके अनुसार कार्य्य करते हैं, उनका इस लोक और मृत्युके अनन्तर परलोकमें भी मङ्गल होता है।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, पाण्डुपुत्र भीमादिकोंसे रक्षित बुद्धिमान महाराज युधिष्ठिर शान्तनु-नन्दन भीष्मके ऐसे वचन सुनके उस समय उन पितामहकी वन्दना करके उसही भांति आचरण करने लगे।

७० अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह ! मनुष्य किस प्रकार प्रजापालन करने पर आधिरूपी बन्धनमें नहीं फंसते और व्यवहार निर्णय आदि कार्य्योंमें भी अन्यथा नहीं होता; आप यह सब मेरे समीप वर्णन करिये।

भीष्म बोले, हे राजन् ! मैं वह सम्पूर्ण नित्य धर्म्म संक्षेप रूपसे तुम्हारे निकट वर्णन करूंगा, क्यों कि वह समस्त धर्म्म विस्तारके सहित वर्णित होने पर कदापि शेष न होगा। तुम धर्म्ममें निष्ठावान, वेदज्ञ, देवपूजामें रत व्रत करनेवाले और गृहमें आये हुये गुणवान ब्राह्मणोंको सदा पूजा करना। ब्राह्मणोंके उपस्थित होने पर पहिले उठके सम्मान दिखाकर उनके दोनों चरणोंकी वन्दना करे; तिसके अनन्तर पुरोहितके साथ दूसरे सब कार्य्योंको करे। इसी भांति धर्म्म कार्य्योंको अन्य मङ्गल जनक कार्य्योंमें नियुक्त करके उनसे अर्थ सिद्धि-सूचक जय आशीर्व्वाद पाठ करावे। हे भारत ! राजा काम क्रोध त्यागके सदा निजबुद्धिसे धीर और सरल भाव अवलम्बन करके यथार्थ प्राप्त वस्तुओंको ग्रहण करे। जो मूढ़ राजा काम क्रोधके वशमें होकर धन संग्रह करते हैं, वे धन वा धर्म्म कुछ भी नहीं प्राप्त कर सकते। लोभी और मूर्खोंको लोभ युक्त धन सम्बन्धीय कार्य्योंमें नियुक्त न करके लोभरहित बुद्धिमान पुरुषोंको वैसे कार्य्योंमें नियत करना उचित है; क्योंकि कार्य्याकार्य्य विवेकसे रहित मूर्ख पुरुष धनाधिकारी होनेपर काम क्रोधके वशमें होकर प्रजासमूहको पीड़ित किया करता है। राजाको उचित है, कि गिनतीमें अधिक न हो, उस ही भांति उत्पन्न वस्तुओंमेंसे छठवां भाग बलि, शास्त्रके अनुसार अपराधियोंको दण्ड और मार्गमें बनियोंकी रक्षा करके जो वेतन प्राप्त होवे, उसीसे धन सञ्चय करे। राजा इसी भांति धान्य आदि वस्तुओंमें छठवां भाग कर ग्रहण करके राज्यकी रक्षा करे, परन्तु यदि उन लोगोंके वार्षिक अहारके योग्य अन्न आदि न बचे, तो उन लोगोंके अहारके निमित्त उचित उपाय कर देवे। राजा यदि रक्षा करनेवाला, दाता, सदा धर्म्ममें रत, आलसरहित और काम क्रोधसे हीन हो, तो मनुष्य लोग उसमें अनुरक्त होते हैं। हे युधिष्ठिर ! तुम कभी भी लोभके वशमें होकर अधर्म्म आचरणसे धन उपार्ज्जन न करना; क्यों कि जो शास्त्रके अनुकूल कार्य्योंको नहीं करते; उनका धर्म्म अर्थ सब मिथ्या होजाता है। राजा केवल अर्थ शास्त्रके वशमें होनेसे कभी धर्म्म और अर्थ प्राप्त नहीं कर सकते, वरन उनका वह अर्थ कुस्थानमें विनष्ट होता है। राजा जो मोहके वशमें होकर अशास्त्रीय कर ग्रहण करके प्रजापुञ्जको पीड़ित करते हुए स्वयं ही अपना नाश करता है; धन ही उसका मूल है। जैसे दूध चाहने-

वाला पुरुष गऊका स्तन काटनेसे दूध नहीं प्राप्त कर सकता, वैसे ही असत् उपाय अवलम्बन करके राज्यको पीड़ित करनेसे उसको कदापि बढ़ती नहीं होती। जैसे जो पुरुष सदा दूध देनेवाली गऊको सेवा करता है, वही दूध पाता है, वैसे ही राजा भी उपाय आदिकोंसे राज्य पालन करनेसे ही सुख लाभ कर सकता है। जैसे माता बालकको स्तन दान करके दूध पिलाती है, वैसे ही पृथ्वी राजासे भली भांति रक्षित होनेपर दूध देनेवालोंकी भांति अन्न तथा सुवर्ण आदि वस्तु प्रदान किया करती है, महाराज! तुम वृक्षकी जड़ काटनेवालेकी भांति न होकर पुष्प सञ्चय करनेवाले मालीकी वृत्ति अवलम्बन करके राज्यकी रक्षा करना ऐसा होनेसे बहुत दिनोंतक पृथ्वीका भोगनेमें समर्थ होगे। पर चक्रसे यद्यपि तुम्हारा धन क्षय हो, तो सामरूप उपाय अवलम्बन करके अब्राह्मणोंका धन ग्रहण करना। हे युधिष्ठिर! उन्नत अवस्थाकी तो कुछ बात ही नहीं है, अवनतिकी दशा उपस्थित होनेपर भी जिसमें ब्राह्मणको धनवान देखके तुम्हारा मन विचलित न होवे, तुम सदा उन ब्राह्मणोंकी रक्षा करना और निज शक्तिके अनुसार यथा-योग्य धन दान करके उन लोगोंको सन्तुष्ट करना, ऐसा होनेसे दुर्जय स्वर्ग लाभ कर सकोगे। हे कुरुनन्दन! तुम इसी भांति धर्म-वृत्ति अवलम्बन करके प्रजा-पालन करनेसे परिणाममें शुभजनक पुण्य और नित्य यश प्राप्त करोगे। हे पाण्डुपुत्र युधिष्ठिर! तुम धर्म और व्यवहारके अनुसार यथा नियमसे प्रजा पालन करो, ऐसा होनेसे कभी भी आधि-रूपी बन्धनमें नहीं फंसोगे। जब कि चराचर जीवोंकी रक्षा करना ही परम धर्म और परम दया कहके वर्णित हुआ है; तब राजा प्रजा समूहकी रक्षा करे, यही उसका सबसे श्रेष्ठधर्म है। राजा जो राज्यरक्षामें नियुक्त होकर जीवोंके ऊपर दया प्रकाशित करता है, धर्म जाननेवाले पण्डित लोग उसे ही उसका परम धर्म कहा करते हैं। राजा यदि एक दिन भी भयके कारण प्रजाके रक्षाकी उपाय न करके जो पाप सञ्चय करता है, सहस्र वर्षके अनन्तर उससे मुक्त होता है, परन्तु प्रजासमूहको धर्मपूर्वक एकदिन मात्र रक्षा करनेसे दश हजार वर्ष पर्यन्त स्वर्गमें उसका फल भोग करते रहते हैं, योगी लोग पर्य्याय क्रमसे गृहस्थ, वाणप्रस्थ और ब्रह्मचारियोंके धर्म आचरण करके जिन लोकोंको जय करते हैं, राजा क्षण मात्र धर्म पूर्वक प्रजा-पालन करनेसे ही उन लोकोंको पाते हैं। हे कुन्तीनन्दन! तुम इस ही भांति यत्नपूर्वक धर्मको पालन करो, ऐसा होनेसे तुम उस ही पुण्यफलसे कभी भी आधिरूपी बन्धनमें नहीं बधोगे, बल्कि परलोकमें महत् सम्पत्ति प्राप्त करोगे। राजा राजरहित होनेपर इस प्रकार धर्म सब कभी भी आचरित नहीं होते, इससे राजा ही उस सम्पूर्ण धर्मका फल भोग करता है। युधिष्ठिर! तुम भी इस बहुत् राज्यको पाके धीरज धरके धर्मपूर्वक प्रजासमूहको प्रतिपालन करो और सोमरस आदिसे इन्द्रको भी अभिलाष पूरी करते हुए सुहृद मित्रोंको सन्तुष्ट करो।

७१ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, महाराज! जो साधुओंकी रक्षा और दुष्टोंको राज्यसे दूर करते हैं, उन्हें ही राज पुरोहित बनाना राजाका कर्त्तव्य है। इस विषयमें पुरूरवाके पुत्र ऐलके सङ्ग वायुका जो वार्त्तालाप हुआ था; पण्डित लोग इस प्रसङ्गमें उस ही प्राचीन इतिहासका उदाहरण दिया करते हैं।

पुरूरवा बोले, "किससे ब्राह्मण लोग उत्पन्न हुए हैं? क्षत्रिय आदि तीनों वर्णोंकी भी

जिससे उत्पत्ति हुई है और किस कारणसे ब्राह्मण लोग सबसे श्रेष्ठ हुए, आप यह सब मेरे निकट वर्णन कीजिये।

वायु बोले, 'हे भरतर्षभ राजसत्तम! ब्रह्माके मुखसे ब्राह्मण, दोनों भुजासे क्षत्रिय और ऊरुसे वैश्य उत्पन्न हुए हैं, और इन तीनों वर्णोंकी सेवाके वास्ते चौथे वर्ण शूद्रको उत्पन्न किया। ब्राह्मण उत्पन्न होते ही धर्म्म-रूप कोषकी रक्षाके निमित्त सब भूतोंके ईश्वर होके पृथ्वीमें जन्म ग्रहण किया; उसी ईश्वरके पितामहने प्रजासमूहकी रक्षाके वास्ते द्वितीय वर्ण क्षत्रियको दण्ड धारण करनेके निमित्त उत्पन्न करके पृथ्वीके शासन कार्य्यमें नियुक्त किया; वैश्य धन्य धान्यसे तीनों वर्णोंका भरण करे और शूद्र ब्राह्मण आदि तीनों वर्णोंकी सेवा करे; ऐसी ही आज्ञा की।"

पुरूरवा बोले, हे वायु! यह पृथ्वी और इसका समस्त धन धर्म्मके अनुसार ब्राह्मण और क्षत्रिय इन दोनोंके बीच किसीका हो सकता है? आप कृपाकर यह विषय मेरे निकट वर्णन करिये।

वायु बोले, 'धर्म्म जाननेवाले सब लोग कहा करते हैं, कि पृथिवी और इसका जितना धन है, वह सब ज्यैष्ठत्व और आभिजात्यके कारण ब्राह्मणका ही होसकता है। ब्राह्मण सब वर्णोंके गुरु ज्येष्ठ और श्रेष्ठ हैं, इससे वे जो कुछ दान करते, पहरते और भोजन करते हैं, वह सब अपने धनसे ही किया करते हैं। जैसे स्त्रियें पतिके न रहनेपर देवरको पति करती हैं, वैसे ही ब्राह्मणोंके रक्षा न करनेसे पृथ्वी आनन्तर्य्यके कारण क्षत्रियोंको ही अपना पति किया करती है। महाराज! यही प्रथम कल्प है, परन्तु आपत्कालमें इसका विपरीत भाव भी हो सकता है। यदि तुम्हें वह उत्तम स्थान स्वर्ग और स्वधर्म्म उपार्जनकी अभिलाषा हो, तब तुम जो कुछ भूमि जय करो, वह सब वैदिक कर्म्ममें रत, धर्म्म जाननेवाले, तपस्वी, निज धर्म्ममें अनुरक्त लोभ रहित ब्राह्मणोंको दान करना। जो बुद्धिमान विनीत और सत्-कुलमें उत्पन्न हुए ब्राह्मण लोग निज श्रेष्ठ बुद्धिके प्रभावसे विचित्र वाक्योंसे राजाको सन्मार्गमें लाते हैं, वेही राज पुरोहित हैं; वे उपदेश युक्त अभिमान रहित और क्षत्रिय धर्म्म रत राजाके आचरित धर्म्मके अंशभागी होते हैं; और वह बुद्धिमान राजा भी प्रजा-पुञ्जके समीप निजकर्म्मके अनुसार सत्कार और महत् प्रतिष्ठा प्राप्त करते हैं। इसी भांति प्रजा राजाका आसरा ग्रहण करके और उससे भली भांति रक्षित होके निज धर्म्ममें निवास करती हुई स्वच्छन्दता और निर्भयताके सहित जो कुछ धर्म्माचरण करती है, राजा उस धर्म्मका चतुर्थांश फलभागी होता है। देवता, मनुष्य, पितर गन्धर्व्व, सर्प और राक्षस लोग यज्ञका ही आसरा किया करते हैं; परन्तु राजा रहित होनेसे यज्ञादिक सब कर्म्म लुप्त होते हैं। देवता और पितर लोग यज्ञादिकोंमें होम किये हुए घृतादिकसे ही जीवन धारण करते हैं; परन्तु वे यज्ञादि सब कर्म्म राजाके अधीन हैं। राजशासन रहनेसे ही प्रजा धूपके समय छाया, जल और शीतल वायुसे, और शीत ऋतुमें वस्त्र, अग्नि तथा सूर्य्यके उत्तापसे सुख अनुभव किया करती हैं और उन लोगोंका मन, शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्धमें रमण करता है; परन्तु जब राजासे रहित होंगे, तब वे लोग भयसे युक्त होकर किसी प्रकार भी वैसा सुख अनुभव नहीं कर सकेंगे, तब वैसे समयमें जो पुरुष अभय दान करते हैं; उन्हें ही महत् फल प्राप्त होता है; अधिक क्या कहूं, उस समय प्राण पर्य्यन्तदान करनेमें भी संकुचित न होवे; क्यों कि कोई दान भी प्राण दानके समान नहीं है। राजा ही सबका आधार है और वही समयके अनुसार इन्द्र, यम

तथा धर्म्म इत्यादि विविध रूप धारण किया करता है।

७२ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, राजा राज्य शासनमें प्रतिष्ठित होकर अर्थकी गहन गतिको विचारके शीघ्र ही विद्वान और बहुश्रुत ब्राह्मणको पुरोहित कार्य्यमें नियुक्त करे। महाराज! जिसका राज पुरोहित धर्म्मात्मा और मन्त्र जाननेवाला तथा राजा भी वैसे ही गुणोंसे युक्त होता है, उन प्रजासमूहका सब भांतिसे कल्याण हुआ करता है। राजा और राजपुरोहित आपसमें आलस रहित और सावधान होकर सुहृदता अवलम्बन करके तपस्वियोंकी भांति धर्म्ममें रत और श्रद्धावान होनेसे देवता, पितर, पुत्र और सबकी उन्नति साधन करते हैं। प्रजा ब्राह्मण और क्षत्रियोंका सम्मान करनेसे सुख पाती है, परन्तु उनकी अवमानना करनेसे नष्ट होती है; क्योंकि पण्डित लोग ब्राह्मण और क्षत्रियको ही सब वर्णोंका मूल कहा करते हैं। हे युधिष्ठिर! आर्य्य लोग इस प्रस्तावमें ऐल और कश्यपके सम्वाद रूपी जिस इतिहासका उदाहरण देते हैं, उसे सुनो।

ऐल बोले, ब्राह्मण और क्षत्रिय इन दोनो तेजसे राज्य रक्षित हुआ करता है, परन्तु इन दोनोंमें यदि कोई किसीको परित्याग करे, तो सब वर्ण किसका आसरा ग्रहण करते हैं, और किसके जरिये रक्षित होते हैं?

कश्यप बोले, ब्राह्मण यदि क्षत्रियको परित्याग करे, तो उसका वह राज्य नष्ट होता है, डाकू लोग राज्यमें उपद्रव किया करते और पण्डित लोग वैसे क्षत्रियको म्लेच्छजाति कहके अनुमान किया करते हैं। क्षत्रिय लोग भी यदि ब्राह्मणको परित्याग करें, तो उनके वेदोंकी बढ़ती, गर्द-मथित तथा धर्म्म कार्य्य आवरित नहीं होते और उनके पुत्र भी यथा रीतिसे रक्षित होके वेदाध्ययन करके यज्ञादि कर्म्मोंका आचरण नहीं करते, बल्कि संकर जाति तथा डाकुओंकी भांति वृत्ति अवलम्बन करते हैं। क्षत्रिय लोग ब्राह्मणोंके आश्रय हैं, इससे वे लोग भयके सहित आपस मिलके एक दूसरे की रक्षा करनेमें समर्थ होते हैं। ये दोनों आपसमें परस्परकी रक्षा करते हुए महत् प्रतिष्ठा प्राप्त करते हैं, परन्तु यदि किसी प्रकारसे उनकी वह प्राचीन सन्धि भङ्ग होवे, तो दोनोंही नष्ट होते हैं। जैसे अगाध जलमें विपद्ग्रस्त नौका किसी प्रकार भी किनारे नहीं लग सकती, वैसे ही वह भी किसी विषयके पारदर्शी नहीं होसकते; वर्णविचार लोप होता और सब प्रजाका नाश होता है। ब्रह्मरूपी वृक्ष यथा उचित रीतिसे रक्षित होने पर सुख और सुवर्णमय फलकी वर्षा करता है; परन्तु, उसकी रक्षा न करनेसे दुःख और नरकरूपी फल उत्पन्न होता है। जब ब्रह्मचारी लोग डाकुओंसे निवारित होकर निज अधीत शाखा परित्याग करते और ब्राह्मण लोग अपने पाठनीय वेदका आसरा त्याग करते हैं, उस समय इन्द्र अल्प जलकी वर्षा करते और वहांपर सदा अनेक भांतिके उत्पात उपस्थित होते हैं। जब कोई पापी पुरुष स्त्री अथवा ब्राह्मणहत्या करके भी सभाके बीच प्रतिष्ठा प्राप्त करता है, और राजाके निकट भी भयभीत नहीं होता, तब वैसे पुरुषसे राजाको महत् भय उपस्थित होता है। हे ऐल! जब पापी लोग पाप कर्म्मसे कालके उत्पत्तिकी वृद्धि करते रहते हैं, तब राजा अत्यन्त ही रुद्र और हिंसक होकर साधु और दुष्ट सबको ही विनष्ट किया करता है।

ऐल बोले, हे कश्यप! जीव लोग जो जीवोंके जरियेसे ही मारे जाते हैं, वह रुद्र कैसा है और किस प्रकार उत्पन्न होता है तथा राजा ही किस कारण रुद्ररूप हुआ करता है, आप वह

सब विस्तार पूर्व्वक मेरे निकट वर्णन करिये?—

कश्यप बोले, जैसे आकाशमें उठे हुये उत्पातके विषयमें वायु ही आकाश देवताका इधर उधर सञ्चलित करता है, उससे ही बिजली, वज्र और अशनि आदि सब उत्पात उत्पन्न हुआ करते हैं; वैसे ही मनुष्यके हृदयमें स्थित आत्मा ही काम क्रोध आदि रूपसे प्रगट होके अपने वा दूसरेके शरीरको नष्ट किया करता है।

ऐल बोले, वायुके सङ्ग इस रुद्ररूपी आत्माको उपमा नहीं होसकती, क्योंकि वायु बाहरी सब पदार्थोंको वेष्टन करता है, बादल जलको वर्षा करते हैं; इससे उसके सङ्ग भी तुलना नहीं हो सकती, और जब मनुष्योंके बीच कितनोंको सदा काम क्रोधके वशमें होके मरते और मोहित होते देखा जाता है, तब देवरूपसे भी उपमा नहीं हो सकता।

कश्यप बोले, जैसे अग्नि एक गृहमें प्रज्वलित होके समस्त ग्राम वा चौतरोंको भस्म कर देती है, वैसे ही रुद्रदेव भी सबको मोहित करते हैं; इससे सब कोई पुण्य पाप जनक शङ्कर कार्य्यमें प्रवृत्त हुआ करते हैं।

ऐल बोले, जब पापियोंके विशेष रूपसे पाप कर्म्म करने पर भी दण्डनीति पुण्य पापरूप दोनों भांतिके कर्म्म करनेवालोंके ऊपर प्रयोग हुआ करती है, तब क्यों मनुष्य सत्कर्म्मोंका अनुष्ठान करेंगे और असत् कर्म्म न करेंगे।

कश्यप बोले, पापाचारियोंके सङ्ग किसी प्रकारका सम्बन्ध न रखनेसे मनुष्य पापरहित होता है, इससे उसे दण्डनीतिके अधीन नहीं होना पड़ता; परन्तु जैसे सूखे काठके साथ गीला काठ भी भस्म होजाता है, वैसे ही पापाचारियोंके साथ निवासके कारण मिश्रितभाव होनेसे पापियोंकी भांति दण्डनीय होना पड़ता है; इससे पापियोंके सङ्ग सब भांतिसे संसर्ग त्यागना उचित है।

ऐल बोले, किस कारण पृथ्वी साधु और दुष्ट दोनों भांतिसे लोगोंको धारण किया करती है? सूर्य्य क्यों दोनोंको उत्ताप प्रदान करता है? वायु किस कारणसे दोनोंके समीप समान रूपसे बहता है और किस कारण जल साधु और दुष्ट दोनोंको पवित्र करता है?

कश्यप बोले, हे राजपुत्र! इस संसारमें ही ऐसा हुआ करता है। परन्तु परलोकमें ऐसा नहीं होता; मनुष्य जो कुछ पुण्य सञ्चय वा पापाचरण करते हैं, परलोकमें गमन करके उसका इतर-विशेष देखते हैं। जो लोग संसारमें सदा पुण्य कर्म्म करते हैं, वे ब्रह्मचारी पुरुष परलोकमें मधुमान् घृतार्चि, सुवर्णकी भांति ज्योतिसे युक्त और अमृतकी नाभि स्वरूप परम रमणीय स्थानमें निवास करते हुए दुःख और जरा मरण-रहित होकर अनेक सुख प्राप्त करते हैं। परन्तु वहां पर पापियोंके वास्ते जो स्थान निर्दिष्ट है, वह नरक और सदा दुखसे पूर्ण शोकपूरित तथा प्रकाश रहित है; निन्दनीय पापी लोग वहां पर जाके बहुत समय पर्य्यन्त सन्तापित होकर अपने किये हुए कर्म्मके निमित्त शोक प्रकाश किया करते हैं। इसी भांति ब्राह्मण और क्षत्रियोंमें भेद उपस्थित होने पर प्रजाको असह्य दुःख प्राप्त होता है, इससे राजाको यह सब जानके अनेक भांतिकी विद्या जाननेवाले ब्राह्मणको पुरोहितके कार्य्य पर नियुक्त करना उचित है। राजा पहिले पुरोहितको अभिषिक्त करे, ऐसा होनेसे ही उसका धर्म्म भली भांति रक्षित होगा; क्योंकि ब्रह्मवित् पुरुष कहा करते हैं, कि ब्राह्मण लोग पहिले उत्पन्न हुए हैं और वे लोग ही सब वस्तुओंके अग्रभुक् कहके माने जाते हैं। प्रथम उत्पन्न हुए ब्राह्मण लोग जो जेठल और आभिजात्यके कारण क्षत्रियोंके मान्य और पूज्य हैं, उस विषयमें मैंने पहिले ही तुम्हें उत्तर दिया है। बलवान राजाको उचित है, कि ब्राह्मणको सबसे

श्रेष्ठ और उत्तम वस्तु प्रदान करे। हे युधिष्ठिर! क्षत्रिय लोग ब्रह्मतेजसे रक्षित होकर ही ब्राह्मणोंकी रक्षा करते हैं; इससे ब्राह्मणोंकी विशेष रूपसे पूजा करना ही राजाका कर्त्तव्य है।

७३ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, राज्यका उपाय और मङ्गल समूह राजाके वशमें है, परन्तु राजाका उपाय और मङ्गल समूह सब पुरोहितके अधिकारमें है। जिस राज्यमें पुरोहित ब्रह्मतेजसे प्रजाके अदृष्ट और राजा बाहुबलसे दृष्टभय निवारण करता है; उस ही राज्यमें सुख प्राप्त होता है, इस विषयमें कुबेरके साथ राजा मुचकुन्दका जो कुछ बात्तीलाप हुआ था, पण्डित लोग इस प्रस्तावमें उस प्राचीन इतिहासका प्रमाण दिया करते हैं। पृथ्वीनाथ मुचकुन्दने समस्त पृथ्वी जीतके निज बल मालूम करनेके वास्ते अलकानाथ कुबेरके समीप गमन किया। उसे देखकर यक्षराज वैश्रवणने राक्षसोंको आज्ञा दी, वे लोग मुचकुन्दकी सेनाका नाश करने लगे। हे शत्रुनाशन! नरनाथ मुचकुन्द अपनी सेनाका नाश होता देखकर विद्वान् पुरोहितकी निन्दा करने लगे। उसे सुनकर धर्म्म जाननेवालोंमें अग्रणी वशिष्ठने उग्र तपस्यासे राक्षसोंका नाश किया और उसके जरियेसे मुचकुन्दकी भी गति मालूम की। तिसके अनन्तर राजा वैश्रवण निज सेनाका नाश देखकर मुचकुन्दके सम्मुख उपस्थित होकर बोले।

कुबेर बोले, पहिले समयमें अनेक राजा पुरोहितके प्रभाव और बलसे तुमसे भी अधिक बलवान हुए थे, परन्तु तुमने जैसी वृत्ति अवलम्बन की है, किसीको भी मैंने वैसी वृत्ति अवलम्बन करते नहीं देखा। वे राजा लोग कृतास्त्र और बलवान होके भी मेरे निकट आके सुख दुःखका स्वामी समझके मेरी उपासना करते थे, तुम किस कारण ब्राह्मण बलसे गर्व्वित होकर नीतिमार्ग अतिक्रम करते हो? यदि तुम्हारी भुजामें बल हो, तो उसे दिखाओ।

तिसके अनन्तर मुचकुन्दने क्रुध होके क्रोध-रहित सावधान कुबेरका इस नीतियुक्त वचनसे उत्तर दिया। 'ब्रह्म और क्षत्रिय दोनों ही प्रजापतिके जरिये एक योनिरूपसे उत्पन्न हुए हैं; इससे उनका बलविधान परस्पर पृथक् रीतिसे रहनेपर वे लोग कदापि सब लोगोंको प्रतिपालन करनेमें समर्थ नहीं होते। ब्राह्मणोंमें तपस्या और मन्त्रबल तथा क्षत्रियोंमें अस्त्र और बाहुबल सदा प्रतिष्ठित रहता है; इन दोनोंको मिलके राज्यपालन करना ही उचित है। हे यक्षनाथ! मैं इस ही नीतिके अनुसार कार्य्यमें प्रवृत्त हुआ हूं, तब तुम क्यों मेरी निन्दा करते हो।

तिसके अनन्तर विश्रवानन्दनने पुरोहित सहायसे युक्त मुचकुन्दसे कहा, हे राजन्! तुम निश्चय जान रखो, मैं ईश्वरकी बिना आज्ञाके किसीको राज्य प्रदान नहीं करता, और बिना ईश्वरकी अनुमतिके किसीका राज्य भी नहीं हरता, इससे मैंने तुम्हें जो राज्य प्रदान किया है, तुम उस समस्त पृथ्वीका शासन करो।" राजा मुचकुन्दने ऐसा सुनकर नीचे कहा हुआ उन्हें यह उत्तर दिया।

मुचकुन्द बोले, "राजन्! मैं आपका दिया हुआ राज्य भोगनेकी इच्छा नहीं करता, निज बाहुबलसे जो कुछ राज्य प्राप्त किया है, उसे ही भोग करूंगा, यही मेरा एकमात्र अभिप्राय है।"

भीष्म बोले, तिसके अनन्तर राजा वैश्रवण मुचकुन्दको निर्भयताके सहित क्षात्र-धर्म्ममें स्थित देखके अत्यन्त विस्मित हुए। अनन्तर पृथ्वीनाथ मुचकुन्द सब भांतिसे क्षात्र-धर्म्मके अनुगामी होकर निज बाहुबलसे प्राप्त हुई पृथ्वीको शासन करने लगे। हे युधिष्ठिर! जो

राजा इसी भांति ब्राह्मणको अगाड़ी करके राज्य शासन करता है, वह विजय न करने योग्य पृथ्वीको जय करके महत् यश प्राप्त करता है। ब्राह्मणको सदा पवित्र होना और क्षत्रियको सदा शस्त्रधारी होना उचित है; क्योंकि जगत्में जो कुछ है; वह सब उन दोनोंके अधीन है।

७४ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! राजा लोग जिस वृत्तिका अवलम्बन करके प्रजासमूहकी उन्नति और सब पुण्यलोकोंको जय करते हैं। आप वह सब मेरे निकट वर्णन करिये।

भीष्म बोले, राजा प्रजापालनमें प्रवृत्त होके दानी, उपवासी, तपस्यामें रत और यज्ञशील होवे. राजा धर्म्मपूर्व्वक सदा प्रजाको पालन करते हुए नित्य ही उद्योग और विविध दानसे धर्म्मात्माओंकी पूजा करे। राजा यदि धार्म्मिक पुरुषों को पूजा करे, तो वे लोग सब जगह पूजित होते हैं। क्योंकि राजा जैसा आचरण करता है, वही प्रजासमूहको प्रमाण हुआ करता है। राजा यमराज की भांति सदा शत्रुओंके विषयमें दण्डग्रहण करके तैयार रहे और सब भांतिसे डाकुओंका नाश करे; कभी भी इच्छानुसार किसीको क्षमा न करे। हे भारत! प्रजा राजासे रक्षित होकर जो कुछ धर्म्माचरण करती है; राजा उसमें चतुर्थांश फलभागी होता है। जे लोग जो कुछ दान, अध्ययन, होम और पूजा करते हैं, राजा धर्म्मपूर्व्वक प्रजापालन करके उसमेंसे चौथा अंश फल भोग किया करता है। हे भरत-नन्दन! राजा यदि प्रजाको रक्षा न करे, तो राज्यके बीच जो कुछ अधर्म्म उपस्थित होता है, राजा उस पापमें भी चतुर्थांश भागी होता है। राज्यमें दुष्ट और मिथ्यावादी पुरुष जो कुछ कर्म्म करते हैं। राजा अवश्य ही उसमें अर्द्धांश भागी होता है। हे पृथ्वीनाथ! कोई कोई कहते हैं राजा लोग वैसे पापके सम्पूर्ण तथा उससे भी अधिक फलभागी हुआ करते हैं। हे युधिष्ठिर! राजा वैसे पापसे जिस प्रकार मुक्त होता है, उसे सुनो, जिस धनको चोरोंने चुराया है, उसे यदि फिरा न सके, तो वैसे अशक्त राजाको उचित है, कि निज कोषसे उतना ही धन प्रदान करे। सब वर्णोंको ही ब्राह्मणोंकी भांति ब्रह्मस्वकी रक्षा करनी उचित है; और जो ब्राह्मणोंका अपकार करे, उसे राज्यमें रहने देना उचित नहीं है। ब्रह्मस्व रक्षित होनेसे सब ही भांति रक्षित होता है; इससे उनकी कृपासे ही राजा कृत कृत्य हो सकता है। जैसे सब प्राणी जलको और पक्षी महावृक्षका आसरा ग्रहण करते हैं, वैसे ही मनुष्य लोग सब अर्थ सिद्ध करनेवाले राजाका आसरा ग्रहण किया करते हैं। परन्तु कामात्मा, सदा कामबुद्धि, नृशंस और अत्यन्त लोभी राजा प्रजा पालन नहीं कर सकते!

युधिष्ठिर बोले, मैं सुखकी अभिलाषासे राज्य प्राप्ति की इच्छा नहीं करता हूं। मैंने जिस धर्म्मके वास्ते राज्यकी अभिलाष की थी, जब राज्यके बीच वह धर्म्म ही नहीं है; तब वैसे धर्म्म-रहित राज्यसे मुझे क्या प्रयोजन है? मैं धर्म्म-साधनके वास्ते फिर बनमें गमन करूंगा और दम्भरहित तथा जितेन्द्रिय होकर उस पवित्र बनके बीच फल मूल खानेवाले मुनियोंके धर्म्मकी आराधना करूंगा।

भीष्म बोले, तुम्हारी बुद्धि दूसरेको दुःख देनेवाली नहीं है इसे मैं जानता हूं, परन्तु, राजधर्म्मके विषयमें वैसी बुद्धिकी अत्यन्त निर्गुण ही कहनी होगी; क्योंकि शान्त और अनृशंस बुद्धिसे कभी राज्य रक्षित नहीं होता। युधिष्ठिर! यदि तुम इकबारगी कोमल, कृपालु और अत्यन्त धार्म्मिक होकर आर्य्यपुरुषोंके प्रदर्शित मार्गको अतिक्रम करोगे, तो सब कोई तुम्हें असमर्थ समझेंगे और तुम किसीके प्रशं-

साभाजन नहीं होगी। हे तात! तुम जिस रीतिसे निवास करनेकी इच्छा करते हो, वह क्षत्रियोंका धर्म नहीं है, इससे तुम्हारे पितर पितामहने जिस वृत्तिको अवलम्बन किया था, तुम भी उसहीका अनुगमन करो। तुम लोभके वशमें होकर केवल अनृशंस वृत्ति त्याग करनेसे ही प्रजापालनसे प्रकट हुए धर्म-फलको नहीं प्राप्त कर सकोगे। हे तात! तुम जिस बुद्धि-वृत्तिके अनुगामी हुए हो, तुम्हारे जन्मके समय कुन्ती अथवा पाण्डु किसीने भी ऐसी प्रार्थना नहीं की थी। तुम्हारे पिता नित्य ही तुम्हारे पराक्रम, बल और सत्यके वास्ते और कुन्ती महात्म और उदारताके निमित्त प्रार्थना करती थी। पत्र जो मनोहर यज्ञादिकोंसे देवताओं और श्राद्धादिकोंसे पितरोंको तृप्त करते हैं; देवता और पितर लोग भी पुत्रसे ऐसी ही कामना किया करते हैं। दान, अध्ययन, यज्ञ और प्रजापालन करनेसे चाहे धर्म हो, चाहे अधर्म ही होवे; इन कई एक कर्म्मोंको करनेके ही वास्ते तुम्हारा जन्म हुआ है। जो ध्रुव कार्य्योंमें नियुक्त होकर यथा समयमें नियत भार उठाते हैं, उनके स्वयं अवसन्न होनेपर भी उनको कीर्त्ति नहीं अवसन्न होती। हे युधिष्ठिर! सुशिक्षित मनुष्यकी तो बात दूर रहे, जब भली भांति शिक्षित घोड़े भी सावधानीके सहित निज भारको उठाया करते हैं; तब तुम कर्म्म और वचनसे सबके निकट निर्दोषी होके ही निज आचरित कर्म्मसे ही सिद्धि प्राप्त कर सकोगे। हे तात! धार्म्मिक, गृहस्थ, राजा अथवा ब्रह्मचारी कोई कभी भी इकबारगी अभिनिवेशके सहित शुद्ध धर्म्माचरण नहीं कर सकते; इससे निज आचरित अल्प कर्म्म भी यदि सारगर्भ हो, तो वह कर्म्म न करनेकी अपेक्षा उत्तम है; क्यों कि कर्म्म न करनेसे अत्यन्त ही पापभागी होना होता है।

जब सद्गुणशाली धर्म्मात्मा मनुष्यलोग राजमन्त्री आदि श्रेष्ठ ऐश्वर्य लाभ करते हैं, तब ही राजा अप्राप्त वस्तुओंकी प्राप्ति और प्राप्त वस्तुओंको प्रतिपालन रूप योगक्षेम कुशलदायक हुआ करता है। धर्म्मात्मा राजा राज्य पाके किसीको दान, किसीको बल और किसीको मीठे वचनसे सब भांति अपने वशमें करे। सत्कुलोंमें उत्पन्न हुए पण्डित लोग जिसके आश्रय लाभसे परितृप्त होकर निर्भय और स्वच्छन्दताके सहित वास करते हैं, स्वयं धर्म्मको भी उससे श्रेष्ठ नहीं समझा जाता।

युधिष्ठिर बोले, पितामह! स्वर्ग प्राप्तिका उत्तम उपाय क्या है? उससे उत्तम प्रीति कौनसी है और उससे श्रेष्ठ ऐश्वर्य ही कौनसा है? यदि यह सब आपको मालूम हो, तो मेरे निकट यथावत् वर्णन कीजिये

भीष्म बोले, हे नरनाथ! जो राजा भयपीड़ित मनुष्योंको क्षणभरके बीच उस भयसे छुड़ाके उन लोगोंका मङ्गल विधान करता है, वह राजा ही हम लोगोंके बीच स्वर्गजित् है, यह मैं तुम्हारे निकट सत्य ही कहता हूं। हे कुरुसत्तम! कुरुकुलमें तुम ही प्रीतिमान हो; इससे तुम राजा होकर स्वर्गजय, साधुओंका पालन और दुष्टोंका शासन करो। हे तात! जैसे सब प्राणी जल और पक्षी सुस्वादु फलसे युक्त वृक्षके आसरेसे जीवन धारण करते हैं; वैसे ही साधुओंके सहित सुहृद लोग तुम्हें उपजीव्य करके जीवन धारण करें। जो राजा शूर, दुष्टोंका नाश करनेवाले, अनृशंस, जितेन्द्रिय प्रजावत्सल, अतिथि और अपने अधीनमें रहनेवाले परिवार समूहको भोजन कराके आप भोजन करता है, मनुष्य लोग उस ही राजाका आसरा करके जीवन यात्रा निर्व्वाह करते हैं।

७५ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, पितामह! जो स्वकर्म्मोंमें रत और जो निषिद्ध कर्म्मोंमें रत हैं, उन सब ब्राह्मणोंमें कौनसी विशेषता है? वह मुझसे विस्तार पूर्व्वक कहिये।

भीष्म बोले, हे राजन्! जो लोग विद्या और शम, दम आदि लक्षणोंसे युक्त और सबमें समदर्शी हैं, वे ब्राह्मण लोग ही ब्रह्मतुल्य कहे जाते हैं। ब्राह्मणोंके बीच जो लोग स्वकर्म्ममें रत होके ऋक् यजु और साम इन तीनों वेदोंको जानते हैं, वे लोग देवता समान माने जाते हैं। हे राजन्! श्रेष्ठ ब्राह्मणोंके बीच जो जन्मोचित कर्म्महीन महा नीच कर्म्म करने वाले और ब्रह्मबन्धु हैं, वे शूद्रके समान होते हैं। जो सब ब्राह्मण वेदाध्ययन रहित और निरग्निक हैं, धर्म्मात्मा राजा उनसे कर ग्रहण करे और बिना वेतन ही उनसे राज्यकी सेवकाई करावे। हे राजन्! जो धर्म्माधिकारमें नियुक्त रहते और वेतन लेकर देवपूजा, नक्षत्र गणना ग्राम याजन और महापथ अर्थात् नौका पर चढ़के समुद्रमें गमन करते हैं, शास्त्रमें ये पांचों ही ब्राह्मण चाण्डाल कहाते हैं। और भी ब्राह्मणोंके बीच जो लोग ऋत्विक्, पुरोहित, मन्त्री, दूत और वार्त्तावहका कार्य्य करते हैं; वे क्षत्रिय तुल्य समझे जाते हैं। जो लोग घुड़सवार गजसवार रथी और पदातिका कार्य्य करते हैं, वे वैश्य तुल्य कहाते हैं। हे पृथ्वीनाथ! राजा कोष रहित होने पर पहिले कहे हुए ब्रह्म समान और वेद जाननेवाले ब्राह्मणोंके अतिरिक्त इन सब ब्राह्मणोंसे कर ग्रहण करे, उससे उसे अधर्म्म नहीं होता; क्यों कि इस प्रकार वैदिक शासन है, कि ब्राह्मणोंके बीच जो लोग निषिद्धकर्म्म करते हैं, उनके और अब्राह्मणोंके धनका राजा ही स्वामी हुआ करता है। राजा दूसरेके कर्म्ममें रत ब्राह्मणोंके विषयमें किसी प्रकार भी उपेक्षा न करे, बल्कि धर्म्मानुग्रह निबन्धनसे उन लोगोंको राजनियममें नियमित और पूर्व्व रीतिसे पृथक् कर रखे। हे राजन्! जिस राजाके राज्यमें ब्राह्मण चोर होता है, धर्म्म जाननेवाले पुरुष वह अपराध राजाके ही ऊपर आरोपित किया करते हैं। हे नरनाथ! इससे पण्डित लोग ऐसा कहा करते हैं, कि जो जीविका रहित वेद जाननेवाले स्नातक ब्राह्मण राज्यके बीच चोर होंगे; राजाको ही उनका भरण पोषण करना होगा। यद्यपि वह ब्राह्मण राजाके निकट वृत्ति प्राप्त होने पर भी चोरी कर्म्मसे निवृत्त न होवे, तो ऐसा होनेसे राजा उसे बन्धुबान्धवोंके सहित निज देशसे निकाल देवे।

७६ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे भरतश्रेष्ठ पितामह! राजा जिनके धनाधिकारके प्रभु होंगे और कैसी वृत्ति अवलम्बन करके रहेंगे; वह मुझसे कहिये।

भीष्म बोले, हे राजन्! ऐसी जनश्रुति है, कि ब्राह्मणोंमें जो लोग कुकर्म्मी हैं, उनका और अब्राह्मणोंका राजा ही धन स्वामी होता है; और साधु पुरुष राजाके विषयमें ऐसा कहा करते हैं कि ब्राह्मण कुकर्म्मी होनेपर राजा कभी भी उसके विषयमें उपेक्षा न करे। जिस राज्यमें ब्राह्मण चोर होता है, पण्डित लोग वह दोष राजाके ही ऊपर आरोपित करते हैं; इससे राजऋषि लोग ब्राह्मणोंके वैसे कर्म्मसे अपनेको ही दोषी समझके उनका पालन किया करते हैं। हे राजन् केकयराजने राक्षससे वनमें हरे जाने पर जो कुछ वचन कहे थे, पण्डित लोग इस स्थलमें उसही प्राचीन इतिहासको प्रमाण रूपसे वर्णन किया करते हैं। किसी राक्षसने वनके बीच स्वाध्यायरत, व्रतमें तत्पर, पराक्रमी केकयराजको ग्रहण किया, तब केकयराजने उससे कहा, कि मेरे राज्यमें चोर, कायर, मद पीनेवाले, निरग्निक और यज्ञहीन कोई भी नहीं है; इससे तुम

मुझे स्पर्श मत करो, मेरे निकटसे दूर रहो। मेरे राज्यमें दक्षिणाहीन यज्ञ नहीं होते, कोई व्रतहीन पुरुष वेद नहीं पढ़ते, अध्ययन, अध्यापन, यजन, याजन, दान और प्रतिग्रह ये छःओं कर्म्म सदा विद्यमान हैं और निज कर्म्ममें तत्पर, सत्यवादी, शान्त ब्राह्मण लोग मेरे राज्यमें सदा सम्मानित और पूजित हुआ करते हैं। इससे तुम मुझे स्पर्श न करो, मेरे समीपसे दूर रहो। मेरे राज्यमें सत्य-धर्म्म जाननेवाले क्षत्रिय लोग किसीके समीप याचना नहीं करते, सब ही दान किया करते हैं, पढ़ते है, पढ़ाते नहीं, यज्ञ करते हैं, कराते नहीं ; और वे सब ब्राह्मणोंके प्रतिपाल करनेवाले, युद्धमें पीछे न हटनेवाले तथा निज कर्म्ममें रत हैं ; इससे तुम मुझे स्पर्श मत करो, मेरे समीपसे दूर रहो। मेरे राज्यमें वैश्य लोग कपट रहित होके कृषि, गोरक्षा और वाणिज्य वृत्ति अवलम्बन करके जीविका निर्व्वाह करते हैं, वे सब ही सावधान, क्रियावान, उत्तम व्रत करनेवाले, सत्यवादी निज कर्म्ममें रत और परस्पर सन्विभाग युक्त दम, पवित्रता और सुहृदताका आसरा किया करते हैं। इससे तुम मुझे स्पर्श मत करो, मेरे समीपसे दूर रहो। मेरे राज्यमें शूद्र-लोग असूया-रहित, निज कर्म्ममें स्थित और ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य इन तीनों वर्णोंके अवलम्बसे यथा उचित जीविका निर्व्वाह किया करते हैं, इससे तुम मुझे स्पर्श मत करो, मेरे समीपसे दूर होजाओ, मैं कृपण, अनाथ वृद्ध, निर्व्वल, आतुर, और स्त्रियोंकी यथा उचितसे सेवा किया करता हूं, कुलधर्म्म और देश-धर्म्म यथारीतिसे स्थापित करता हूं, किसीको नष्ट नहीं करता मेरे समीप तपस्वी लोग आदरके सहित पूजित प्रतिपालित और संविभक्त हुआ करते हैं, मैं सबको बिना भोजन कराये भोजन नहीं करता, पराई स्त्री-स्पर्श नहीं करता और कभी स्वतन्त्र क्रीड़ा नहीं करता ; इससे तुम्हें मुझे ग्रहण करनेका अधिकार नहीं है ; तुम मेरे समीपसे दूर होजाओ। मेरे राज्यमें अब्रह्मचारी भिक्षा-वृत्ति अवलम्बन नहीं करते, भिक्षुक ही ब्रह्मचर्य्य करते हैं, और ऋत्विकके अतिरिक्त दूसरे पुरुषके जरिये देवताओंको आहुति नहीं दी जाती इससे तुम मेरे निकटसे दूर रहो। मैं वैद्य, वृद्ध और तपस्वियोंकी अवज्ञा नहीं करता और समस्त जनपद वासियोंके सोनेपर मैं जागता रहता हूं, मेरा पुरोहित आत्मज्ञान और विज्ञानसे युक्त, तपस्वी सब धर्म्म जाननेवाला बुद्धिमान और सब राज्यका स्वामी है। मैं दानसे विद्या ब्राह्मणोंकी रक्षा और सत्यसे स्वर्गादि लोक प्राप्तिकी इच्छा किया करता हूं और शुश्रूषासे गुरुजनोंके अनुकूल हूं; इससे राक्षससे मुझे भय नहीं है। मेरे राज्यमें विधवा, ब्रह्मबन्धु, अब्राह्मण, शठ, चोर, मांगनेके अयोग्य वस्तुओंके मांगनेवाले, और पाप कर्म्म करनेवाले कोई भी नहीं है, इससे राक्षससे मैं नहीं डरता। मैं धर्म्मार्थ ही युद्ध किया करता हूं, इससे मेरा शरीर दो अंगुल मात्र भी शस्त्रसे विद्ध नहीं होता ; और मेरे राज्यमें सब प्रजा गऊ, ब्राह्मणकी रक्षा तथा यज्ञके वास्ते मेरी मङ्गल कामना किया करती है, इससे तुम मुझे स्पर्श मत करो, मेरे निकटसे दूर हो जाओ।

राक्षस बोला, हे केकयराज आप सब समय धर्म्मकी पर्य्यालोचना करते हैं, इससे मैंने आपको परित्याग किया ; अब आपका मङ्गल होवे, आप अपने घर जाइये ; मैं अपने स्थानपर जाता हूं। हे केकय ! जो गऊ, ब्राह्मण और प्रजाको आपदसे बचाते हैं, उन्हें राक्षस वा पातकसे भय नहीं होता ; और ब्राह्मण लोग उसके अग्रगामी हैं, जिसका बल ब्रह्मपर और जो अतिथि प्रिय हैं, वे राजा समस्त स्वर्ग लोककी जय किया करते हैं।

भीष्म बोले, हे राजन्! इस ही कारण ब्राह्मणोंका पालन करना राजाको अवश्य उचित है। क्योंकि वे लोग राजासे रक्षित होकर उसे ऐसी आपदसे बचाते हैं और राज्यादिके निमित्त सब भांतिसे वृद्धिसूचक आशीर्व्वाद दिया करते हैं। इस ही वास्ते दूसरे कर्म्ममें रत ब्राह्मणोंको राजा कृपापूर्व्वक नियमित और यथारीतिसे विभक्त कर रक्खे। जो राजा पुरवासी प्रजासमूहके साथ इसी भांति आचरण करता है, वह इस लोकमें सब सुख भोगके परलोकमें इन्द्रके समान स्थान प्राप्त करता है।

७७ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे भारत! आपने कहा है, आपदकालमें ब्राह्मण लोग राजधर्म्म अर्थात् शस्त्रधारण आदि कार्य्योंसे जीविका निर्व्वाह कर सकते हैं; परन्तु वे लोग वैश्यधर्म्म अर्थात् व्यवसायसे जीविकाका उपाय कर सकते हैं वा नहीं?

भीष्म बोले, क्षत्रधर्म्ममें असमर्थ ब्राह्मण लोग वृत्तिक्षय रूपी व्यसन उपस्थित होनेपर कृषि और गोरक्षा व्यवसाय अवलम्बन करके जीविका निर्व्वाह करें।

युधिष्ठिर बोले, हे भरतर्षभ! वैश्य धर्म्म अवलम्बन करनेवाले ब्राह्मण लोग किन वस्तुओंके बेचनेसे स्वर्गच्युत नहीं होते।

भीष्म बोले, हे तात युधिष्ठिर! ब्राह्मण लोग सब समयमें ही सुरा, लवण, तिल, घोड़े गऊ, भैंस आदि पशु, ऋषभ, मधु और पक्वान्न आदि सब वस्तु न बेचें; क्यों कि इन वस्तुओंके बेचनेसे ब्राह्मण नरकगामी होंगे। अज, अग्नि, वरुण, बादल, सूर्य्य, घोड़े, पृथ्वी, अन्न, गऊ यज्ञ और सोम ये सब वस्तु कदापि ब्राह्मणोंको बेचने योग्य नहीं हैं। हे भारत! साधुपुरुष पक्वान्नके सङ्ग आमान्नके बदलनेकी निन्दा किया करते हैं; परन्तु भोजनके वास्ते आमान्नके साथ पक्वान्नको बदलनेसे उसकी निन्दा नहीं करते, यदि कोई किसीको "मैं सिद्धान्न भोजन करूंगा आप आमान्न ग्रहण कीजिये," ऐसा कहके आमान्नके साथ सिद्धान्नको बदल करे, तो इस प्रकारके अदलबदलमें किसी भांति भी अधर्म्म नहीं हो सकता। हे युधिष्ठिर! इस विषयमें व्यवहारमें प्रवृत्त पुरुषोंका जो सनातन धर्म्म है वह तुमसे कहता हूं सुनो। यदि कोई किसी पुरुषको "मैं तुम्हें यह वस्तु देता हूं, तुम मुझे अमुक वस्तु प्रदान करो," ऐसा कहके इच्छानुसार बदल करें, ऐसा होनेसे उसमें धर्म्म होता है, परन्तु बलपूर्व्वक बदलनेसे उसमें धर्म्म नहीं हो सकता। ऋषि और इतर लोगोंका इसी भांति प्राचीन व्यवहार प्रचलित हुआ करता है यही उत्तम है, इसमें कुछ सन्देह नहीं।

युधिष्ठिर बोले, हे तात! जब वैश्य, शूद्र और अन्तज आदि प्रजासमूह निजधर्म्म परित्याग करके शस्त्र ग्रहण करेंगे; उस समय क्षत्रिय बल क्षीण होगा। हे नरनाथ! उस समय बलहीन राजा किस प्रकार लोकयात्रा और सब लोगोंका परम आश्रय होगा? मुझे यह सन्देह हो रहा है, आप इस विषयको मुझसे विस्तारपूर्व्वक कहिये।

भीष्म बोले, ब्राह्मण आदि सब वर्ण दान, तपस्या यज्ञ, अहिंसा और इन्द्रियदमनसे अपने अपने कुशलकी अभिलाष करते हैं, परन्तु उन लोगोंके बीच जो ब्राह्मण वेद-बलशाली हैं, वे लोग सब भांतिसे बढ़के इन्द्रके बल बढ़ानेवाले देवतोंकी भांति राजाका बल बढ़ाते हैं। और पण्डित लोग ऐसे कहा करते हैं, कि ब्राह्मण ही बलहीन राजाके परम आश्रय हैं; इससे बुद्धिमान राजा ब्रह्मबल अवलम्बन करके ही समुत्थित होते हैं। परन्तु जयशील राजा जब राज्यके बीच सबके क्षेमका अनुसन्धान करेंगे, तब सब वर्ण किस प्रकार निज निज

धर्मसे भ्रष्ट होंगे। हे युधिष्ठिर ! जब डाकू लोग प्रजासमूहकी मर्य्यादा और जाति नाश करनेमें प्रवृत्त होंगे, उस समय सब वर्णोंको शस्त्र ग्रहण करनेसे दोष युक्त नहीं होंगे !

युधिष्ठिर बोले, पितामह ! यदि क्षत्रिय ब्राह्मणोंके विषयमें दोषदर्शी होकर विरुद्ध आचरण करे, तो वह ब्राह्मण कौन धर्म्म अवलम्बन करेगा ? और उसका आश्रय तथा परित्राण करनेवाला कौन होगा ?

भीष्म बोले, उस समय ब्राह्मण तपस्या, ब्रह्मचर्य्य, शस्त्रबल, शठता वा सरलता आदि जिस उपायसे होसके, वही क्षत्रियको शासित करे। विशेष करके ब्राह्मणसे क्षत्रिय उत्पन्न हुए हैं, इससे यद्यपि क्षत्रिय ब्राह्मणोंके सङ्ग विरुद्धाचरण करनेमें प्रवृत्त हो, तो ब्राह्मण ही उसके नियन्ता होंगे। जलसे अग्नि, ब्राह्मणसे क्षत्रिय और पत्थरसे लोहा उत्पन्न हुआ है; इससे उनका सर्व्वत्रगामी तेज निज निज योनिमें शान्त हुआ करता है। जब लोहा पत्थरको भेदता, अग्नि जलको मंथती और क्षत्रिय ब्राह्मणोंसे द्वेष करते हैं, तब वह लोह, अग्नि और क्षत्रिय स्वयं नष्ट होजाते हैं। हे युधिष्ठिर ! इससे क्षत्रियोंका अत्यन्त अजेय तेज ब्राह्मणोंके समीप शान्त हुआ करता है। ब्रह्मबल कोमल तथा क्षत्रियबल निर्ब्बल और सब वर्ण ब्राह्मणोंके विरुद्ध होनेपर जो लोग ब्राह्मणधर्म्म और आत्मरक्षाके वास्ते उस समय जीवनकी आशा त्यागके शस्त्र ग्रहणकर युद्ध करनेके वास्ते उद्यत होते हैं, वे मनस्वी मननशील मनुष्य ही पुण्य-स्थान प्राप्त करते हैं; क्यों कि ब्राह्मणोंके वास्ते सबको ही शस्त्र ग्रहण करनेकी विधि है। हे युधिष्ठिर ! ऐसा हो क्यों; यज्ञ, वेदाध्ययन, तपस्या, अनशन और अग्नि प्रवेशकारी पुरुषोंसे ब्राह्मणहितैषी पुरुष उत्तम गति प्राप्त करते हैं। इसी भांति ब्राह्मणके वास्ते क्षत्रिय वैश्य और शूद्र इन तीनों वर्णोंके वास्ते शस्त्र ग्रहण करनेसे ये दूषित नहीं होते, और सब लोग ऐसा समझते हैं, कि उनके वास्ते आत्मत्यागी होनेपर उससे बढ़के कोई भी धर्म्मश्रेष्ठ नहीं होसकता। मनुने कहा है कि जो लोग साधारणकी रक्षाके वास्ते युद्धरूपी आगमें निज शरीरको आहुति देते और ब्राह्मणद्वेषी लोगोंको दमन करते हैं, उन्हें नमस्कार है, क्यों कि वे लोग देसे कार्य्योंसे निज मङ्गल और उत्तम लोगोंको सलोकता प्राप्त तथा ब्रह्मलोक और स्वर्गलोकको जय करनेमें समर्थ होते हैं। और भी जैसे मनुष्य लोग अश्वमेध यज्ञके अवभृत स्नानसे पवित्र होते हैं और उनके सब पाप दूर होते हैं। वैसेही युद्धमें मरा हुआ पुरुष भी पवित्र होता और उसका पाप दूर होता है। हे राजन् ! देशकालके व्यतिक्रम होनेसे उस देशकालके अनुसार ही धर्म्माधर्म्मका भी व्यतिक्रम अर्थात् धर्म्म अधर्म्म और अधर्म्म धर्म्म हुआ करता है। देखिये, उतङ्क और पराशर आदि महर्षि लोगोंने क्रूर कर्म्म करके भी उत्तम स्वर्गलोक जयकिया है और धर्म्मात्मा क्षत्रिय लोग भी पाप कर्म्म करके परम-गतिको प्राप्त हुए हैं। ब्राह्मण लोग आत्मरक्षा वर्णदोष और दुष्ट डाकुओंको नाश करनेके वास्ते सब समयमें ही शस्त्र ग्रहण करसकते हैं; उसमें उन्हें दोष नहीं होता।

युधिष्ठिर बोले, हे राजसत्तम ! डाकुओंका दल प्रजा पालनके निमित्त तैय्यार होके, वर्णसङ्कर अर्थात् परस्पर स्त्रीहरण आदि कार्य्योंमें प्रवृत्त होने और सब लोगोंके सब भांतिसे मूढ़ होनेपर यदि दूसरा कोई बलवान क्षत्रिय डाकुओंके दलको नष्ट करे; तथा ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य और शूद्रोंके बीच राजधर्म्मके अनुसार दण्ड धारण करके प्रजा समूहकी रक्षा करे, तो वह पुरुष राजकार्य्य करनेके कारण सबका स्वामी हो सकता है, वा नहीं ? और उस सम्बन्धमें क्षत्र-बन्धुके अतिरिक्त दूसरे शस्त्र ग्रहण कर सकेंगे, वा नहीं।

भीष्म बोले, जो अपार पारावारके पार अर्थात् तीर स्वरूप और नौकाहीन समुद्रमें नौका स्वरूप होते हैं, वे शूद्र अथवा चाहे कोई वर्ण क्यों न होवें, वे समाजके बीच सब भांतिसे सम्मानके पात्र हुआ करते हैं। हे राजन् ! अनाथ-मनुष्य डाकुओंसे पराजित अथवा पीड़ित होकर जिसका आसरा ग्रहण करके सुख पूर्व्वक निवास करते हैं, वे सब कोई निज बान्धवोंकी भांति उस रक्षा करनेवालेकी प्रीतिके सहित पूजा किया करते हैं ; क्यों कि अभयदाता अनाथ मनुष्योंमें सदा सम्माननीय हुआ करता है। हे कौरव ! जो बैल बोझा ढोनेमें असमर्थ और जो गऊ दूधदानसे रहित, जो स्त्री पुत्र प्रसव करनेमें अशक्य, और जो राजा प्रजापालन करनेमें असमर्थ होता है, उससे कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं हो सकता। हे पार्थ ! जैसे काठके हाथी, चमड़ेके मृग, कायर पुरुष और ऊषर-क्षेत्र निष्फल हैं ; वैसे ही जो ब्राह्मण वेद नहीं पढ़ते, जो राजा प्रजा-पालन नहीं करता और जो बादल जलकी वर्षा नहीं करते उन सबको भी उसी भांति निष्फल समझना चाहिये । जो सदा साधुओंकी रक्षा करते और दुष्टोंका दमन करते हैं, उन्हें ही राजा बनाना उचित है ; क्यों कि वैसे पुरुष ही इस सम्पूर्ण पृथ्वीको धारण करनेमें समर्थ होते हैं ।

७८ अध्याय समाप्त ।

युधिष्ठिर बोले, हे बोलनेवालोंमें श्रेष्ठ पितामह ! ऋषियोंके कर्त्तव्य कर्म्म क्या हैं और उन लोगोंके स्वभाव तथा गुण कैसे होने उचित हैं ? वह विस्तारके सहित कहिये ।

भीष्म बोले, छन्द, ऋक्, यजु, साम और श्रुत अर्थात् मीमांसा शास्त्र जाननेवाले ब्राह्मण लोग राजाओंके प्रति-कर्म्म अर्थात् शान्तिक पौष्टिक आदि कर्म्म करें ; यही उन लोगोंके कर्त्तव्य कर्म्म हैं। और उन लोगोंका ऐसा स्वभाव होवे, कि वे लोग वीर पुरुषोंके ऊपर सदा अनुरागी होके प्रिय वचन कहें ; आपसमें सुहृद-आचरण और सबको समभावसे देखें । इसके अतिरिक्त ऋत्विक लोग अनृशंस, सत्य-वादी, अर्थ-प्रयोगसे हीन-सरल, परापकार रहित, अभिमानहीन, लज्जा, तितिक्षा दम और शम गुणोंसे युक्त, बुद्धिमान, सत्यव्रतमें निष्ठावान, धर्म्मात्मा, जीव हिंसासे रहित, काम-क्रोधहीन, निर्दोष, श्रुत, वृत्त और शमसे युक्त, अहिंसक तथा ज्ञानसे तृप्त,—ऐसे गुणोंसे युक्त होनेपर वे लोग ब्राह्मासन प्राप्त करनेमें समर्थ होंगे और यथा योग्य माननीय तथा धन आदि-कोंसे पूजनीय होंगे ।

युधिष्ठिर बोले, यज्ञमें दक्षिणा देनेके वास्ते वेदमें जो वचन कहे गये हैं, उसमें "इस परिमाणसे देना होगा," ऐसा कोई नियम नहीं निश्चित हुआ है। उसके वास्ते वारह सौ दक्षिणा विधान करनेवाला यह शास्त्र, धन-विभागके अभिप्रायसे नहीं कहा गया है, परन्तु आप-धर्म्मके अनुसार सर्व्वस्व दक्षिणाकी विधि वर्णित हुई है। ऐसा होनेसे शास्त्रका यह शासन अत्यन्त भयङ्कर है, उसमें समर्थ और असमर्थ बाधकी सम्भावना नहीं है, इससे ऐसा होनेसे दरिद्रोंको भी यज्ञादि न हो सकते। श्रद्धावान पुरुष यज्ञ करे, ऐसी ही वैदिक श्रुति है ; परन्तु, प्रकृत-दक्षिणा गत, उसमें अनुकल्प चरु दान करनेसे वह मिथ्या होता है, वैसे मिथ्या-दक्षिणा युक्त यज्ञमें श्रद्धा क्यों करेंगे ?

भीष्म बोले, वेद वाक्यमें अवज्ञा, शठता और मायासे कोई कभी परम पद नहीं प्राप्त कर सकता, इससे तुम्हारा जिसमें ऐसी बुद्धि न हो । हे तात ! दक्षिणा यज्ञका अङ्ग और वेदोंकी पुष्टि करनेवाली है ; इससे दक्षिणा हीन यज्ञ कदापि उद्धार करनेमें समर्थ नहीं होते। हे

तात! दरिद्रके पूर्ण पात्र भरके जो दक्षिणा होनेपर भी अधिक फलदायक है; इससे ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य इन तीनों वर्णोंको यथा रीतिसे यज्ञ करना अवश्य उचित है। वेदमें ऐसी धारणा है, कि सोम ब्राह्मणोंके निमित्त अत्यन्त श्रेष्ठ वस्तु है; परन्तु वे लोग यज्ञादिकोंके निमित्त उसे भी बेचने की इच्छा करते हैं, बिना कारणके ही बेचनेमें उन लोगोंकी प्रवित्ति नहीं होती। धर्म्मात्मा ऋषि लोग धर्म्मपूर्व्वक ऐसा ही ध्यान किया करते हैं, कि सोमरस बचके प्राप्त हुए धनसे जो सोम-यज्ञ क्रय की जाती हैं; वह क्रमसे विस्तृत हुआ करती है। पुरुषके न्याययुक्त और शठता हीन होनेपर उसका ही सोम और यज्ञ पूर्ण होता है; परन्तु अन्याययुक्त होनेसे उसके ऐहिक और पारलौकिक कोई कार्य्य सिद्ध नहीं होते। मैंने ऐसी जनश्रुति सुनी है, कि महात्मा ब्राह्मण लोग केवल शरीर-वृत्त अवलम्बन करके जो प्रणीताग्निमें यज्ञ आदि कर्म्म करते हैं, वह सब शुभ होता है। हे विद्वन्! इस प्रकार श्रेष्ठ श्रुति है, कि तपस्या यज्ञसे भी श्रेष्ठ है; इससे उस तपस्याका वृत्तान्त मैं तुमसे कहता हूं, उसे मेरे समीप सुनो। पण्डित लोग अहिंसा, सत्य वचन अनृशंसता, दम और घृणा इन सबको ही तपस्या सम्मत है; परन्तु उपवास आदिसे शरीर सुखानेको वे लोग तपस्या रूपसे नहीं गिनते। वेदवाक्यको अप्रमाण शास्त्रोंका वचन उल्लङ्घन और सर्व्वत्र अव्यवस्था करनेसे उससे आत्माका नाश होता है। हे पार्थ! यज्ञमें जैसे स्रुक् और घृत आदि सब वस्तु वर्णित हैं; अन्तरमें भी वैसे ही चित्ति अर्थात् जीव ब्रह्मकी एकता रूपी साधन योगको स्रुक और चित्तको घृत रूपसे समझना होता है, इस ज्ञानको ही अत्यन्त पवित्र करके जानो। सब भांति की शठता ही मृत्यु की मूल अर्थात् अनित्य और सरलता ही ब्रह्मपद अर्थात् नित्य है; यही ज्ञानका विषय है, प्रलाप इसमें कुछ भी नहीं कर सकता।

७९ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! जबकि थोड़ा कार्य्य भी अकेले सहाय रहित पुरुषसे सिद्ध होना कठिन है, तब अकेले राजासे सब कार्य्य किसी प्रकार भी सिद्ध नहीं हो सकते; इससे राजा कैसे आचार और किस प्रकार स्वभाव युक्त पुरुषको मन्त्रीपद पर नियुक्त करे और कैसे लोगोंके ऊपर विश्वास तथा कैसे मनुष्योंका अविश्वास करे।

भीष्म बोले, हे राजन्! राजाओंके सहार्थ, भजमान, सहज और कृत्रिम ये चार भांतिके मन्त्री हुआ करते हैं; उनमेंसे जो राजाके समीप ऐसा स्वीकार करते हैं, कि इस शत्रुको हम दोनों ही मिलके नष्ट करेंगे और इस शत्रुराज्यको हम दोनों आपसमें विभाग करके ग्रहण करेंगे; वह सहार्थ है। जो पिता पितामहके क्रमसे विद्यमान रहते हैं, वह भजमान हैं। मातृ-स्वस्रीय आदि सहज; जो धर्म्मात्मा, पक्षपात रहित, दोनोंके निकट वेतन लेने की इच्छासे कपटता नहीं करते और धर्म्मके पक्षपाती होकर धर्म्ममार्गमें ही विद्यमान रहते हैं, वे राजाओंके कृत्रिम मित्र होते हैं। जो विषय राजाको अभिलषित नहीं है, उसे मित्र लोग उसके समीप कदापि प्रकाशित न करें; क्योंकि विजयी राजा लोग धर्म्म और अधर्म्मके सहित भ्रमण किया करते हैं। पहिले कहे हुए मित्रोंके बीच भजमान और सहज मित्र ही श्रेष्ठ हैं; ये लोग कार्य्य विशेषमें शङ्कायुक्त होते हैं; परन्तु सहार्थ और कृत्रिम मित्रको सदा शङ्कित रखना होगा और सबको ही सदा रक्षा करनी उचित है; विशेष करके दुष्ट सेवकोंके निग्रह आदि निज कार्य्योंको इनके

सम्मुख न करके स्वयं सिद्ध करना होगा। राजा मित्रोंकी रक्षा करनेमें कभी असावधानी न करे; क्यों कि सब लोग असावधान राजाका ही पराभव किया करते हैं। और राजाके असावधान चित्त होनेसे साधु पुरुष दुष्ट, दुष्ट-लोग साधु; शत्रु लोग मित्र और मित्र शत्रु हुआ करते हैं। अस्थिर चित्तवाले पुरुषका कोई विश्वास नहीं करता; इससे जो कार्य्य मुख्य है, उसे प्रत्यक्ष ही सिद्ध करे। सबके ऊपर इकबारगी विश्वास करनेसे धर्म्म और अर्थका नाश होता है; और सर्व्वत्र अविश्वासकी अपेक्षा मृत्यु ही हितकारी है। अत्यन्त विश्वास ही अकाल मृत्युका कारण है। अत्यन्त विश्वास करनेसे ही विपद्ग्रस्त होना पड़ता है, क्योंकि जिसका अत्यन्त विश्वास किया जायगा, उसकी इच्छा रहनेसे ही जीवन रह सकता है; नहीं तो जीते रहनेकी आशा नहीं रहती। हे तात! इससे पुरुष विशेषका विश्वास और व्यक्ति विशेषका अविश्वास करना उचित है, यही नीतिकी गति है और इसे ही सदा लक्ष्य करना उचित है। जिसे समझे कि मेरे न रहनेपर यही राजा होगा, उससे सदा शङ्का करनी उचित है क्यों कि पण्डित लोग वैसे पुरुषको ही शत्रु समझते हैं। जो पुरुष अपने क्षेत्रका जल दूसरेके क्षेत्रमें गमन करेगा, ऐसा जानके इच्छानुसार बांधको दृढ़ताके सहित बांधता है और जलके अभावमें दूसरेको क्षति होनेपर भी किसी प्रकार जलबाहर नहीं होने देता; और क्रमसे जल बढ़नेपर अत्यन्त जलसे अपनी क्षतिकी शङ्का करके बांध तोड़नेकी इच्छा करे उसे ही आतमित्र समझना चाहिये। जो पुरुष राजाके अर्थ-वृद्धिसे तृप्त नहीं होता और धन-क्षय होनेसे अत्यन्त दुःखित होता है; पण्डित लोग उसे ही उत्तम मित्र कहा करते हैं। जिसे जाने कि, मेरे न रहनेपर यह पुरुष नहीं रहेगा, उसका पिताकी भांति विश्वास करे और स्वयं वृद्धि-युक्त होकर उसकी भी सब भांतिसे वृद्धि करे। जो पुरुष धर्म्मकर्म्मको क्षय होते देखके नित्य निवारण करता है, उस धर्म्मक्षयसे डरे हुए मनुष्यको उत्तम मित्र समझना चाहिये और जो उसके नाशकी इच्छा करे, वह उसका शत्रु गिना जाता है। जो मनुष्य व्यसनसे सदा डरता है और धनसे किसीका अनिष्ट नहीं करता; वैसे पुरुषके मित्र होनेपर उसे आत्म-सदृश समझे। जो पुरुष उत्तम रूप वर्ण और स्वरसे युक्त, तितिक्षा, असूयारहित; उत्तम कुलमें उत्पन्न हुआ और कुलसे युक्त होवे, उसे पहिले कहे हुए मित्रोंसे मुख्य जानना चाहिये जो मेधावी, स्मृतिमान, दक्ष, स्वाभाविक अनृशंसता और सम्मानित वा अपमानित होनेपर भी कभी किसीकी बुराई नहीं करते, वे ऋत्विक, आचार्य्य वा अत्यन्त प्रिय मित्र होनेपर भी यदि सेवक होकर तुम्हारे गृहमें निवास करें, तो उनका अधिक सम्मान करना होगा। वे तुम्हें परम मित्र और धर्म्मका स्वरूप जानेंगे और तुम भी उनका पिताकी भांति विश्वास करना। एक कार्य्यके दो वा तीन अधिकारी होनेपर वे लोग आपसमें एक दूसरेके दोषोंको क्षमा नहीं करते; इससे एक कार्य्यमें एकसे अधिक अध्यक्ष नियत करना उचित नहीं है; क्यों कि प्राणियोंमें सदा परस्पर मतभेद हुआ करता है। जो पुरुष सत्कीर्त्तियोंके अग्रगण्य हुए हैं, जो नीतिके बाहर नहीं होते, जो समर्थ मनुष्योंके साथ द्वेष और अनर्थ आचरण नहीं करते, जो काम-क्रोध, भय और लोभके वशमें होकर निज धर्म्म परित्याग नहीं करते और जो सब कार्य्योंमें दक्ष तथा पर्य्याप्तवादी हैं, वेही तुम्हारे मुख्य मित्र होवें। और भी जो लोग कुलीन उत्तम स्वभावसे युक्त, क्षमावान, अपनी बड़ाईसे रहित, शूर, आर्य्य, विद्वान, कार्य्याकार्य्य-विवेकमें निपुण, सब कर्म्मोंमें अवस्थित, सम्माननीय, संविभक्त, उत्तम-सहाय युक्त,

और सत्कर्म करनेवाले हैं, उन्हें सेवक पदवी पर नियुक्त करना उचित है। हे राजन्! ऐसे लोग सब प्रतिरूप अर्थात् आय-व्ययके हिसाब आदि कार्य्यों तथा सब मुख्य राज कार्य्योंके अधिकारी होनेसे कल्याणको वृद्धि किया करते हैं। ये लोग सदा स्पर्द्धावान होकर निर्जनमें ही सब कार्य्योंको सिद्ध करते हैं तथा आपसमें वार्त्तालाप करके सब प्रयोजन सिद्ध किया करते हैं। हे महाबाहो! मृत्युकी भांति जातिके लोगोंका सदा भय करना, क्योंकि जातिके लोग समीपमें पहुंची हुई मृत्युकी भांति सदा राजऋद्धिको नहीं सह सकते। परन्तु जाति सरल, मृदु वदान्य, लज्जाशील और सत्यवादी होनेपर कोई उसके नाशकी अभिलाष नहीं करते। जातिहीन मनुष्यको सुख नहीं होता, जातिसे रहित मनुष्य सबके ही अवज्ञाभाजन होते हैं और जाति हीन पुरुष ही शत्रुओंसे पराजित हुआ करते हैं। कोई दूसरेसे अवमानित होनेपर जाति ही उसके वास्ते आश्रय हुआ करती है और जाति ही जातिको दूसरेसे पराभव देखके कभी नहीं सह सकती। कोई पुरुष बन्धु-बान्धवोंसे अपमानित होवे तो जातिके पुरुष अपनेको ही अवमानित समझते हैं; और बन्धु यदि सौ गुणोंसे बढ़ा होवे, तौभी उसे अल्प गुणवाला समझके अपनेको उससे अनेक गुणोंसे बढ़ा हुआ बोध करते हैं। जातिहीन मनुष्य किसीके ऊपर कृपा नहीं करते, जातिहीन मनुष्य किसीके समीप नत नहीं होते; जातिके बीच साधु और दुष्ट दोनों ही दीख पड़ते हैं। इससे वचन और कर्मसे सदा जातिके पुरुषोंका सम्मान, पूजा तथा प्रियकार्य्य करे; तनिक भी उनके साथ अनिष्ट आचरण न करे। उनके समीप सदा विश्वासीकी भांति अविश्वास भावसे वास करे और उनके सामान्य गुण दोषको निरूपण करके न देखे। हे राजन्! जो पुरुष प्रमाद हीन होकर इसी भांति निवास करते हैं; उनके सब शत्रु प्रसन्न होकर मित्रकी भांति व्यवहार करते हैं। जो पुरुष जाति और सम्बन्धीसमूहमें इसी प्रकार सदा स्थित रहते हैं, वे मित्र, शत्रु और म[illegible]ष्योंके निकट यशस्वी होकर बहुत समयतक निवास करनेमें समर्थ होते हैं।

८० अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, पहिले कहे हुए स्वजनों और सम्बन्धियोंको इस प्रकार वशमें न कर सके तो मित्र भी शत्रु होजावें, इससे सबका चित्त किस प्रकार वशीभूत होगा?

भीष्म बोले, इस विषयमें पण्डित लोग श्रीकृष्ण और देवऋषि नारदके सम्वाद युक्त जिस प्राचीन इतिहासका प्रमाण दिया करते हैं, उसे कहता हूं सुनो। एक बार श्रीकृष्ण देवर्षि नारदसे बोले, हे नारद! अमित्र और मूर्ख मित्र, तथा चटु प्रकृतिवाले पण्डित सुहृदके निकट परम मन्त्र प्रकाशित करना उचित नहीं है। हे त्रिदिवङ्गम! इससे मैं तुम्हारे सब बल, बुद्धिको देखके तुम्हें ही उत्तम मित्र समझके कोई विषय कहता हूं और प्रश्न करता हूं। हे देवर्षि ऐश्वर्य्यवादके कारण जिसमें जातिके लोगोंको उपार्जित वस्तुओंमेंसे आधा हिस्सा देना होगा और उन लोगोंके दुर्व्वचनोंको सहना पड़ेगा; इस प्रकार जातिकी सेवाका मैं कभी नहीं करता; तौभी जैसे पुरुष अग्निकी इच्छासे अरणी काठ मथते हैं; वैसे ही उन लोगोंके कहे हुए कठोर वचनसे मेरा हृदय सदा मथा हुआ करता है। सङ्कर्षण बलसे, गद सुकुमारता और प्रद्युम्न रूपसे मतवाले हुए हैं; इससे मैं आहुक और अक्रूरकी शान्तवनासे असहाय हुआ हूं। दूसरे जो सब महाभाग, बलवान उत्साहयुक्त, सदा उन्नतिशाली पुरुष अन्धक और वृष्णिकुलमें विद्यमान हैं, वे लोग

ऐसा समझते हैं, कि हम लोग जिस ओर होंगे वही पक्ष बलसे युक्त और हम लोग जिसके विरुद्ध होंगे, वही पक्ष निर्बल होगा। आहुक और अक्रूर दोनोंने मुझे निवारण किया है; इससे मैं एक पक्षको नहीं स्वीकार कर सकता हूं। इसके अतिरिक्त आहुक और अक्रूर दोनों ही पराक्रमी तथा कठिन कर्म्म करनेवाले हैं, इससे वे लोग जिस ओर रहेंगे, उसकी अपेक्षा दुःखदायक कुछ भी नहीं है, और जिसकी ओर न रहेंगे, उसे भी उससे अधिक दुःखका विषय कुछ भी नहीं हो सकता। हे महाबुद्धिमान! कितव अर्थात् जुवाड़ी पुरुषकी माताकी भांति मैं एककी जय और दूसरोंके पराजयकी इच्छा करता हूं। हे नारद! मैं दोनों ओरसे सदा इसी प्रकार क्लेश पाता हूं; इससे इस विषयमें मेरा और ज्ञातिके लोगोंका जिसमें कल्याण हो; वह तुम्हें कहना उचित है।

नारद मुनि बोले, हे वृष्णिवंशमें उत्पन्न हुए कृष्ण! आपदा बाह्य और अभ्यन्तर रूपसे दो प्रकारकी हैं, वह स्वभाव तथा दूसरे कारणोंसे उत्पन्न हुआ करती हैं। अर्थ, काम और विभत्स वचन-निबन्धनसे अक्रूर, और आजप्रभव सङ्कर्षण आदि सब लोग अक्रूरके अनुगत हुए हैं, इसहीसे यह अभ्यन्तर आपदा तुम्हें दुःखदायक हुई है; और तुमने निज ऐश्वर्य्य आहुकको दे रखा है, इसीसे ज्ञातिके बीच कोलाहल मचा है; वान्त अन्नकी भांति उसे भी तुम फिर नहीं ग्रहण कर सकते हो; इससे निज कर्म्मके दोषसे ही ऐसी आपद उत्पन्न हुई है। विशेष करके जाति भेदके भयसे अब तुम बभ्रु और उग्रसेनके राज्यको किसी प्रकार भी ग्रहण नहीं कर सकते हो। यद्यपि तुम यत्नपूर्व्वक अनेक कठिन कार्य्योंको करके उसे साधन करो तो ऐसा होनेसे फिर महाक्षय व्यय और विनाश उपस्थित होगा। इससे तितिक्षा, ऋजुता, और मृदुतासे दोष दूर करके तथा यथायोग्य पूजा आदिसे प्रीति गुणके सहारे अनायास ही मृदु मर्म्मच्छेद शस्त्रसे सबकी जिह्वाका उद्धार करो।

श्रीकृष्ण बोले, हे मुनिवर! तितिक्षा आदि ऐसे दोषोंको दूर कर और यथा उचित पूजासे प्रीति गुण सिद्ध करके जिस भांति ज्ञातिके पुरुषोंकी जिह्वा उद्धार करनी होती है। वह मृदु अनायास शस्त्र क्या है?

नारद मुनि बोले, सामर्थके अनुसार सदा अन्नदान, तितिक्षा, सरलता, कोमलता और यथा योग्य दूसरेकी पूजा इन सबको ही अनायास शस्त्र जानना चाहिये। तुम मीठे वचनसे लघु, और कटुवादी ज्ञातिके पुरुषोंके कुटिल अभिप्राय कुवाक्य और दुष्ट सङ्कल्पोंको नष्ट करो। और महापुरुषके अतिरिक्त कोई असहायवान तथा असावधान पुरुष उद्योगी होकर बड़े भारको उठानेमें समर्थ नहीं होता। इससे तुम निज वक्षस्थल पर उस भारको ग्रहण करो। देखो, समतल स्थानमें सब अनगन ही गुरुभार उठा सकते हैं; परन्तु कठिन स्थानमें भलीभांति दृढ़ अङ्गसे युक्त अनड्वान्के अतिरिक्त सब ही कठिनतासे उठाने योग्य भारको नहीं ढो सकते। हे कृष्ण! तुम सबके मुखिया हो, ज्ञाति भेद होनेसे सबका ही नाश होगा; इससे ये ज्ञातिके लोग तुम्हारा आसरा करके जिससे नाश दशाको न प्राप्त हों, वही उपाय करो। बुद्धि, शान्ति, इन्द्रियनिग्रह और धन त्यागके अतिरिक्त बुद्धिमान पुरुषमें कोई गुण नहीं रहते। हे कृष्ण! इससे जिसमें धन, यश, आयु और सदा स्वपक्षकी बढ़ती हो तथा ज्ञातिके पुरुषोंका नाश न होवे, वही करो। हे प्रभु! आयति, तत्काल यात्रा और यान विधिमें षाड्गुण्य-विधानके कारण तुमसे कुछ भी नहीं छिपे हैं, हे महाबाहो माधव! यादव, कुकुर, भोज, अन्धक वृष्णि और दूसरे लोकपाल तथा ऋषि लोग तुममें अनुरक्त होकर तुम्हारे ही वृद्धिकी अभिलाषा करते हैं। तुम सब प्राणि-

योंके गुरु हो; तुम्हीं प्राणियोंके भूत भविष्य सब विषयोंको जानते हो; तुम यदुकुलमें श्रेष्ठ हो; इससे यदुवंशी लोग तुम्हें प्राप्त करके ही सुख भोग कर रहे हैं।

८१ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, हे भारत! मैंने जो कुछ कहा, वह राजाओंकी प्रथम वृत्ति है, इसके अनन्तर दूसरी वृत्ति कहता हूं सुनो। हे भरतकुल अवतंस! कोई मनुष्य धन उपार्जन क्यों न करे; राजा उसे सदा सर्व्वदा रक्षा करे। हे युधिष्ठिर! सेवकोंके राजभण्डार हरने और नष्ट करने पर जो कोई मनुष्य वह वृत्तान्त राजासे कहे, राजा निर्ज्जन स्थानमें उसका वह वचन सुने और सेवकोंसे रक्षित स्थानमें उसका वह वचन सुने और सेवकोंसे उसकी रक्षा करे; क्योंकि धन हरनेवाले सेवक लोग सबका ही नाश किया करते हैं। हे नरनाथ! कालक-वृक्षीय मुनिने कौशल्यसे जो वृत्तान्त कहा था, पण्डित लोग इस स्थलमें भी उस प्राचीन इतिहासको वर्णन किया करते हैं। मैंने ऐसा सुना है, कि कालक-वृक्षीय मुनिने कौशलाधिपतिके सेवकोंके दोष देखनेके निमित्त बारबार प्रवर्त्तित करनेकी अभिलाषासे पिञ्जरेके भीतर एक कौवा बन्द करके क्षेमदर्शी कौशलाधिपतिके सम्पूर्ण राज्यमें घूमते हुए राजाके समीप आके बोले,—मेरा कौवा सब विद्या पढ़ा है, इससे यह भूत, वर्त्तमान और भविष्यत आदि सब कहा करता है। उन्होंने ऐसा ही कहते हुए अनेक पुरुषोंके सङ्ग राज्यमें भ्रमण करके राज कार्य्यमें नियुक्त सेवकोंका स्वामि-द्रव्य हरण रूपी पाप देखा। अनन्तर उन्होंने उस राज्यके समस्त व्यवसाय और राज कार्य्यमें नियुक्त सब सेवकोंको स्वामि द्रव्य हरनेवाला जानके मैंने सब जान लिया है, ऐसा ही कहते कहते राजासे भेंट करनेके वास्ते कौवा लेकर राजाके समीप आगमन किया। मुनिने क्षेमदर्शी कौशल्यके निकट आके उनके सम्मुख कौवाके वचनके अनुसार अलंकृत राज मन्त्रीसे बोले, कि तुमने अमुक स्थानमें इतना धन हरण किया है; और जिस राजकोषको हर रहे हो, उसे अमुक अमुक पुरुष जानते हैं, यह कौवा ऐसा वचन कहता है; इससे तुम शीघ्र उसे विचारके देखो। अनन्तर मुनिने मन्त्रियोंसे ऐसा ही कहके उस स्थानमें दूसरे राजपुरुषोंसे कहा, तुम लोग भी जो राजकोष हरनेवाले हो, कौवेके वचनके अनुसार उसे मैं विशेष रूपसे जानता हूं; क्योंकि इस कौवेका मिथ्या वचन मैंने कभी भी नहीं सुना है। हे कुरुकुल धुरन्धर! कालक वृक्षीय इसी भांति कौशल्यके सेवकोंका यथा योग्य तिरस्कार, करके सन्ध्याके समय निद्रित हुए; तब सब राजपुरुषोंने मिलके बाणसे उनके कौवेको विद्ध किया। अनन्तर बहुत भोरके समय उठकर ब्राह्मणने पिञ्जरेमें कौवाको बाणसे विद्ध देखके क्षेमदर्शी कौशल्यसे कहा। हे राजन्! आप स्वामी और प्राण-धनके ईश्वर हैं; इससे आपके समीप में अभय प्रार्थना करता हूं। महाराज! आपकी आज्ञा-से ही मैंने सब भांतिकी शक्ति और यत्नके सहित तुम्हारे समीप आके आपके हितकर वचन कहा था, उससे अपने मित्रके नष्ट होनेसे मैं अत्यन्त दुःखित हुआ हूं। उत्तम घोड़ेको सिखानेवाले सारथीकी भांति यदि कोई मित्रको प्रबोधित करनेकी अभिलाषासे क्षमा-रहित होके तुम्हारा यह धन हरण हुआ है, ऐसा वचन कहे और मित्रके हितके वास्ते अत्यन्त क्रुद्ध होके हितसाधनमें प्रवृत्त हो; तो ऐसा होनेपर नित्य ऐश्वर्य्यकी इच्छा करनेवाले स्वजन पुरुषको वैसे मित्र और उसके वचनको क्षमा करना उचित है। परन्तु असावधान होके दूसरेसे वैसे मित्रको नष्ट कराना उचित

नहीं है। क्षेमदर्शी कालक-वृक्षीयका ऐसा वचन सुनके बोले, मैं अपने हितकी इच्छा किया करता हूं। इससे मेरे हितके वास्ते आप मुझसे जो कुछ कहेंगे, उसे मैं क्यों न क्षमा करूंगा।

हे ब्राह्मण! आप इस विषयमें जो कुछ कहनेकी इच्छा करते हैं, उसे कहिये। हे विप्र! मैं आपके समीप यह प्रतिज्ञा करता हूं, कि आप मुझसे जो कहेंगे, मैं आपकी वह इच्छा सफल करूंगा।

कालक-वृक्षीय मुनि बोले, महाराज! मैंने आपके सेवकोंका दोषादोष और उनसे अपनेको भय प्राप्त होना मालूम करके उनका व्यवहार आपसे कहनेके वास्ते भक्तिपूर्व्वक आपके समीप आगमन किया था; वह मेरा उचित कार्य्य नहीं हुआ है; क्योंकि इस ही कारण पहिले समयमें पूर्व्व-आचार्य्योंने राजसेवक पुरुषोंका इस प्रकार दोष कहा है, कि जो लोग राजसेवा करते हैं, उन लोगोंकी ऐसी पापजनक अगतीक गति अर्थात् अनुपायु मनुष्यकी भांति गति हुआ करती है। और भी पण्डित लोग कहा करते हैं, कि राजाके साथ जो लोग आसक्त होते हैं, उनको विषधारी सर्पके साथ आसक्त होना समझा जाता है, क्यों कि बहुतसे मित्र और अनेक शत्रु राजाओंके समीप विद्यमान रहते हैं। हे राजन्! इससे राजसेवा करनेवाले पुरुष राजकीय मित्र, शत्रु और राजाका सदा भय करें। हे राजन्! राजाके समीप एकबारगी प्रमाद करनेमें कोई भी समर्थ नहीं होता, इससे राजाके निकट ऐश्वर्य्यकी इच्छा करनेवाले पुरुषको कभी प्रमाद करना उचित नहीं है; क्यों कि सेवकके प्रमादसे राजा क्रोधित होता है, राजाके ढिठाईसे उसके जीवनमें संशय उत्पन्न होता है। जलती हुई अग्निमें पड़नेवाले पुरुषकी भांति राजाके समीप शिक्षित पुरुषका भी जीवन नष्ट हुआ करता है। इससे पुरुष सदा जीनेकी आशा त्यागके क्रुद्ध सर्पकी भांति प्राणधनके स्वामी राजाके निकट गमन करें; और राजाके समीप कुवचन कहना, दुःखित भावसे स्थित होना, कुस्थानमें निवास निन्दित रीतिसे बैठना दुष्टताके सहित गमन करना, इङ्गित और अङ्गचेष्टित इन सब कार्य्योंमें सदा शङ्का करें। हे राजन्! यमने ऐसा कहा है, कि राजा प्रसन्न होनेसे देवताकी भांति सब अर्थ सिद्ध करता और क्रुद्ध होनेसे अग्निकी भांति जड़ सहित भस्म करता है; इससे जो पुरुष राजाके निकट यथा नियमसे निवास करेगा मैं उत्तरोत्तर उसकी समृद्धिकी बढ़ती करूंगा। महाराज! मेरे समान सेवकही आपदकालमें बुद्धिकी सहायता प्रदान किया करते हैं, मेरा कौवा जैसा कार्य्यकारी था, मैं भी वैसा ही कार्य्य कर सकता हूं, परन्तु तुम्हारे सेवक लोग कौवेकी भांति मुझे भी नष्ट करेंगे ऐसा ही मुझे सन्देह होरहा है। मैं इस विषयमें आपकी निन्दा नहीं करता, परन्तु आप जो सेवकोंके प्रियपात्र नहीं हैं, वही कहता हूं। इसके अनन्तर आप हिताहितका विचार करके अपने सम्मुख ही सब कार्य्योंको सिद्ध कीजियेगा, महाराज! आपके गृहमें कोष हरण करनेवाले जो सब सेवक निवास कर रहे हैं, प्रजाके अमङ्गलकी इच्छा करनेवाले उन्हीं सब सेवकोंने मुझसे शत्रुताचरण किया है, और जो आपके अभावमें राज्य प्राप्त करेगा, उसने आपके प्राण नाशके वास्ते रसोई बनानेवालोंके जरिये अन्नादिकोंमें विष डालनेकी इच्छाकी है, आप यदि सावधान न होंगे, तो उन लोगोंकी वह अभिसन्धि सिद्ध होगी। महाराज! मैंने उन लोगोंके डरसे दूसरे आश्रममें गमन करनेकी इच्छाकी है। उन लोगोंने मेरे वास्ते जो बाण चलाया था, उससे मेरा कौवा मरा है। मैं निष्कामी और वे लोग छद्मकामी हैं इससे उन लोगोंने ही जो मेरे कौवेको यमपु

होमें मिना है, उसे मैं तपमय बड़े नेत्रसे स्पष्ट-रूपसे देख रहा हूं। हे राजन्! स्थाणु, अश्म और कांटेसे युक्त, सिंह और बाघोंसे परिपूरित, भयङ्कर और दुःखसे प्रवेश करने योग्य गुफाकी भांति अनेक मकर, मच्छ और घड़ियालोंसे घिरे हुए, तिमिङ्गिल समूहसे परिपूर्ण यह राजनीति रूपी महानदीसे, मैं तकिया रूपी नौकेके जरिये पार हुआ हूं। महाराज! दीप-कसे अन्धार युक्त किला और नौकासे पुरुष जलदुर्गके पार हो सकता है, परन्तु पण्डित लोग भी राज दुर्गके पार होनेकी उपाय निश्चय नहीं कर सकते। आपका राज्य अन्धकारकी भांति तम युक्त अर्थात् धर्म्माधर्म्म रहित और अत्यन्त अगम है; अतएव आप जब इसमें विश्वास करनेमें समर्थ नहीं होते, तब मैं किस प्रकार विश्वास करूंगा। इस राज्यमें जब पाप और पुण्य दोनों ही समान हैं, तब इस स्थानमें वास करना कल्याणकारी नहीं होगा, क्योंकि स्थलमें सुकृत और दुष्कृत दोनोंका ही निश्चय विनाश होगा। दुष्कृतका विनाश ही न्याय है; इससे इस स्थानमें स्थिरभावसे निवास करना युक्ति नहीं है; इससे जो पण्डित हैं; वे इस स्थानसे शीघ्र ही भाग जावें। हे राजन्! जिसमें सब नौका डूब जाती हैं, उस सोता नाम्नी नदीकी भांति आपकी यह राजनीति सर्व्वघातिनी वा गुरा रूपसे मुझे मालूम होरही है। हे राजन्! आप मधु प्रतापके समान परन्तु भोजनमें विषकी भांति हैं; आपके अभिप्राय मिथ्याकी भांति हैं, सदभिप्राय आपमें कुछ भी नहीं है; इससे आप मुझे सर्पसे युक्त कूएंकी भांति मालूम हो रहे हैं। हे राजन्! आप दुर्गम तीर्थ युक्त बड़े किनारे तथा बत संयुक्त मीठे जलसे परिपूरित नदी और कुत्ते, गिद्ध तथा शियारोंसे घिरे हुए राज हंसकी भांति मालूम होरहे हैं। महाराज! कच्च अर्थात् तृण लता आदि सब महावृक्षोंके आसरेसे बढ़के उसे आवरण करते हुए क्रमसे उस वृक्षको अतिक्रम करके बढ़ने पर भी प्रचण्ड दावाग्निके लगनेसे महावृक्षके सहित जैसे वह वृक्ष भस्म हो जाता है, वैसे ही कच्च तुल्य सेवकोंके सहित आप भी नष्ट होंगे; इससे आप उन सेवकोंकी परीक्षा करिये, आप ही उन लोगोंको सेवक पदवी पर नियुक्त करके प्रतिपालन कर रहे हैं; परन्तु वे लोग आपको अभिसन्धान करके तुम्हारे सब इष्ट विषयको नष्ट करनेकी अभि-लाषा करते हैं। इसही कारण मैं सहजीवी राजाके समस्त स्वभावके जाननेकी इच्छा करके प्रमादकी सब भांतिसे रक्षा करते हुए सर्पसे युक्त गृह और वीर पतीके स्थानकी भांति इस राज शङ्कित चित्तसे निवास करता हूं। हे राज सत्तम! राजा जितेन्द्रिय है, वा नहीं? इसने कामादिकोंको जय किया है वा नहीं? यह सेवकोंको प्रिय है, या नहीं और सब प्रजा इसे प्यारी है, वा नहीं? यह सब जाननेके ही वास्ते मैंने आपके समीप आगमन किया है। हे राजन्! भूखे पुरुषके भाजनीय वस्तुकी भांति आप मेरे अभिलषित हुए हैं; परन्तु आपके सेवक लोग प्यास रहित पुरुषके वास्ते जलकी भांति मेरे अनलाषित हुए हैं। आप यह निश्चय जान रखो, कि इस ही कारण वे लोग "मैं आपका अर्थकारी हूं,"—ऐसा दोष मेरे ऊपर आरोपित कर रहे हैं; दूसरा कोई कारण ही मुझमें विद्यमान नहीं है। मैंने उन लोगोंका कुछ भी अनिष्ट आचरण नहीं किया है; तौभी जब वे लोग मेरे दोषदर्शी हुए हैं। तब अब मुझे इस स्थानमें निवास करना उचित नहीं है; क्योंकि पूंछ दाबनेसे क्रुद्ध हुए सर्पकी भांति दुष्ट चित्तवाले शत्रुओंसे सदा शङ्का करनी उचित है।

राजा बोले, हे ब्राह्मण श्रेष्ठ! मैं बहुतसा परिहार स्वीकार करके अधिक आदरके सहित आपकी पूजा करता हूं; आप मेरे गृहमें बहुत

दिनों तक निवास कीजिये। हे ब्राह्मण! मेरे सेवकोंके बीच भी लोग आपके साथ अनुकूल आचरण नहीं करेंगे, वे मेरे गृहमें न रहने पावेंगे। अनन्तर इन लोगोंकी जैसी दशा होगी उसे आप ही जान सकेंगे। हे भगवन्! जिससे दण्ड उत्तम रीतिसे धारण और सुकृत कर्म्म भली भांति सिद्ध हों, उस विषयमें विशेष समालोचना करके कल्याणके वास्ते मुझे नियुक्त कीजिये।

मुनि बोले, पाहले कौवाके बधके कारण यह दोष देखकर एक एक सेवकोंको क्रमसे निर्बल अर्थात् ऐश्वर्य्य च्युत कीजिये। अनन्तर कौवाके बधका वृत्तान्त विशेष रूपसे जानके एक एक करके उन लोगोंका बध करिये। हे राजन्! बहुतसे मनुष्य एक ही दोषसे दूषित होने पर सब जाके भलके अत्यन्त तीक्ष्ण कांटोंको भी कोमल किया करते हैं; इससे यदि मन्त्रभेद होवे, इस ही कारण मैं आपसे ऐसा कहता हूं। मैं ब्राह्मण जाति स्वभावसे ही दयालु हूं; इससे हमारा दण्ड अत्यन्त कोमल है; अपनी भांति दूसरेका तथा आपके मङ्गलकी अभिलाषा किया करता हूं। हे राजन्! आपके सङ्ग मेरा जैसा सम्बन्ध है, आपको उसका परिचय देता हूं; मेरा नाम कालकवृक्षीय करके प्रसिद्ध है। मुझे सत्यप्रतिज्ञ समझके तुम्हारे पिता मेरा मित्रके समान सम्मान करते थे; जब वे परलोकको गये, उस समय मैं सब कामना त्यागके तपस्या कर रहा था। अनन्तर आपका राज्य विपदग्रस्त होनेसे मैं यहां आया हूं, और उस ही प्रीतिके कारण आपको बार बार यह बचन कहता हूं, इससे अब आप अनाप्त पुरुषमें आत्म बुद्धि न कीजिये। आपने इच्छानुसार राज्य लाभ किया है और सुख दुःख दोनोंको ही विद्यमान देख रहे हो, तौभी क्यों इस प्रकार सेवकोंके ऊपर राज्य भार सौंपकर प्रमादग्रस्त होते हो? हे राजन्! पण्डित लोग कहा करते हैं, कि राजकुलमें उत्पन्न हुए क्षत्रिय और पुरोहित कुलमें पैदा हुए उत्तम ब्राह्मणको ही यत्न पूर्व्वक सेवक पदवी पर प्रतिष्ठित करे।

हे युधिष्ठिर! कालक वृक्षीय मुनि इसी भांति यशस्वी कौशल्यके समुद्र सहित सब पृथ्वीको एकछत्री करके अत्यन्त उत्तम यज्ञादि कार्य्य किया और कौशल्यराज उनका वैसा हितकर बचन सुनके पृथ्वी जय करके उनकी आज्ञाके अनुसार कार्य्य करने लगे।

८२ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, पितामह! कैसे पुरुष राजाके सभासद, सहायक सुहृद परिच्छद और सेवक होंगे?

भीष्म बोले, हे भारत! जो लोग लज्जाशील, जितेन्द्रिय, सत्य और सरलतासे युक्त तथा प्रिय और अप्रिय बचनको पूरी रीतिसे कहनेमें समर्थ हैं, वैसेही पुरुषोंको तुम सभासद करना। हे कौन्तेय! जो सदा समीप रहते, पराक्रमी अत्यन्त ही अवश प्रकृतिसे युक्त, सन्तुष्ट, ब्राह्मण और सब कर्म्मोंमें महोत्सवसे सम्पन्न हैं, उन्हें ही आपदके समय सहायक बनाना। जो कुलीन, सदा सम्माननीय निज शक्तिको छिपाते नहीं और प्रसन्न, अप्रसन्न, पीड़ित वा मरे हुए सेवकोंको सब भांतिसे आवर्त्तित करते हैं, उन्हें ही सुहृतमित्र समझो। जो कुलीन, स्वदेशज, बुद्धिवान, रूपवान, बहुश्रुत, प्रगल्भ और अनुरक्त हैं, उन्हें ही परिच्छद कार्य्यमें नियुक्त करे। हे तात! जो लोग दुष्ट कुलोंमें उत्पन्न हुए, लोभी, नृशंस और निर्लज्ज हैं, वे लोग जब तक गीलाहाथ अर्थात् धनवान रहोगे, तभीतक सेवा करेंगे सूके हाथ होने पर उस ही समय टेढ़े होकर फिर तुम्हारी सेवा न करेंगे; इससे उन्हें परिच्छद कार्य्यपर नियत करना उचित

नहीं है; और जो लोग कुलीन, सत्स्वभाव युक्त, दृढ़ितत्व, निठुरतारहित; देश, काल और उपाय जाननेवाले तथा स्वामि-कार्य्य हितैषी हैं, उन्हें सब कार्य्योंमें सेवक बनाना। जिन्हें प्रियपात्र समझके अर्थ, मान, दिव्यवस्त्र और पान आदि दान तथा सत्कार आदि अनेक भांतिके भोगसे प्रतिपालन करे; वेही अर्थ और सुख भोगी होंगे।

हे युधिष्ठिर! जिसकी चित्तवृत्ति किसी प्रकार विचलित नहीं होती और जो लोग विद्वान् सद्वृत्त, व्रत करनेवाले, सत्यवादी, और अक्षुद्र हैं, वेही नित्यार्थी अर्थात् सदा स्वामीको अर्थ चिन्ता करते और आपदकालमें स्वामीको कभी नहीं त्यागते। और जो अनार्य्य, अधार्म्मिक, मन्दबुद्धि तथा मर्य्यादाहीन हैं, उन लोगोंके निकट समय अर्थात् धर्म्माधर्म्मको सब भांतिसे रक्षा करे। सबके बीच अन्यतर ग्रहण करना हो, तो गण परित्याग करके एक पुरुषके ग्रहण करनेकी इच्छा न करे; परन्तु एक पुरुष गण अर्थात् सबमें मुख्य होनेपर समूहको त्यागके भी एक पुरुषको ग्रहण करना उचित है। जो उत्तम कीर्त्ति और युद्धमें स्थित होके विक्रम दिखाते हैं, उसेही उनका साधु लक्षण समझो। और जो समर्थ पुरुषका सम्मान करते, स्पर्द्धा-हीन पुरुषके विषयमें स्पर्द्धा नहीं करते, काम, क्रोध, भय और लोभके वशमें होकर धर्म्म नहीं त्यागते, तथा अभिमान रहित, सत्यवादी, क्षमा-शील, जितात्मा, मानी और सब अवस्थामें ही परीक्षायुक्त हैं, वेही तुम्हारे मन्त्र सहायक होवें। हे पार्थ! जो कुलीन, उत्तम कुलमें उत्पन्न हुए, क्षमाशील, पटु, ऊंचे चित्त, शूर, कृतज्ञ और सत्य धर्म्मसे युक्त हैं, वेही साधु हैं; क्यों कि यही सब गुण साधुओंके लक्षण कहके प्रसिद्ध हैं। राजन्! इसी भांति बुद्धिमान पुरुष यदि राजाके निकट विद्यमान रहें, तो शत्रु भी प्रसन्न होके मित्रकी भांति व्यवहार किया करते हैं; इससे जितेन्द्रिय, बुद्धिमान् भूति-काम राजा ऐसे सेवकोंके अतिरिक्त अन्य सेवकोंके समस्त गुण दोषोंकी परीक्षा करे। हे राजन्! उन्नति शील, ऐश्वर्य्यको इच्छा करनेवाले राजा लोग आत्माय, कुलीन, स्वदेशीय, स्रक् चन्दन आदि विषयोंके वशमें न होनेवाले, व्यभिचार रहित और भलीभांति परीक्षा किये हुए पुरुषोंके साथ सम्बन्ध और अत्यन्त श्रेष्ठ योनिसे उत्पन्न हुए वेद जाननेवाले, परम्परागत और अभिमानरहित मनुष्योंकोही मन्त्री करे जिसमें बुद्धि विनय युक्त, उत्तम स्वभाव, तेज, धीरज, क्षमा, पवित्रता, अनुराग, मर्य्यादा और धारणा ये सब गुण विद्यमान हैं, राजा उन लोगोंके ऊपर कहे हुए गुणोंको सदा परीक्षा करके मजबूत, धुरन्धर, कपट रहित पांच पुरुषोंको अर्थ कार्य्य पर नियुक्त करे। । हे राजन् जो लोग पर्य्याप्तवादी, वीर, प्रतिपत्ति विशारद, कुलीन, सत्यसे युक्त, दृढ़ितत्व, निठुरता रहित, देश काल और उपायके जाननेवाले तथा स्वामि कार्य्य हितैषी हैं, राजा उन्हें सब कार्य्योंमें ही मन्त्री करे। हे राजन्! जो पुरुष तेजरहित मित्रके साथ सम्बन्ध रखता है, वह कभी कर्त्तव्या-कर्त्तव्य विषयको निश्चय करनेमें समर्थ नहीं होता; बल्कि सब कार्य्योंमें ही संशय उत्पन्न किया करता है, इससे राजा ऐसे मनुष्यको कभी अपना मन्त्री न करे। और अल्प-श्रुत मनुष्य उत्तमकुलमें उत्पन्न और धर्म्म, काम इस त्रिवर्गसे युक्त होनेपर भी वह मन्त्र परीक्षा करनेमें समर्थ नहीं होता; इससे उसे सेवक पदपर नियत करना उचित नहीं है, और नीच कुलमें उत्पन्न हुआ पुरुष अच्छे प्रकार बहुश्रुत होनेपर भी अनायक अन्धकी भांति सूक्ष्मकर्म्ममें मोहित हुआ करता है, इससे राजा उसे सेवक पदपर नियुक्त न करे। अस्थिर सङ्कल्पवाला पुरुष बुद्धिमान, शास्त्रवित और उपाय जाननेवाला होनेपर भी बहुत समय तक कार्य्य

ित करनेमें समर्थ नहीं होता। इस संसारमें जो नीच बुद्धि मनुष्य कर्म्मके विशेष फलको न जानके केवल मात्रकर्म्म करते हैं, उनकी सलाह नहीं ग्रहण की जा सकती। विरक्त मन्त्रीका विश्वास करना युक्तियुक्त नहीं है, इससे विरक्त मन्त्रीके समीप कभी विचार प्रकाश न करे; क्यों कि जैसे अनिल वृक्षके छिद्रसे प्रवेश करके अग्निकी भांति उसे भस्म करता है, वैसे ही वह कपटी मन्त्री दूसरे मन्त्रियोंके साथ मिलके राजाको दुःखित किया करता है। स्वामी कभी क्रुध होके मन्त्रीको स्थानसे च्युत करता, अथवा वचनसे निन्दा करके फिर उसके ऊपर प्रसन्न हुआ करता है; परन्तु अनुरक्त मित्र ही स्वामीके वह सब उपद्रव सह सकते हैं; और विरक्त मित्र उसे किसी प्रकार नहीं सह सकता वल्कि उसका क्रोध वज्र शब्दके समान होता है जो मन्त्री राजाके प्रिय कामनासे उसके उन सब उपद्रवोंको नष्ट कर सकता है, राजा समान सुख दुःख भागी उस ही मनुष्यसे अर्थ विषयमें सलाह प्रश्न किया करता है।

हे राजन्! सरलता-रहित मनुष्य इतर गुणोंसे युक्त होनेपर भी राजाके विचारको सुनने योग्य नहीं होसकते जो मनुष्य शत्रुसे सम्बन्ध करके पुरवासियोंका आदर नहीं करता वैसा पुरुष शत्रुसमान गिना जाता है और वह सलाह सुननेके योग्य नहीं है। मूर्ख, अपवित्र, लुब्ध, शत्रुकी सेवा करनेवाले, अपनी बड़ाई करनेवाले, अमित्र, क्रोधी और लोभी ये सब राजाके मन्त्रणा सुननेके योग्य नहीं होसकते। आगन्तुक पुरुष अनुरक्त, बहुश्रुत, सत्कृत और संविभक्त होनेपर भी सलाह सुननेके योग्य नहीं होसकता। पहिले जिसका पिता अधर्म्म आचरणके वशमें होकर कुस्वभावसे युक्त हुआ है, वह पुरुष सत्कृत और स्थापित होनेपर भी विचार सुननेके योग्य नहीं होसकता। जो पुरुष तनिक कार्य्यके वास्ते सुहृदका सर्व्वस्व हरके उसे निर्धन करता है, वह दूसरे अनेक गुणोंसे युक्त रहनेपर भी सलाह सुननेके योग्य नहीं होसकता। और जो मनुष्य कृतज्ञ, मेधावी, पण्डित, जनपदवासी, परम पवित्र और सब कार्य्योंमें शुद्धतायुक्त हैं, वे पुरुष ही राजाके विचारको सुननेके योग्य होसकते हैं। जो पुरुष ज्ञान, विज्ञानसे युक्त, शत्रुके और अपने स्वभावको आत्मसदृश समझता है, वही पुरुष मन्त्रणा सुननेके योग्य होसकता है। जो पुरुष सत्यवादी सुशील, गम्भीर अर्थात् मन्त्र गोपन करनेमें समर्थ, लज्जाशील, कोमलता युक्त और पिता-पितामहके क्रमसे विद्यमान रहता है, वह पुरुष ही सलाह सुन सकता है। जो मनुष्य सन्तुष्ट, सर्व्वसम्मत, सत्यधर्म्मवाला, प्रगल्भ पापद्वेषी, मन्त्रवित्, त्रिकालज्ञ और शूर है, वही पुरुष सलाह सुननेका योग्यपात्र है। हे राजन्! जो मनुष्य शान्तवचनसे सबको वशमें करनेमें समर्थ हो, दण्डधारी राजा उससे ही सलाह करे। पुर और जनपदवासी लोग जिसका धर्म्म पूर्व्वक विश्वास करें वही योद्धा, नीतिज्ञ पण्डित पुरुष सलाह सुननेके योग्य होसकता है। हे राजन्! इससे पहिले कहे हुए महत् आशय पांच जन मन्त्री ऐसे गुणोंसे युक्त हों, तो उन्हें सम्मानके सहित राजकार्य्यमें नियुक्त कर रखे; परन्तु पांचजन न पानेसे तीन पुरुषसे कम न रखे। स्वामीको चाहिये सेवकोंको निज स्वभावसे मन्त्रियोंको शत्रुपक्षके अवसर दानरूपी छिद्रों और शत्रुओंके छिद्रोंका सदा लक्ष्य करता रहे; क्यों कि राजाओंका मन्त्र ही मूल है मन्त्रसे ही राष्ट्र विशेष रूपसे वृद्धिको प्राप्त होता है। अपना छिद्र जिसमें शत्रुपक्षवाले न देख सकें, उसी भांति निज छिद्रको छिपाते हुए शत्रुओंके छिद्रोंका अनुसन्धान करे, जैसे कछुवा अपना सब शरीर सिकोड़ लेता है, वैसे ही अपना छिद्र गोपन करे। राजाके अच्छा बुद्धिमान मन्त्री लोग सब विचार गुप्त

रखें, राजा मन्त्ररूपी कवच धारण करे और शूरवीर पुरुष मन्त्राङ्गोंकी रक्षा करें। श्रेष्ठ बुद्धिवाले पण्डित लोग दूतको राज्यका मूल और मन्त्रको राज्यका सार कहा करते हैं; परन्तु स्वामी और मन्त्री लोग अभिमान, क्रोध, मान तथा ईर्षारहित होकर वृत्तिके वास्ते यदि आपसमें एक दूसरेके अनुवर्त्ती हों, तो वे सब कोई सुखी हुआ करते हैं। पांच भांतिके छलरहित सेवकोंके साथ सदा विचार करे, और पहिले कहे हुए तीनों मन्त्रियोंके अनेक परामर्श तथा उनके चित्तको विशेष रूपसे मालूम करके अपना तथा उन लोगोंका निश्चित मत स्थिर करके सलाहके अनन्तर उसे प्रकाशित करे। परन्तु यदि स्वयं असमर्थ हो तो सलाहके वास्ते धर्म, अर्थ और कामके जाननेवाले ब्राह्मण गुरुके समीप जाके उनसे वह विषय पूंछे यदि उनके सङ्ग मतकी एकता होवे, तो उस ही विचारको कार्य्यमें नियुक्त करे। पण्डित लोग कहा करते हैं, कि इसी भांति जो लोग मन्त्रके यथार्थ अर्थ और निश्चयको विशेष रूपसे जानते हैं; उनके साथ सदा विचार करके प्रजा संग्रहमें समर्थ उस मन्त्रको सदा प्रणयन कार्य्यमें नियुक्त करना उचित है। जिस स्थानमें सलाह करे, उसके आगे, पीछे, ऊपर, नीचे और तिर्य्यग् देशमें बौने, कुबड़े, कृश, गञ्जे अन्धे, जड़, स्त्री और नपुंसक ये सब किसी भांति भी जाने आने न पावें। और नौकामें चढ़के कुश काश रहित प्रकाशमान निर्जन स्थानमें गमन करके ऊंचे तथा भयानक वचन दोष और वक्र विकार आदि सब अङ्गदोषोंको परित्याग करके जिसमें कार्य्यका समय न बीत जाय, उसी भांति विचार करे।

८३ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, हे युधिष्ठिर! इस मन्त्र मूल प्रजा संग्रह विषयमें पण्डित लोग बृहस्पति और इन्द्रके सम्वादयुक्त जिस प्राचीन इतिहासका वर्णन किया करते हैं, उसे मैं इस प्रकार कहता हूं सुनो।

एक बार इन्द्रने बृहस्पतिसे पूछा था, कि हे ब्रह्मन्! जिसमें सब गुण अन्तर्हित होते हैं, क्या वैसे कर्त्तव्य कार्य्यका यथारीतिसे आचरण करनेसे ही पुरुष सब प्राणियोंसे सम्मत महत् यश प्राप्त कर सकते हैं?

बृहस्पति बोले हे सुरराज! पुरुष शान्त्व अर्थात् सब गुणोंके आश्रय प्रिय वचनको यथार्थ रीतिसे आचरण करने पर सब प्राणियोंसे सम्मत महत् यश लाभ कर सकते हैं। हे इन्द्र! पुरुष सब लोगोंको सुखी करनेवाले इस सब गुणावलम्बी प्रिय वचनका आचरण करनेसे ही सदा सब प्राणियोंका प्रियपात्र हुआ करता है। जो पुरुष इस संसारमें शान्त-वचनका आचरण न करके सदा भृकुटी टेढ़े मुखसे निवास करके किसीके साथ कुछ वार्त्तालाप नहीं करता; वह सब प्राणियोंका द्वेषी हुआ करता है। जो राजा सब विषयको जानके किसी पुरुषके निज दुःख कहनेके पहिले ही "तुम किस वास्ते आये हो?"—ऐसा पूछते और हंसके उसके साथ वार्त्तालाप करते हैं; उनपर सब लोग ही प्रसन्न हुआ करते हैं। सब ठौर प्रियवचन रहित दान व्यञ्जन हीन भोजनकी भांति प्राणियोंको तृप्त नहीं कर सकता। हे सुरराज! मीठा वचन कहके प्रजाका सर्व्वस्व ग्रहण करनेपर भी वे लोग रुष्ट नहीं होते; क्योंकि प्रियवचनसे सब लोग ही वशमें हो जाते हैं। इससे दण्डधारी राजा सदा शान्तवाक्य प्रयोग करे, क्योंकि शान्त ही फल उत्पन्न करता है, उससे कोई कभी व्याकुल नहीं होता। सुकृती पुरुषोंसे सेवित शान्त्व श्लक्ष्ण और मधुर वचनके समान कुछ भी नहीं है।

भीष्म बोले, हे कुन्तीनन्दन! इन्द्रने जैसे गुरु बृहस्पतिसे ऐसा सुनके उनके वचनके अनुसार

सब कार्य्य किये थे; वैसे ही तुम भी इन सबका पूरी रीतिसे आचरण करो

८४ अध्याय समाप्त ।

युधिष्ठिर बोले, हे राजेन्द्र ! सब लोकमें राजा किस प्रकार प्रजापालन करनेसे धर्म्म विशेषके जरिये प्रीति अर्थात् स्वर्ग और नित्य-कीर्त्ति प्राप्त कर सकते हैं ?

भीष्म बोले, राजा शुद्ध व्यवहारसे प्रजा पालनमें तत्पर होनेसे धर्म्म और नित्यकीर्त्ति लाभ करतेहुए पवित्र होकर दोनोंलोक प्राप्तकर सकते हैं। युधिष्ठिर बोले, हे महाबुद्धिमान्! राजा किस भांतिके व्यवहारसे कैसे लोगोंके साथ वर्त्ताव करे ? यह पूछा हुआ विषय यथारीतिसे वर्णन करना आपको उचित है। आपने पहिले पुरुषोंके जो सब गुण वर्णन किये, मुझे मालूम होता है, कि वे सब गुण एक पुरुषमें विद्यमान नहीं रह सकते।

भीष्म बोले, हे महाबुद्धिमान् ! तुम्हें मैं बुद्धिमान समझता हूं। तुमने जैसा वचन कहा वह वैसा ही है। ऐसे शुभ गुण किसी एक पुरुषमें विद्यमान रहने असम्भव है और इस लोकमें अत्यन्त यत्नसे भी सत्स्वभाव दुष्प्राप्य है तो भी तुम्हें जिस प्रकार जैसा सेवक करना होगा, उसे संक्षेपमें कहता हूं। वेद जाननेवाले प्रगल्भ, स्नातक और पवित्र चार ब्राह्मण, हाथमें शस्त्रधारण किए हुए आठ बलवान क्षत्रिय; वित्त-युक्त इक्कीस वैश्य, नित्य कर्म्ममें रत पवित्र और विनीत तीन शूद्र; सेवा, श्रवण, ग्रहण, धारण, ऊहन, उपोहन, विज्ञान और तत्वज्ञान इन आठ गुणोंसे युक्त प्रगल्भ अनसूयक पचास वर्षीय श्रुति और स्मृतिसे युक्त, विनीत समदर्शी कार्य्यमें विवदमान पुरुषोंके बीच समर्थ अर्थ लोभ। और मृगया, जूवा, स्त्री, पान, दण्डपातन, वचनकी कठोरता तथा अर्थ दूषण आदि सात भांतिके घोर व्यसन वर्जित पौराणिक सूत एकजन—इन लोगोंको ही सेवक करे। परन्तु राजा चार ब्राह्मण, तीन शूद्र और एक सूत इन आठ मन्त्रियोंके बीच स्थित होके मन्त्रणा स्थिर करे। अनन्तर उस ही विचारको राज्यके बीच प्रचार करके राष्ट्रीय पुरुषोंको मालूम कराना होगा ; इस ही व्यवहारसे तुम सदा प्रजा समूहको देखना। तुम कभी कार्य्यो-पघातक गूढ़ कार्य्य अर्थात् किसी पुरुषके न्यस्त विषयको राजकीय कहके ग्रहण न करना क्योंकि कार्य्य नष्टहोनेसे वह अधर्म्म अवश्य ही तुम्हें और मन्त्रियोंको पीड़ित करेगा और तुम्हारा राज्य समुद्रमें टूटी हुई नौका तथा बाजके समीपसे भागनेवाले पक्षीकी भांति तुम्हारे निकटसे दूसरी ओर गमन करेगा। हे पृथ्वीनाथ ! जो राजा अधर्म्म आचरण करके पूर्णरीतिसे प्रजा-पालन नहीं करते, उनके हृदयमें भय उप-स्थित होता है, और उनका स्वर्ग लोक रुद्ध हुआ करता है। हे नरेन्द्र धर्म्ममूल राज्यमें जो राजा, सेवक, अथवा राजपुत्र धर्म्मासन पर नियुक्त होकर अधर्म्मके अनुसार प्रजा पालन करते हैं, वे सब अधिकृत कार्य्योंको पूर्ण न कर-नेवाले अर्थात् जो बिना परीक्षा किये ही कार्य्य करते हैं, वे राजाके अनुगामी पुरुष स्वयं अगाड़ी होके राजाके सहित नरकगामी हुआ करते हैं।

हे राजेन्द्र ! बलवान पुरुषसे पराजित दीनकी भांति बहुभाषी अनाथ मनुष्योंको राजा सदा पालन करे। जब कि परीक्षा न करके कार्य्य करनेसे सेवकोंके सहित राजाकी अधो-गति होती है; तब उन सब व्यवहारोंको विधिव रीतिसे परीक्षा करनी होगी, और दोनोंके विरुद्धवाद अर्थात् विवादास्पद वस्तु अवाचिक और स्वामी रहित होनेपर साक्षीवश उत्तम प्रमाण होनेसे अपराधके अनुसार पापका दण्ड करना होगा ; यदि धनी पुरुष पापी हो; तो

उसे धन लेके मुक्त करे और निर्धन पुरुष पापी हो, तो उसे कैद करे। राजा दुष्ट मनुष्योंको प्रहारसे शिक्षित करे और श्रेष्ठ पुरुषोंको शान्त वचनसे पालन करे। जो मनुष्य राजाके वधकी इच्छा करनेवाले, घर जलानेवाले, चोर और वर्णसङ्कर करनेवाले हैं, उनका विचित्र रीतिसे अर्थात् अनेक प्रकारसे वध करे। शास्त्रके अनुसार स्थित भूपतिको विचित्र वधरूपी दण्डप्रयोग करनेसे उसमें उसे अधर्म न होगा बल्कि उससे शाश्वत धर्म्म ही होगा। जो मूर्ख राजा इच्छानुसार दण्ड प्रयोग करते हैं; वे इस लोकमें अयशके पात्र होके मरनेके अनन्तर नरक लोक प्राप्त करते हैं। दूसरेके प्रवादमें अन्य पुरुषके ऊपर दण्ड प्रयोग न करे, शास्त्र और युक्तिके अवलम्बसे बन्धन तथा मुक्त करे। राजा किसी आपदमें भी दूतका कभी वध न करे, क्योंकि दूतके मारनेवाले राजा मन्त्रियोंके सहित नरकगामी हुआ करते हैं। क्षत्रधर्म्ममें रत जो राजा यथोक्त-वादी दूतका वध करते हैं, उसके पितर लोग भ्रूणहत्या पापके भागी हुआ करते हैं। जो पुरुष कुलीन, कुलयुक्त, वाग्मी, दक्ष, प्रियवचन कहनेवाला, यथोक्त वादी और स्मृतिमान हो, वही दूत होवे; और उसमें ये सातो गुण विद्यमान रहें और द्वारपाल, किला और नगर-रक्षकमें भी ये सातों गुण रहें। जिस पुरुषने धर्म्मशास्त्रके यथार्थ अर्थ, सन्धि विग्रहका विशेष रूपसे मालूम किया है और बुद्धिमान धैर्य्यशाली, लज्जाशील, रहस्य विषयोंको गोपन करनेवाला, कुलीन तथा पराक्रमसे युक्त है वही पुरुष ही प्रशंसनीय सेवक कहके गिना जाता है। और ऐसे ही गुणोंसे युक्त व्यूह यन्त्र तथा सब शस्त्रोंके तत्वको जाननेवाला, पराक्रमी वर्षा, सर्दी, गर्म्मी, वायु आदिको सहनेवाला तथा परतत्ववित् पुरुष सेनापति होवे। हे राजेन्द्र! स्वयं दूसरेका विश्वासपात्र होवे और दूसरेका कभी विश्वास न करे। ऐसा ही क्यों पुत्रका भी विश्वास करना उत्तम नहीं है। हे पापरहित मैंने शास्त्रका यह यथार्थ तत्व तुम्हारे समीप वर्णन किया, शास्त्रमें राजाओंका अविश्वास परम गुह्य कहके वर्णित हुआ है।

८५ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! राजाओंको कैसे पुरमें वास करना उचित है, वे लोग पहिलेके बने हुए, वा अपनी बनाई हुई पुरीमें वास विस्तारके सहित कहिये।

भीष्म बोले, हे कुन्तीनन्दन! राजा लोग पुत्र जाति और बान्धवोंके सहित जिस स्थानमें वास करेंगे, वहांके व्यवहार और रक्षाका उपाय पूछना न्याय है; इससे तुम्हें जैसे किलेके विषयको विशेष रूपसे कहूंगा, उसे सुनके यत्नपूर्व्वक वैसे ही उपायका अनुष्ठान करना तुम्हें उचित है। हे राजन्! राजा लोग धन्व अर्थात् मरुभूमियुक्त किला, महीदुर्ग, गिरिदुर्ग, मनुष्यदुर्ग मृतिकादुर्ग और बनदुर्ग आदि यही छः प्रकारके किलेको अवलम्बन करके जिसमें सब सम्पत्ति प्रधान तथा बाहुल्यरूपसे सम्भव हो; वैसे ही सब पुर तैयार करावे। हे नरनाथ! जो पुर किलेसे युक्त धान्य और अस्त्रोंसे पूरित दृढ़ दीवार और परिखासे घिरा, हुआ, हाथी घोड़े तथा रथ समूहसे युक्त, विद्वान् शिल्पियोंसे अधिष्ठित धान्य आदि वस्तुओंसे परिपूरित, दक्ष-धर्म्मात्माओंसे प्रतिष्ठित बलवान मनुष्य, हाथी और घोड़ोंसे परिपूर्ण चौमरे तथा आपणोंसे सुशोभित, प्रसिद्ध व्यवहारयुक्त प्रशान्त, अकुतोभय, सुन्दर प्रकाशयुक्त गीतवाद्यकी ध्वनिसे परिपूरित, बड़े गृहोंसे युक्त शूर और आढ्यजन सम्पन्न, वेदध्वनिसे अनुनादित, सामाजिक उत्सवसे युक्त, और सदा पूजित देवताओंसे अधिष्ठित, ऐसे पुरके बीच

वनमें रहनेवाले सेवक उससे युक्त राजा स्वयं निवास करे। राजा उससे पुरमें वास करके उस स्थानमें कोश, वल, मित्र और व्यवहारकी सदा वृद्धि करे और पुर तथा जनपद स्थित दोषोंको निवारण करे। भण्डार, अस्त्रालय, धान्य आदि संग्रह और मन्त्र तथा अयुधागारोंको यत्नपूर्व्वक बढ़ावे। काठ, लोहा, तूष, अङ्गार, देवदारु, काष्ठ, सींग, हड्डी, बांस, मज्जा, स्नेह, चर्व्वी, मधु, अनेक भांतिके औषध ग्रम, सर्ज्जरस अर्थात् धूप, धान्य, अस्त्र, वाण, चर्म्म, स्नायु, बेंत, मूञ्ज और वल्वज-बन्धन, कूएं के समीप जलाधार उद-पान, बहुतसे तालाव और चोरीवृक्ष; इन सब सामग्रियोंको सदा राजा निज पुरमें रक्षा करे। आचार्य्य, ऋत्विक, पुरोहित, महा धनुर्द्धारी योद्धा, ईंट आदिसे घर बननेवाले स्थपति, ज्योतिषी और चिकित्सक इन सबका यत्नपूर्व्वक सत्कार करे। बुद्धिमान, मेधावी, धर्म्मात्मा, दक्ष, शूर, बहुश्रुत, कुलीन और पराक्रम युक्त पुरुषोंको सब कार्य्योंमें नियुक्त करे। धार्म्मिक मनुष्योंकी पूजा करे, अधर्म्मियोंको दण्ड दे और यत्नपूर्व्वक सब वर्णोंको निज निज कर्म्ममें नियुक्त करे। वाह्य और अभ्यन्तर पौर तथा जनपदवा-सियोंसे जो कार्य्य करना हो, उसे पहिले दूतोंसे भली भांति मालूम करके तब कार्य्य प्रयोग करे। राजा स्वय दूत, मन्त्र, कोष और दण्ड इन सबकी विशेष करके आलोचना करे; क्यों कि राज्यमें येही सब प्रतिष्ठित हुआ करते हैं। राजा दूत- द्वसे पुर जनपदवासी उदासीन, शत्रु, और मित्र सबके अभिलषित विषयको मालूम करे। अनन्तर सदा भक्तोंका सेवक शत्रुओंको पराजित करनेवाला वह राजा प्रमादहीन होकर उन लोगोंसे उस विषयका प्रतिकार करे। राजा सदा अनेक प्रकारके यज्ञ क्लेश रहित दान और प्रजाकी रक्षा करे; परन्तु धर्म्म-बाधक कोई कार्य्य न करे। कृपण, अनाथ बूढ़े और विधवा स्त्रियोंकी वृत्ति; निज राज्यका पालन और पराए राष्ट्रका विचार रूपी योग क्षेम सदा चिन्ता करना चाहिये। राजा सदा आश्रम वासियोंको सत्कार सम्मान और आदरके सहित यथा समयमें अन्न, वस्त्र और पात्रदान करे। राजा यत्नपूर्व्वक तपस्वि-योंसे राज्यके सब कार्य्य और निज शरीरका वृत्तान्त कहे, तथा सदा उनके समीप नत होके निवास करे।

राजा सब वस्तुओंके त्यागनेवाले सत्कुलमें उत्पन्न हुए तथा बहुश्रुत तपस्वियोंको देखके शय्या, आसन, और भोजनसे उनकी पूजा करे, राजा समस्त आपदाओंमें तपस्वियोंका अवि-श्वास न करे; क्यों कि डाकू लोग भी तपस्वि-योंका सदा विश्वास किया करते हैं। राजा तपस्वियोंमें सब निधि स्थापित करे और उनके समीप बुद्धि ग्रहण करे; परन्तु बार बार उनकी सेवा न करे, तथा अत्यन्त पूजा न करे। निज राज्य, पर राष्ट्र, अटवी और सामन्त नगरोंमें अलग अलग तपस्वियोंका मित्र कर रखे और निज राज्यमें रहनेवाले तपस्वियोंकी भांति पर राज्य तथा अटवी स्थित तपस्वियोंको सत्कार और सम्मानके सहित धन आदि दान करे; क्यों कि राजा किसी दशामें तपस्वियोंके शर-णागत होनेसे वह व्रत करनेवाले तपस्वी लोग इच्छानुसार राजाको आश्रयदान किया करते हैं। हे युधिष्ठिर! जैसे नगरमें राजाको स्वयं वास करना उचित है, उसके यही लक्षण और उद्देश्य मैंने संक्षेपमें तुम्हारे समीप वर्णन किया है।

८६ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे भरतश्रेष्ठ! जिस प्रकार राज्यकी रक्षा और राष्ट्र संस्थापन करना होता है, उसे पूरी रीतिसे जाननेकी इच्छा करता हूं, इसे भली भांति विस्तार करके यह मुझसे कहिये।

भीष्म बोले, हे युधिष्ठिर! राष्ट्ररक्षा और राष्ट्र संग्रह जिस प्रकारसे करना होता है, वह सब मैं तुमसे पूरी रीतिसे कहता हूं, तुम एकाग्रचित्त करके सुनो। राजा हर एक ग्राममें एक एक पुरुषोंको सबका स्वामी कर रखे, अनन्तर किसीको दश गांव, किसीको बीस, किसीको एक सौ और किसीको सहस्र गावोंको प्रभुता प्रदान करे। वह एक गांवका स्वामी गांवके दोष और गुणका विचारके दश गांवके स्वामीसे कहे और दश गांवका स्वामी उसे बीस गांवके स्वामीसे कहे। वह बीस गांवका स्वामी जनपदमें जिन जिन कार्य्योंका सिद्ध करे, वह सब उसे सौ ग्रामके स्वामीके निकट निवेदन करना होगा। ग्राममें जो सब खाने योग्य वस्तु उत्पन्न हों, एक गांवका स्वामी उन सब वस्तुओंको उपभोग करे और वही दश गांवके स्वामीको और दश गांवका स्वामी बीस गांवके स्वामीका भरण करे। हे भरतश्रेष्ठ! जो ग्राम बहुत बड़ा उन्नत और जन समूहसे युक्त हो, सौ गांवका स्वामी सत्कारके सहित उसे ही भोगनेमें समर्थ होगा; परन्तु सौ गावोंका स्वामी जिस गांवको भोग करेगा, वह गांव उस राज्यके अनेक लोगोंके अधीन रहेगा। और सबसे अधिक सहस्र गांवोंका स्वामी राष्ट्रीय लोगोंके साथ मिलके शाखा नगर और वहांके अन्न, सुवर्ण आदि सब भोगने योग्य वस्तुओंको भोगनेमें समर्थ होगा। उन लोगोंके युद्ध कार्य्य उपस्थित होनेपर कोई धर्म्म जाननेवाला आलस रहित मन्त्री उसे यथार्थ रीतिसे देखे और सब नगरोंमें एक एक जन सब अर्थोंके विचारनेवाले मन्त्री उपस्थित होकर सब कार्य्योंको देखते रहें। जैसे महा घोर रूपी प्रबल ग्रह नक्षत्रोंके चिन्तक ऊंचे स्थानमें घूमते रहते हैं; वैसे ही वे सब अर्थोंके जाननेवाले मन्त्री सब सभासदोंके ऊपर परिक्रमा करते हुए उन लोगोंके सब कार्य्योंको देखें; और उनका कोई दूत राज्यमें सभासदोंके व्यवहारको गुप्त रीतिसे मालूम करे। वह मन्त्री राज्यमें स्थित पापी, हिंसक, परधन हरनेवाले, शठ, रक्षाधिकृत नामक मनुष्योंसे प्रजासमूहको रक्षा करे। और उत्पत्ति, दान वृत्ति, तथा शिल्प कार्य्यको देखके शिल्पकार्य्य वा शिल्पियोंके ऊपर कर निश्चित करे। वह राज्यमें बेचना खरीदना, मार्ग, भक्त, परिच्छद और योगक्षेम देखके बनियोंके ऊपर कर लगावे। हे युधिष्ठिर! ऐसा हो क्यों! जिसमें प्रजा दुःखित न हो उसी भांति विचार करके प्रजाके ऊपर यथायोग्य कर स्थापित करे। हे राजन्! फल अर्थात् धन धान्य और कर्म्म अर्थात् कृषि आदि कार्य्योंको पूरी रीतिसे देखके तब उस पर कर निश्चित करे, क्योंकि फल और कर्म्ममें किसीका स्वार्थ न रहनेसे वह कभी भी उसमें प्रवृत्त नहीं होता। जिससे राजा और कर्म्म करनेवाले दोनों ही कर्म्मभागी होसकें, वैसा ही विचार करके राजा सदा कर स्थापित करे। और जिसमें अत्यन्त लोभके कारण आत्मामूल राज्य और परमूल कृषि आदि कार्य्य नष्ट न हों, उसी भांति राजा लोभ त्यागके प्रजासमूहके समीप प्रिय मालूम होवे। राजाके अतिखादी अर्थात् बहुभक्षी कहके विख्यात होनेसे सब कोई उससे द्वेष किया करते हैं। राजा प्रजापुञ्जके विरुद्ध होनेसे किसी भांति कल्याण प्राप्त नहीं कर सकता; इससे अप्रिय राजा किसी भांति भी फल लाभ करनेमें समर्थ नहीं होता। हे भारत! इससे जैसे लोग बछड़ेको भूखा न रखके गऊ दुहते हैं, वैसे ही बुद्धिमान राजा राज्यको दुहे; क्यों कि बछड़ा बलवान होने पर पीड़ा सह सकता है। हे युधिष्ठिर! जैसे अधिक दुहनेसे बछड़ा कर्म्म करनेमें समर्थ नहीं होता, वैसे ही अत्यन्त दोहन करनेसे राष्ट्र भी महत् कर्म्म नहीं कर सकता। जो राजा स्वयं कृपा करके राष्ट्रको सब भांतिसे

रक्षा करता है, वह बहुत समय तक जीवित रहके अनेक फल लाभ कर सकता है, आपद कालमें यदि प्रजा राजाकी सहायताके वास्ते धन दान न करे, तो राजा राज्यकी कोषभूत करके कोषको गृहके भीतर करे। पुर और जनपदके आश्रित, उपाश्रित वा थोड़ा धन होनेपर भी राजा उन लोगोंके ऊपर सामर्थ्यके अनुसार कृपा करे। बाह्य अर्थात् आटविक डाकुओंको राज्यसे प्रत्याख्यान करके मध्यम अर्थात् गांवके लोगोंके निकट सुखसे धन ग्रहण करे, ऐसा होनेसे सुखी वा दुखी पुरुष उसके ऊपर क्रुद्ध न होंगे। और "राजाको धन लेनेकी आवश्यकता है,"—इसी भांति पहिले निज राज्यमें सूचना करके उसके अनन्तर इच्छानुसार ग्राममें प्रजा समूहको ऐसा कहके भय दिखावे, कि दूसरे से महत् भयरूपी एक आपदा उत्पन्न हुई है, वंशफलके आगमकी भांति वह आपद नाशको मूल होगी। यद्यपि हमारा शत्रु अपने नाशके वास्ते ही डाकुओंके सङ्ग प्रबल होके इस राज्यको पीड़ित करनेकी अभिलाषा करता है। तौभी उपस्थित घोर आपद तथा प्रचण्ड भयसे मैं तुम लोगोंका परित्राण करूंगा वहके तुम लोगोंसे धन ग्रहण करनेकी इच्छा करता हूं। उपस्थित भय नष्ट होनेसे ही तुम लोग मेरे समीपसे उस धनको फिर पाओगे, परन्तु शत्रु लोग बलपूर्व्वक इस राज्यसे जो धन हरण करेंगे, उसे फिर नहीं पाओगे इस समय यदि तुम लोग स्त्री-पुत्रोंके वास्ते सञ्चय करनेकी अभिलाषासे साधारणकी सहायताके वास्ते मुझे धन देनेमें विमुख होगे, तो शत्रुओंके निकट स्त्री पुत्रोंके सहित तुम लोगोंका प्राण नाश होगा; और इस समय तुम लोग यदि मेरे सहकारी होकर हमारी सहायता करोगे, तो मैं इस राज्यको उपद्रवसे रक्षित करके पुत्रकी भांति तुम लोगोंको सङ्ग लेकर आनन्द अनुभव करूंगा। और सामर्थ्यके अनुसार तुम लोगोंकी सहायता करूंगा। जैसे भार ढोनेके समय गुरु-भार बहुतसे लोगोंके जरिये उठाया जाता है, वैसे ही मुझको तुम लोगोंके साथ इस आपदके समयमें भार उठाना पड़ेगा। देखो, कोई आपद उपस्थित होनेपर उस समय धनको अत्यन्त प्रिय समझना उचित नहीं है।

अनन्तर समयवित राजा जब इस भांति उपचारयुक्त विनीत तथा मधुर वचनसे प्रजासमूहके समीप कर स्वरूप धन ग्रहण न कर सके, तब वह योग अर्थात् धन ग्रहण करनेको उपाय अवलम्बन करके उसके अनुसार निज तेज तथा पदातिसमूहके जरिये प्रजाके निकटसे धनग्रहण करे। राजा दौवार और सेवकोंके वास्ते व्यय, युद्धके भय और योगक्षेम देखके वैश्योंके ऊपर कर लगावे। बनमें बास करनेवाले वैश्य, राजाकी उपेक्षा होनेसे ही नष्ट होते हैं, इससे विशेष करके उनके विषयमें मृदुताचरण करना होगा। हे पार्थ! सदा वैश्योंको धीरज देना, पालन, दान, उत्तम अवस्था, संविभाग और उनके साथ प्रिय आचरण करना उचित है। हे भारत! वैश्योंको सदा फलवान करना योग्य है, क्योंकि वे ही कृषि और व्यवसायसे राष्ट्रकी वृद्धि किया करते हैं। इसहीसे बुद्धिमान मनुष्य वैश्योंके ऊपर प्रीति किया करते हैं और दयावान तथा सावधान होके उन लोगोंके ऊपर कोमल कर स्थापित करते हैं। हे युधिष्ठिर! इस ही कारण सर्व्वत्र ही वैश्योंके वास्ते मङ्गलाचरण सुलभ हुआ करता है और इसके समान उत्तम कार्य्य कुछ भी नहीं देखा जाता।

८७ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे महाबुद्धिमान् पितामह! राजा समर्थ होकर भी यदि कोषकी अभिलाष

करे, तो किस भांति उस विषयमें प्रवृत्त होवे, उसे मेरे समीप वर्णन कीजिये।

भीष्म बोले, धर्मशील राजा प्रजाका हितैषी होकर देश, काल, बुद्धि और बलके अनुसार प्रजाको शासन करे। अपनी और प्रजासमूहकी जैसे सदा मङ्गलकामना की जाती है, वैसे ही राष्ट्रके सब कार्य्योंको भली भांति सिद्ध करना होगा। जैसे बछड़े माताके स्तनको न काटके केवल दूध दोहन करते और जैसे लोग मधुमाछियोंको पीड़ित न करके मधु पान करते हैं, वैसे ही राजा राष्ट्रसे धन ग्रहण करें। जैसे बाघिन निज बच्चोंको दांतसे पकड़के उन्हें पीड़ित न करके हरण करती है, तथा जोंक जैसे मृदुभावसे लोहू पीती है; राजा भी उसी भांति राज्य भोग करें। प्रजाको पालन करनेवाला राजा पहिले प्रजाके निकटसे थोड़ा थोड़ा कर वसूल करके बढ़ाते हुए दूसरे वर्षमें अधिक करके धीरे धीरे बढ़ावे। जैसे वत्सोंको अत्यन्त यत्नके सहित पाश ग्रहण कराके क्रमसे भार बढ़ाके दमन करना होता है, वैसे ही प्रजासमूहको भी दमन करे। और जैसे बछड़े सदा पाशमें बन्धके दुःखित होके प्राणत्याग करते हैं, वैसे ही प्रजा भी एकबारगी कर भारसे आक्रान्त होनेपर दुःखित होके प्राणत्याग करती है; इससे राजाको बछड़ेकी भांति अत्यन्त यत्नके सहित धीरे धीरे दमन करना होगा, ऐसा न करनेसे प्रजाकी रक्षा नहीं होगी। हर एक पुरुषोंमें जो कार्य्य सहज रूपसे प्रयोग नहीं होसकता, उसके वास्ते मुख्य पुरुषोंको शान्त करके इतर लोगोंको दमन करना होगा। तिसके अनन्तर राजा मुख्य पुरुषोंके जरिये उस कर भारको उठानेवाले प्रजा समूहमें परस्पर भेद कराके स्वयं उन्हें शान्त करते हुए अयत्नके सहित सुख भोग करें। अवस्थान वा असमयमें उन लोगोंके ऊपर कर भार अर्पण न करें; परन्तु समय और नियमके अनुसार शान्तवा-क्यसे धीरे धीरे कर भार अर्पण करें। मैंने यह सब उपाय कहे, परन्तु माया मुझे विवक्षित नहीं है; देखिये वाजिगणोंको अनुपायसे दमन करनेसे वे अत्यन्त ही कोपित होजाते हैं। और राज्यके बीच मद्यशाला, तथा राज्यके उपघातक वेश्या कुटनी कुशीलव, कितव और दूसरे इस भांतिके जो मनुष्य निवास करें राजा उन सब लोगोंको शासन करें; क्यों कि उनके शासित न होनेसे उत्तम प्रजा अत्यन्त क्लेश पावेगी। किसी आपदके उपस्थित होने पर कोई किसीके समीप दिया हुआ धन तथा कर न मांगे; मनु पहिले प्राणियोंके वास्ते ऐसी ही व्यवस्था स्थापित कर गये हैं; इससे सब कोई उस व्यवस्थाके अनुगामी होवें; यदि इस समय उसमें अन्यथा होवे, तो ये सब लोक अवश्य ही नष्ट होंगे। हे नरनाथ! ऐसी जन श्रुति है, कि राजा ही सब प्राणियोंको शासन करनेवाला है; उससे जो राजा पापी पुरुषोंको शासन नहीं करता उसे उस पापका चौथा भाग भोग करना पड़ता है; तब जो पापी हों, उन्हें सदा शासन करना राजाको अवश्य उचित है। परन्तु जो राजा इन पापियोंको दमन नहीं करते उन्हें जैसे प्रजाके किये हुए धर्ममें चतुर्थ भाग भोगना पड़ता है वैसे ही उस पापका भी फल भोगना होगा। राजा भली भांति मद्य आदिकोंके स्थानको योग्य स्थानमें स्थित करें, नहीं तो स्वयं उसमें आसक्त होके ऐश्वर्य्यको नष्ट करना पड़ेगा; क्यों कि पुरुष कामासक्त होनेसे किसी कार्य्याकार्य्यमें नहीं रुक सकता अनायास ही सब कार्य्योंको कर सकता है; बल्कि मद्य, मांस, पर स्त्री और परधन हरनेमें लोगोंके समीप शास्त्र प्रदर्शित किया करता है। हे राजन्! जिन लोगोंको परिवर्त्ति ग्रह नहीं है, आपदकालमें उन लोगोंके याचना करनेपर राजा उनके ऊपर कृपा करके धर्मपूर्व्वक उन्हें धन दान करे भयसे दान न करे। हे युधि-

ष्ठिर ! तुम अपने राज्यमें याचक वा डाकुओंको कभी वास करने न देना; क्योंकि ये लोग प्राणि-योंकी भलाईकी इच्छा न करके केवल मात्र अनिष्ट आचरण किया करते हैं। जो प्राणि-योंके ऊपर कृपा करते और जो लोग प्रजाकी बढ़ती करते हैं, वेही पुरुष तुम्हारे राज्यमें निवास करें। प्राणियोंके नाशक पुरुष वास न करने पावें। हे महाराज ! जो अधिकारी पुरुष निर्दिष्ट करके अतिरिक्त धन वसूल करें, वे राजाके समीप दण्डनीय होवें; अनन्तर दूसरे अधिकारी पुरुष यथार्थ कर वसूल करनेके वास्ते उन लोगोंको फिर नियुक्त करें। कृषि, गोरक्षा, वाणिज्य, और ऐसे ही दूसरे जो कुछ कर्म्म उपस्थित हों, उसे अनेक पुरुषोंसे सिद्ध कराना होगा; ऐसा न करनेसे कर्म्म नष्ट होगा। यदि मनुष्य कृषि, गोरक्षा और वाणिज्य कार्य्यका अनुष्ठान करके चोर वा राजकीय लोगोंसे कुछ संशय युक्त हों, तो उसके वास्ते राजाको लोगोंके समीप निन्दित होना पड़ता है। इससे राजा भोजन पान और वस्त्रोंसे सदा धनवान पुरुषोंका सम्मान करे और उन लोगोंको मेरे सहित प्रजाके ऊपर कृपा करो ऐसा वचन कहे, हे राजन् ! धनवान पुरुष ही राज्यके महत् अङ्ग और सब प्राणियोंमें श्रेष्ठ हैं, इसमें सन्देह नहीं। ज्ञानी शूर, धनी, स्वामी, धर्म्मात्मा, तपस्वी, सत्यवादी और बुद्धिमान मनुष्य ही रक्षा किया करते हैं। हे महाराज! इससे तुम सब जीवोंमें प्रीतियुक्त होके सत्य, सरलता, अक्रोध और अनृशंसताके सहित पालन करो; हे राजन् ! तुम सत्य और सरलताके सहारे मित्र कोष और बलसे युक्त होनेपर निश्चय ही दण्ड, कोष, मित्र और भूमि लाभ करनेमें समर्थ होगे।

८८ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, हे युधिष्ठिर ! जिसका फल खाया जाता है, तुम्हारे राज्यमें स्थित वैसे वृक्षोंको कोई न काटने पावे, पण्डित लोग फल मूलको ही ब्राह्मणोंका धन और धर्म्म कहा करते हैं। और दूसरे लोग ब्राह्मणोंसे अतिरिक्त भोग किया करते हैं, इससे ब्राह्मणोंका भोग न होनेसे जिसमें दूसरे लोग किसी प्रकारसे ग्रहण न करें। हे नरनाथ ! यदि ब्राह्मण वृत्तिसे रहित होके अपने परित्राणके वास्ते दूसरे स्थानमें गमन करें, तो परिवारके सहित उसको वृत्ति कर देवे। यदि वह उससे भी निवृत्त न हो, तो ब्राह्मण सभा मण्डलीमें वह इस प्रकार निन्दनीय होंगे, कि इनके निवृत्त न होनेसे इस समय लोग किसकी मर्य्यादा करेंगे ? हे कौन्तेय ! इसके अनन्तर यद्यपि कोई उसे कुछ न कहें और पूर्व्व वृत्तान्तको भूल जावें तो वह अवश्य ही निवृत्त होंगे। लोग उसे ऐसा वचन कहें कि, हे ब्राह्मण ! जो भोगकी इच्छा करके भोगके अभावमें राज्य परित्याग करेंगे उन्हें भोगसे और वृत्तिके वास्ते वृत्तिके अभावमें राज्य त्यागनेपर उसे जो वृत्तिके वास्ते निमन्त्रण करना होगा, उसमें हम लोग श्रद्धा नहीं करते। कृषि, गोरक्षा, वाणिज्य आदि कर्म्मोंसे ही इस लोकमें प्राणि-योंकी जिविका निर्व्वाह होती है और वेद विद्या प्राणियोंको उर्द्धगामी किया करती है। इस संसारमें प्रवर्त्तमान उस वेदविद्याके विषयमें जो सब डाकू लोग विघ्नता करते हैं; उनके नाश करनेके वास्ते ब्रह्माने क्षत्रिय जातिको उत्पन्न किया है। हे कुरुनन्दन ! इससे वीर होकर शत्रु जय, प्रजापालन, अनेक दक्षिणाके सहित यज्ञ और युद्ध करो। जो राजा प्रतिपा-लन करने योग्य प्राणियोंको सदा पालन करता है, वही राजसत्तम है; और जो उनको रक्षा नहीं करते, उनसे कोई भी प्रयोजन सिद्ध नहीं होता। हे युधिष्ठिर ! राजा सदा लोक-रक्षाके

वास्ते युद्ध करे और उसमें सब मनुष्योंको नियुक्त करे; इससे तुम आत्मीयसे दूसरे और पराएसे आत्मीय तथा परायेसे पराये और आत्मीयसे आत्मीयको सदा पालन करो। राजा सब भांतिसे अपनी रक्षा करतेहुए पृथ्वीकी रक्षा करे, क्योंकि पण्डित लोग आत्मरक्षाको ही मूल कहा करते हैं। मेरा छिद्र क्या है, कौन सा व्यसन होरहा है, अविनिपातित क्या है, कहांसे मुझे दोष आश्रय करता,—इन सब विषयोंको राजा सदा विचारता रहे। गत दिवसमें जिस कार्य्यको किया है, प्रजा उसको दूसरी बार प्रशंसा करती है, वा नहीं; मेरा यह कार्य्य यदि प्रजाको मालूम हुआ हो, तो वह पुनर्व्वार उसकी प्रशंसा करती है, वा नहीं? जनपद और राज्यके बीच मेरा यश प्रजाके अभिलषित हुआ है, वा नहीं? इन सब विषयोंके अनुसन्धान करनेके वास्ते आज्ञाकारी गुप्त दूतोंको पृथ्वीपर भेजे। और धर्म्म जाननेवाले, धैर्य्यवाले, तथा युद्धसे न भागनेवाले मनुष्योंके बीच जो लोग राजाको उपजीव्य करके नहीं रहते, वे लोग और कौन कौन सेवक तथा लोगसे मध्यस्थ पुरुष प्रशंसा वा निन्दा करते हैं उसे भली भांति जाने। हे तात! साधारणको एकबारगी अभिलषित होना अत्यन्त कठिन है; क्योंकि सब प्राणियोंमें ही मित्र, शत्रु, और मध्यस्थ विद्यमान हैं।

युधिष्ठिर बोले, समान बल और तुल्य गुणवाले मनुष्योंमें कोई पुरुष किस कारणसे सबसे प्रबल होते, तथा वह पुरुष किस कारणसे उन लोगोंका भक्षक होता है।

भीष्म बोले, जैसे क्रुद्ध विषधारी प्रबल सर्प निर्बल सांपोंको भक्षण करते हैं, वैसे ही चलनेवाले न चलनेवालोंको और दांतवाले बिना दांतवालोंको भक्षण किया करते हैं। हे युधिष्ठिर! इससे ये सब प्राणी भी शत्रुओंके निकट सदा सावधान रहें; क्योंकि प्रमाद उपस्थित होनेपर ये लोग गिद्धकी भांति निपतित हुआ करते हैं। हे राजन्! तुम्हारे राज्यमें थोड़े और अधिक मूल्यसे क्रय करनेवाले स्त्रियोंमें विश्राम शील और वणिक लोग कर भारसे पीड़ित होके व्याकुल तो नहीं होते जो राजाओंके बहुत भारको उठाते और सब साधारण लोगोंका उद्धार करते हैं, वे कृषक लोग भारसे पीड़ित होके राज्यको परित्याग तो नहीं करते और तुम इस लोकमें देने योग्य भोग्य वस्तुओंसे देव, पितर, मनुष्य, सर्प, राक्षस, पशु और पक्षियोंका पोषण करते हो न? हे भारत! यही तुम्हारे राष्ट्र व्यवहार और राज्य गुप्तिकी कथा कही है। हे पाण्डव! यही अर्थ अवलम्बन करके फिर कहूंगा।

८९ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, हे युधिष्ठिर! ब्रह्मवित्तम उतथ्यने युवनाश्व-पुत्र मान्धाताके ऊपर प्रसन्न हो कर उनसे अङ्गिरासम्बन्धीय जो सब क्षत्र धर्म्म कहा था, तथा जिस प्रकार उन्हें शासित किया था, वह सब मैं तुमसे पूरी रीतिसे कहता हूं।

उतथ्य बोले, हे मान्धाता! तुम यह निश्चय जान रखो, कि लोग धर्म्मके अनुष्ठान निबन्धनसे ही राजा हुआ करते हैं, कामानुष्ठानसे राजा नहीं हो सकते; इससे राजा ही सब लोगोंकी रक्षा किया करता है। राजा यदि धर्म्म आचरण करे, तो देवत्व प्राप्त कर सकता है और यदि अधर्म्म आचरण करे, तो नरकगामी हुआ करता है। सब प्राणी धर्म्ममें स्थित रहते और धर्म्म राजामें निवास किया करता है। इससे जो राजा उस धर्म्मको उत्तम रीतिसे रक्षा करते हैं, वे ही पृथ्वीके स्वामी होते हैं। जो राजा श्रीमान् और परम धर्म्मशील होता है, लोग उसे ही धर्म्म कहा करते हैं। और ऐसा कहा करते हैं, कि जिस राजामें धर्म्म नहीं

रहा, उसके घरसे देवता लोग भाग जाते हैं। जो लोग निज धर्म्ममें विद्यमान रहते हैं; उनकी ही प्रयोजन सिद्धि होती दीख पड़ती है, इससे सब कोई उस मङ्गलमय धर्म्मके अनुगामी होवें। पण्डित लोग कहा करते हैं, कि मनुष्योंके जब पाप निवारित नहीं होते तब उनके धर्म्मकी हानि होकर अधर्म्मकी बढ़ती होती है, और रात दिन भय हुआ करता है। हे तात! जब पाप निवारित नहीं होता, तब साधुओंमें भी "यह वस्तु मेरी और यह वस्तु मेरी नहीं है,"—इसी भांति धर्म्मयुक्त व्यवस्था नहीं रहती। मनुष्योंमें जब पापबल विद्यमान रहता है, तब उन लोगोंको भार्य्या, पशु, क्षेत्र और गृह नहीं दीखते। मनुष्योंके बिना पाप नष्ट हुए देवता लोग पूजा पितर लोग स्वधा और अतिथि लोग सत्कार ग्रहण नहीं करते। जब तक पाप दूर नहीं होता तब तक व्रत करनेवाले द्विजाति लोग देवताओंको नहीं जान सकते और ब्राह्मण लोग यज्ञ विस्तार करनेमें भी समर्थ नहीं होते। हे महाराज! जब तक पाप दूर नहीं होता तब तक मनुष्योंका मन वृद्धोंकी तरह विह्वल हुआ करता है। ऋषि लोग दोनों लोकोंको अवलोकन करके "यह पुरुष ही धर्म्म पालक होगा" महाभूतमय राजाको उत्पन्न किया करते हैं, इस ही से उसमें धर्म्म विराजमान रहता है, उसे देवता लोग राजा कहा करते हैं और जिससे धर्म्म नष्ट होता है, उसे वृषल कहते हैं। जो राजा वृषरूपी भगवान धर्म्मका छेदन करता है, देवता लोग उसे ही वृषल कहा करते हैं; इससे धर्म्मकी विशेष रूपसे वृद्धि करे; धर्म्मकी बढ़ती होनेसे प्राणियोंकी भी सदा बढ़ती हुआ करती है; और धर्म्मकी हानि होनेसे प्राणी भी क्षीण हुआ करते हैं, इससे किसी भांति भी धर्म्मलोप न करे। हे पुरुषेन्द्र! जो प्राणियोंके धन प्राप्तिके वास्ते कृपायुक्त होता, तथा धारणाके कारण स्वयं प्राप्त होता है, उसे ही धर्म्म समझना चाहिये; वह अकार्य्योंकी सीमाका नाशक कहके वर्णित हुआ है। स्वयम्भू ब्रह्माने प्राणियोंकी बढ़तीके वास्ते ही धर्म्मको प्रकट किया है, इससे राजा प्रजाके ऊपर कृपा करके धर्म्मको प्रवर्त्तित करे। हे राजशार्दूल! धर्म्म ही श्रेष्ठ कहके वर्णित हुआ है; इससे जो पुरुषश्रेष्ठ हितकारी मनुष्य धर्म्म पूर्व्वक प्रजापालन करते हैं, उन्हें ही राजा समझना चाहिये। हे भरतसत्तम! धर्म्म ही राजाओंके निमित्त अत्यन्त कल्याणदायक है; इससे तुम काम क्रोध त्यागके केवल धर्म्मका ही पालन करो। हे मान्धाता! ब्राह्मण धर्म्मकी योनि हैं, इससे उन ब्राह्मणोंकी सदा पूजा करे और मत्सरता रहित होकर उनकी कामना पूरी करे उनके अहित आचरण करनेसे राजाओंको भय उपस्थित होता है, और मित्रोंकी हानि होकर शत्रुओंकी उत्पत्ति होती है। विरोचनपुत्र बलि सदा ब्राह्मणोंके साथ असूया करते थे, इसहीसे श्री देवी उनसे सन्तापित होके उन्हें परित्याग करके पाकशासन इन्द्रके समीप चली गई थीं; अनन्तर बलि श्रीको इन्द्रके समीप देखके अत्यन्त ही शोकित हुए थे। विभु मान्धाता! तुम असूया और अभिमानका ऐसा ही फल समझो देखो श्री तुम्हारे ऊपर क्रुद्ध होके तुम्हें परित्याग न करे। ऐसा कहा गया है, कि श्रीका पुत्र दर्प अधर्म्मसे उत्पन्न हुआ है, तुम यह निश्चय जान रखो, कि अनेक देवता, असुर और राजऋषि लोग उससे ही नाशको प्राप्त हुआ करते हैं। उसे जय करनेसे ही पुरुष राजा होता और उसके समीप पराजित होनेसे ही दास हुआ करता है। हे मान्धाता! यदि तुम चिरजीवी होनेकी इच्छा करते हो, तो जैसे राजा अभिमानके सहित अधर्म्मकी सेवा परित्याग करता है, तुम भी वैसा ही करो। मत्त, प्रमत्त, पाखण्डी और उनमत्तोंके समीप न जावे, उनके

साथ परिचय तथा उनकी सेवा न करे। दण्डित सेवक, स्त्री, विषय और दुर्गम पहाड़, हाथी, घोड़े, तथा सांपोंके निकटसे निवृत्त होवे। जो कदापि इन सबमें सदा युक्त रहना पड़े, तौ भी रात्रिके समय इनका सङ्ग परित्याग करे, और असहिष्णुता, अभिमान, दम्भ और क्रोधको त्याग करे। हे राजेन्द्र! बिन जानी हुई स्त्री क्लीव, स्वैरिणी, पराई स्त्री और कन्यासे कभी मैथुन न करे। वर्णसङ्कर होनेसे कुलमें पापी, राक्षस, क्लीव, अङ्गहीन स्थूल जिह्वा और चित्तहीन पुरुष उत्पन्न हुआ करते हैं। राजाके प्रमादग्रस्त होनेसे ही ये सब उत्पन्न होते हैं, इससे राजा विशेष करके प्रजाके हितमें अनुरक्त रहे। क्षत्रियोंके प्रमत्त होनेसे महान दोष उत्पन्न होता है और प्रजाको वर्णसङ्कर करनेवाले सब अधर्मोंकी बढ़ती हुआ करती है। गर्म्मीके समयमें सर्दी होती, शीतकालमें सर्दी नहीं रहती और अत्यन्त वृष्टि अनावृष्टि और व्याधि प्रजा समूहको आक्रमण करती हैं। नक्षत्र और धूमकेतु आदि भयङ्कर ग्रह उदय होते तथा राज्य नाशके अनेक उत्पात दीख पड़ते हैं, जो राजा अपनी और प्रजाकी रक्षा करनेमें असमर्थ है, उसकी प्रजाका नाश होता है, पीछे उसका भी नाश होजाता है। जब एक पुरुषके धनको दो मनुष्य मिलके ग्रहण करते और दो पुरुषोंका धन अनेक मनुष्य ग्रहण करते तथा कुमारी पूर्ण रीतिसे लुप्त होती हैं; उस समय पा[illegible]त लोग राजाको ही दोष कहा करते हैं। जब राजा प्रमादग्रस्त होके धर्म्म त्याग कर "यह धन मेरा है, यह दूसरेका नहीं है,"—इसी भांति आचरण करते हुए जन समाजमें निवास करता है, तब लोग वैसे राजाको दुष्ट कहा करते हैं।

९० अध्याय समाप्त।

उतथ्य बोले, जब बादलके समयपर बरसने और राजाके धर्म्मचारी होनेपर सम्पत्ति बढ़ती है, तब वह सम्पत्ति प्रजासमूहको सुखपूर्वक पालन करती है। जो धोबी वस्त्रके रङ्गको न छुड़ाके मैलमात्रको दूर करना नहीं जानता, जिस राजामें धर्म नहीं है, उसे वैसा ही समझे इसी भांति ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चारों वर्णोंके बीच जो शूद्र निज धर्मसे च्युत होकर अनेक कर्मोंमें रत रहता है, उसे रजकके समान समझे। शूद्रमें सेवा, वैश्यमें कृषि क्षत्रियोंमें दण्डनीति और ब्राह्मणोंमें ब्रह्मचर्य्य, तपस्या, मन्त्र और सत्य प्रतिष्ठित है। इनमेंसे जो क्षत्रिय धोबीके वस्त्र धोनेकी भांति शीलदोष बिलकुल दूर करना जानते हैं वेही सबके पिता और प्रजाके स्वामी होते हैं। हे भरतर्षभ! सतयुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग ये सब ही राजवृत्त हैं, इससे राजा ही युगरूपसे कहा जाता है। जब राजा प्रमादग्रस्त होता है, तब चारों वर्ण चारों आश्रम और चारों वेद मुग्ध हुआ करते हैं। जब राजा प्रमत्त होता है, तब गार्हपत्य, दक्षिणाग्नि और आवहनीय ये तीनों अग्नि, ऋक्, यजु और साम ये तीनों विद्या तथा दक्षिणा युक्त यज्ञ सब प्रमादग्रस्त हैं। राजा ही प्राणियोंका हर्त्ता और कर्त्ता है परन्तु जो राजा धर्मात्मा हैं वेही कर्त्ता और जो अधर्मी हैं वेही हर्त्ता कहाते हैं। जब राजा प्रमादग्रस्त होता है, तब उसके स्त्री, पुत्र, बान्धव और सुहृद लोग उस ही समय शोकग्रस्त हुआ करते हैं। राजाके अधर्म्मी होनेसे हाथी घोड़े, गऊ, ऊंट, खच्चर और गर्दभ आदि सब जन्तु ही अवसन्न हुआ करते हैं। हे मान्धाता! ब्रह्माने निर्ब्बल प्राणियोंकी रक्षाके वास्ते ही बलवानको उत्पन्न किया है; क्यों कि उससे ही निर्ब्बल प्राणिप्रतिष्ठित होते हैं। हे राजन्! राजाके अधर्म्मी होनेसे राजसेवक तथा राजवंशीय सब प्राणी शोक किया करते हैं। निर्ब्बल, मुनि और विषधर सर्पकी दृष्टिको मैं अत्यन्त ही असह्य बोध करता हूं; इससे तुम दुर्ब्बलको दुःखी न

करना। हे तात! तुम निर्ब्बल पुरुषोंको सदा अवमानित बोध करना, जिससे निर्ब्बलोंके नेत्र तुम्हें बान्धवोंके सहित भस्म न करें; क्यों कि जो पुरुष निर्ब्बलोंके द्वारा भस्म होता है, उसके कुलमें कुछ भी अङ्कुरित नहीं होता, बल्कि समूलसे ही भस्म हो जाता है, इससे तुम निर्ब्बलोंको कभी पीड़ित न करना। अत्यन्त बलवानसे भी बलहीन पुरुष श्रेष्ठ हुआ करता है, क्यों कि बलवान पुरुष निर्ब्बलके द्वारा भस्म होनेसे उसका कुछ भी बाकी नहीं रहता। यदि विमानित, घायल, वा आक्रुष्ट पुरुष किसी त्राणकर्त्ताको न प्राप्त कर सके, तो अमानुषिक दण्ड राजाकोही नष्ट करता है। हे तात! तुम निज बलके सहारे विपक्षी होकर निर्ब्बल पुरुषोंको भोग न करना, छिपी हुई अग्निकी भांति जिससे निर्ब्बलोंके नेत्र तुम्हें भस्म न करें। मनुष्य यदि किसी पुरुषसे मिथ्या अभिशप्त होकर रोदन करता है, तब उसके नेत्रसे जो सब आंसू गिरता है, वह उसके मिथ्यावादके कारण वेही सब आंसू उसके पुत्र और पशुओंको नष्ट किया करते हैं। गऊ जैसे सदा फलदायक नहीं होती वैसे ही यदि पाप कर्म्म सदा फलित हो, तो पुत्रमें फलेगा, पुत्रमें न फलित हो, तो पौत्र और दौहित्रमें फलित होता है। जिस स्थलमें निर्ब्बल पुरुष बलवानसे पीड़ित होके किसीको अपना परित्राण करनेवाला नहीं पाता, उस स्थानमें दैवी महान् दण्ड पतित हुआ करता है। जनपद वासी सब लोग एकत्रित होकर ब्राह्मणोंकी भांति भिक्षा मांगें, तो उनका भिक्षुक रूप ही सदा राजाका नाश किया करता है। यदि जनपदके बीच राजाके बहुतसे राज पुरुष राज कार्य्यमें नियुक्त होकर नीतिके विरुद्ध कार्य्य करनेमें प्रवृत्त हों, तो राजाको बहुत ही पाप होता है। और वे लोग काम तथा अर्थके वशमें होकर अयुक्तिके अनुसार दरिद्रोंका भी धन हरण करें, तो ऐसा होनेसे राजाका दुर्निवारगी नाश होता है। जैसे वृक्ष उत्पन्न होके बड़ा होने पर प्राणी लोग उसकी ही आशा करते हैं और उस वृक्षके कटने वा जलनेसे वह लोग आश्रय हीन होते हैं, वैसेही राजाके बढ़ने वा नष्ट होने पर प्रजा समूहकी वैसे ही दशा हुआ करती है। यदि राजपुरुष लोग राज्यमें राजाके गुण और मानस धर्म्मको वर्णन करके उत्तम धर्म्माचरण भी करें, तो उस ही समय उनका सुकृत नष्ट होजावे और यदि धर्म्मके भ्रमसे अधर्म्म आचरण करें, तो उससे दुष्कर्म्म नष्ट हुआ करता है। यदि राज्यके बीच पापी पुरुष राजाको विदित होकर साधुओंके समीप भ्रमण करें, तो ऐसा होनेसे कलियुग उस राजाका आश्रय किया करता है। परन्तु यदि राजा मूर्ख मनुष्योंको शासन करे, तो उसका राज्य बढ़ता है। जो राजा सेवकोंका यथोचित सम्मान करके युद्ध और विचार कार्य्योंमें नियुक्त करता है, उस राजाका राज्य विशेष रूपसे बढ़ता है और वह बहुत दिनोंतक समस्त पृथ्वी भोग किया करता है। राजा जब पुरुषोंके उत्तम वचनको सुनके तथा सुकृत कर्म्मोंको देखकर उन लोगोंका सम्मान करनेसे उत्तम धर्म्मलाभ करता है। यदि राजा यथा नियमसे विभाग करके भोजन करे, सेवकोंका अपमान न करे, और बलके अभिमानी पुरुषोंका दमन करे, ऐसा होनेसे वही राज्यका धर्म्म कहके वर्णित हुआ करता है। जब राजा काया, वाचा और कर्म्मसे सबका परित्राण करते हैं, पुत्रके विषयमें भी क्षमा नहीं करता, तब उसका वह कर्म्म ही धर्म्मरूपसे वर्णित हुआ करता है। राजा दुर्ब्बल प्राणियोंको भोजन कराके स्वयं भोजन करने पर, उन लोगोंका शीघ्र बल प्राप्त होता है, उससे राजाको परम धर्म्म होता है। जब राजा राज्यके डाकुओंको दमन और युद्धमें जय प्राप्त करता है, तब उसका जनसमाजमें

वही धर्म्म गायी जाता है। प्रिय पुरुषको पापाचरण करने पर भी यदि राजा उसके विषयमें चमा न करे, तो राजाका वही धर्म्म कहके वर्णित हुआ करता है। जब राजा शरणागत मनुष्योंको मर्य्यादा भेद न करके उन्हें पुत्र समान पालन करता है, तब राजाका वह परम धर्म्म कहके गाया जाता है। यदि राजा काम क्रोधका अनादर करके दक्षिणा युक्त यज्ञ करे, तो उससे परम धर्म्म होता है। यदि राजा कृपण, अनाथ और बूढ़े मनुष्योंके क्लेशयुक्त आंसूको पोंछके उन्हें हर्षित करे, तो उसके जरिये उसे बहुत धर्म्म होता है। जो राजा मित्रोंको ऊंचा, शत्रुओंको नीचा और साधुओंको सम्मानित करता है, वही धार्म्मिक कहाता है। जो राजा सत्यका पालन प्रीतिपूर्व्वक सदा भूमिदान अतिथि सेवा और सेवकोंका भरण पोषण करता है लोग, वैसे राजाको ही धार्म्मिक कहा करते हैं। जिसमें निग्रह अनुग्रह दोनों ही प्रतिष्ठित हैं, वही राजा इस लोक और परलोकमें उत्तम फल भोग किया करते हैं।

हे मान्धाता! धार्म्मिक पुरुषोंकेवास्ते इन्द्रिय निग्रह ही अत्यन्त उत्तम कार्य्य है; क्योंकि वे लोग प्राण और इन्द्रिय संयम कर सकें, तो ईश्वरत्व लाभ करनेमें समर्थ होते हैं, परन्तु इन्द्रिय संयम न कर सके तो अग्निकी भांति हुआ करते हैं। जैसे यम अर्थात् निरति सब प्राणियोंको जिस प्रकार स्थित करते हैं, वैसेही राजा सब प्रजाको यथारीतिसे स्थित कर रखे। हे पुरुषश्रेष्ठ! जब कि लोग सहस्र पुत्रवाले इन्द्रके साथ राजाको तुलना करते हैं, तब राजा जिसे धर्म्म रूपसे देखे, वही धर्म्म कहके गिना जावेगा, हे राजन्! तुम सदा प्रमाद रहित होकर चमा, बुद्धि, धृति, सहारे प्राणियोंको शक्ति जानके साधु और दुष्टोंको शिक्षा करो। सेना संग्रह करो, सबको दान दो, सबसे मीठे वचन कहो; पुर और जनपदवासियोंको यथा रीतिसे सुखपूर्व्वक पालन करो। हे राजन्! अपटु राजा कभी प्रजा-पालन करनेमें समर्थ नहीं होता; क्योंकि राज्यरूपी महत् भारको उठाना अत्यन्त ही कठिन है। जो राजा दण्डवित् बुद्धिमान और शूर हैं, वही राज्य रक्षा करनेमें समर्थ होता है, परन्तु दण्डज्ञानसे रहित क्लीव और बुद्धिरहित राजा उसको रक्षा करनेमें कभी समर्थ नहीं होता। तुम सत्कुलोंमें उत्पन्न हुए भक्त, बहुश्रुत, दक्ष और अनुयाई सेवकोंके सहित तापसाश्रमियोंके बुद्धिको सब भांतिसे परीक्षा करना। यदि तुम इसी प्रकार सब प्राणियोंके परम धर्म्मको मालूम कर सको तो ऐसा होनेसे स्वदेश और विदेशमें कहीं भी तुम्हारा धर्म्म नष्ट न होगा। हे राजन्! इस ही कारण अर्थ और कामसे धर्म्म उत्तम है और धर्म्मात्मा मनुष्यही इस लोक तथा परलोकमें सुख भोग किया करते हैं। जो मनुष्य स्त्री पुत्रोंको त्याग सकते हैं, वे सबके समीप पूजित होते हैं। हे मान्धाता! सेना संग्रह, दान मधुर वचन, अप्रमाद और पवित्रता ये सब राजाओंके अत्यन्तही ऐश्वर्य्यकारी हैं; इससे इन सब विषयोंमें सदा सावधान रहना। राजा सावधान होके अपना और दूसरेके छिद्रोंका अनुसन्धान करे, परन्तु दूसरे लोग राजाके छिद्रोंको न देखने पावें; क्यों कि आत्मछिद्रोंको छिपाना और परछिद्र देखाना ही राजाओंका कर्त्तव्य कर्म्म हैं। हे महाराज! इन्द्र, यम, वरुण और राजर्षियोंको ऐसा ही वृत्ति है, तुम भी यत्नवान होकर इसे पालन करो, हे भरत श्रेष्ठ! राजर्षि लोग जिस धर्म्मको सेवन करते है, तुम भी उस ही को सेवा करो। और शीघ्र ही दिव्य पथ अवलम्बन करो। हे भारत! महातेजस्वी देवर्षि, पितर और गन्धर्व्व लोग इस लोक तथा परलोकमें धर्म्मात्मा राजाके यशको गाया करते हैं।

भीष्म बोले, हे भरतवंश प्रवीर युधिष्ठिर! मान्धाताने उतथ्यसे ऐसे ऐसे वचन सुनके शङ्कारहित चित्तसे उस ही भांति धर्म्माचरण किये थे, इसीसे अकेले ही पृथ्वी प्राप्त की। हे पृथ्वीनाथ! तुम भी मान्धाताकी भांति वैसा ही धर्म्माचरण करनेसे इस लोकमें पृथ्वी पालन करके मरनेके अन्तमें स्वर्ग लोकका स्थान प्राप्त करोगे।

९१ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! राजा धर्म्म मार्गमें निवास करनेका अभिलाषी होकर किस प्रकार धार्म्मिक होगा? उसे मैं आपके समीप जाननेकी इच्छा करता हूं; इसे विस्तार करके कहिये।

भीष्म बोले, तत्वार्थदर्शी बुद्धिमान वामदेवने पृथ्वीपति वसुमनासे जो कथा कही थी, पण्डित लोग उस प्राचीन इतिहासका ही ऐसे स्थलमें प्रमाण दिया करते हैं; मैं भी तुमसे कहता हूं, सुनो। ज्ञानवान्, धृतिमान्, पवित्रतायुक्त पृथ्वीनाथ वसुमनाने महातपस्वी महर्षि वामदेवसे धर्म्म और अर्थयुक्त वचन पूछा, हे भगवन्! जिस प्रकार धर्म्माचरण करनेसे धर्म्मच्युत न होके निज धर्म्ममें रह सके, आप मुझे उसहीका उपदेश करिये।

परम तपस्वी तेजस्वी वामदेव नहुषपुत्र ययातिकी भांति सुखसे बैठे हुए हेमवर्ण्ण वसुमनासे बोले, महाराज! आप केवल धर्म्मके अनुवर्त्ती होइये, धर्म्मसे उत्तम दूसरा कुछ भी नहीं है; राजा लोग एक मात्र धर्म्ममें स्थित होके ही पृथ्वी जय किया करते हैं। जो राजा अर्थसिद्धिसे धर्म्मको उत्तम समझकर निज बुद्धिको धर्म्म बढ़ानेमें ही प्रवर्त्तित करते हैं, वेही धर्म्मकी ज्योतिसे विराजमान होते हैं। जो राजा अधर्म्मी होकर बलपूर्व्वक अधर्म्मके आचरणमें प्रवृत्त होता है, वह शीघ्र ही धर्म्म अर्थसे रहित होता और धर्म्म अर्थ दोनों ही उससे अलग हो जाते हैं। जिसके मन्त्री लोग दुष्ट और पापी हैं, तथा जो स्वयं धर्म्मकी हानि करते हैं, वे शीघ्र ही परिवारके सहित दुःखित होकर लोगोंके निकट वध्य होते हैं। जो राजा अर्थानुष्ठानसे रहित कामाचारी और अपनी बड़ाई करनेवाला है, वह समस्त पृथ्वी प्राप्त करनेपर भी शीघ्र ही नष्ट होता है। परन्तु जो राजा कल्याणग्राही असूया रहित, जितेन्द्रिय और बुद्धिमान होता है, वह सोतेसे बढ़नेवाले समुद्रकी भांति बढ़ता है। जो राजा ऐसा समझता है। कि मैं धर्म्म अर्थ, काम, बुद्धि और मित्र किसीसे भी परिपूरित नहीं हूं, इन्हीं सबसे लोकयात्रा प्रतिष्ठित है; वह सब सुनके यश, कीर्त्ति, श्री और प्रजा लाभ कर सकता है। जो राजा धर्म्म अर्थका चिन्तक तथा धर्म्मका अनुगामी होकर इसी भांति अर्थ दृष्टि करना आरम्भ करता है, वह अवश्य ही विपुल अर्थ भोग कर सकता है। जो राजा कृपण, प्रीतिरहित और साहस प्रकृति युक्त होकर प्रजाके विषयमें यथार्थ दण्डविधान नहीं करता, वह शीघ्र ही नष्ट होता है। जो बुद्धिहीन राजा जानके भी पापी पुरुषोंके विषयमें उपेक्षा करके उनकी ओर दृष्टि नहीं रखता, वह अकीर्त्तिसे युक्त होकर बारबार नरक भोग किया करता है। जो राजा दाता, अच्छ, वशवर्त्ती और सबका सम्मान करनेवाला होता है, उसे विपद उपस्थित होनेपर सब मनुष्य आत्मविपदकी भांति उसके उस विपदके नाश करनेकी इच्छा करते हैं। जिसके धर्म्म उपदेशक गुरु नहीं हैं और जो अर्थ लाभमें सुख परतन्त्र होकर दूसरे किसीको भी धर्म्म विषयको नहीं पूछते तथा वे सदा सुखभोग नहीं कर सकते और जिसके धर्म्म उपदेश करनेवाला मुख्य गुरु है, वह स्वयं धर्म्मकी आलोचना करता है और अर्थ

लाभमें धर्म्म-परतन्त्र होता है; वही सदा सुख भोग कर सकता है।

९२ अध्याय समाप्त।

वामदेव बोले, जिस राज्यमें बलवान राजा निर्ब्बल पुरुषोंके ऊपर अधर्म्म आरोपित करता है, उसके वंशवाले जो सब पुरुष उस ही वृत्तिको उपजीव्य किया करते हैं, तथा दूसरे जो सब मनुष्य उस पाप प्रवर्त्तक राजाके अनुगामी होते हैं, वह विनयरहित मनुष्योंसे युक्त राज्य शीघ्र ही विनष्ट होता है। राजा प्रकृतिस्थ अर्थात् स्वधर्म्मावलम्बी होनेपर वह जैसा व्यवहार करता है, साधारण मनुष्य भी उस ही व्यवहारके अनुगामी हुआ करते हैं। परन्तु राजा विषमस्थ अर्थात् अन्य धर्म्मावलम्बी होकर जैसा व्यवहार करेगा, स्वजन पुरुष उस व्यवहारके अनुगामी न होंगे। जिस राज्यमें साहस प्रकृति राजा शास्त्र लक्षणसे विपरीत कार्य्य करता है, उस राज्यमें वह उस ही समय नष्ट होता है। जो चत्रिय जित अर्थात् आपन्न और अजित अर्थात् स्वस्थ मनुष्योंके अत्यन्त आचरित वृत्तिके अनुवर्त्ती नहीं होते, वे चत्रियधर्म्मसे बाहिर हुआ करते हैं। जो चत्रिय अपकार करनेवाले द्वेषी राजाको युद्धभूमिमें पाके द्वेषके कारण उसका सम्मान नहीं करते, वह चत्र धर्म्मसे बाहिर होते हैं। जो राजा आपदकालमें सुख भोगनेमें समर्थ होके भी दुःख भोग करते हुए प्रजाको आपदसे निवारण करते हैं, वह प्रजासमूहके प्यारे होते हैं, राजलक्ष्मी वैसे राजाका कभी परित्याग नहीं करती। हे राजन्! जिसकी बुराई करे, दूसरी बार उसकी भलाई करे; क्यों कि बुराई करनेवाला पुरुष फिर भलाई करनेपर थोड़ेही समयके बीच प्रिय हुआ करता है। मिथ्या वचन परित्याग करे, बिना कहे ही लोगोंका प्रिय कार्य्य करे; काम क्रोध और द्वेषके वशमें होकर कभी धर्म्म परित्याग न करे। कोई प्रश्न करे, तो उसे निठुर होके उत्तर न दे, कठोर वचन प्रयोग न करे, किसी कार्य्यमें शीघ्रता न करे किसीकी निन्दा न करे और शत्रुओंको संग्रह न करे। प्रिय होनेसे अत्यन्त हर्षित न होवे, अप्रिय होनेपर उसमें दुःखी न होवे और प्रजाके हितको स्मरण करते हुए अत्यन्त अर्थसे भी तृप्त न होवे। जो राजा गुणोंके अनुसार सेवकोंका सदा प्रियकार्य्य किया करता है, उसके सब कार्य्य सिद्ध होते और राजश्री उसे कभी परित्याग नहीं करती। राजा सदा स्थिरताके सहित विरोधियोंको निवृत्त और अनुकूल रहनेवाले भक्तोंका सत्कार करे। जो सेवक दृढ़ इन्द्रियोंसे युक्त, अत्यन्त अनुगत, पवित्रचित्तवाला अनुरक्त और सब कार्य्योंमें समर्थ हो, उसे ही राजा महत् कर्म्ममें नियुक्त करे। जो सेवक ऐसे गुणोंसे युक्त हो और स्वामीके कार्य्योंमें सावधान होके उसे अनुरक्त कर सके, वैसे सेवकको ही राजा अर्थकार्य्यमें नियुक्त करे, जो राजा मूढ़ इन्द्रियपरायण, लोभी, अनार्य्योंके आचरित कर्म्मको करनेवाला, शठ, कपटता युक्त, हिंसक, नीचबुद्धि, मूर्ख, उदार कर्म्मोंको त्यागनेवाला, मद्यमें रत और जुआ, स्त्री तथा मृगयापरायण सेवकको महत् कार्य्योंमें नियुक्त करता है वह राजा श्रीभ्रष्ट हुआ करता है। जो राजा अपनी रक्षा करके प्रतिपालन करने योग्य सेवकोंकी रक्षा करता है, उसकी सब प्रजा बढ़ती है, और वह अवश्य ही विपुल ऐश्वर्य्य भोग किया करता है जो राजा गुप्त दूतोंके जरिये अधीनमें रहनेवाले राजाओंके सब कार्य्योंको मालूम करता है, वह सबसे मुख्य हुआ करता है। राजा बलवान पुरुषका अपकार करके "मैं दूर हूं" इस प्रकार धीरज पूर्ब्बक उपेक्षा न करे, क्यों कि वे लोग बाज पक्षीकी भांति प्रमादयुक्त अपकारी राजाके समीप आके उपस्थित

होते हैं। दृढ़ मूल साधु राजा अपना बल मालूम करके निर्ब्बल पुरुषोंके ऊपर चढ़ाई करे; परन्तु जो बलवान हैं, उनके ऊपर चढ़ाई न करे। धर्म्ममें तत्पर राजा पराक्रमसे पृथ्वी प्राप्त करके धर्म्मपूर्व्वक प्रजा पालन और युद्धमें शत्रुओंका बध करे। इस लोकमें प्रजा पालन आदि कार्य्य करनेके अनन्तर स्वर्ग-हेतु निबन्धन अनामय अर्थात् कुशल जनक हुआ करता है; इससे राजा निजधर्म्ममें स्थित होके धर्म्म पूर्व्वक प्रजापालन करे। युद्धमें रक्षाधिकार अर्थात किले आदिकी दृढ़ता करनी, युद्ध, धर्म्मका अनुशासन, मन्त्र चिन्ता और प्रजाको सुख देना, इन पांच प्रकारके कार्य्योंसे पृथ्वी विशेष रूपसे बर्द्धित हुआ करती है। जो इन सबको भली भांति रक्षा करते, वेही राजेन्द्र होते और वह सदा इस लोकमें वर्त्तमान रहके इस पृथ्वीमण्डलको धारण किया करते हैं अकेले राजाके जरिये इन सब विषयोंका सिद्ध होना अत्यन्त ही कठिन है; इससे राजा किले आदिके अधिष्ठाता मन्त्रियोंके ऊपर समस्त कार्य्यभार अर्पण करनेसे बहुत समयतक पृथ्वी भोग करनेमें समर्थ होता है। हे राजन्! जो पुरुष दाता, संविभक्त, कोमल-स्वभाव, पवित्र और अनुरक्त होता है, उसे ही लोग नृपति कहा करते है। जो निःश्रेयस विषय सुनके अपना मत परित्यागके उस निःश्रेयस ज्ञानको ही प्रतिपन्न करते हैं, लोग उसे ही नृप रूपसे मानते हैं। जो द्वेषके कारण अर्थकामी पुरुषोंके बचनका क्षमा न करके, उनके निकट विमनाकी भांति सदा प्रतिकूल बचन सुनते, और आजित् अर्थात आपन्न और अजित् तथा स्वस्थ पुरुषोंके अग्राम्य अर्थात् बुद्धिमान पुरुषोंके आचरित वृत्तिकी सदा सेवा नहीं करते, वे क्षत्र धर्म्मसे बहिष्कृत होते हैं। निग्रहीत सेवक, स्त्री, विषय, और दुर्गम, पर्व्वत, हाथी, घोड़े और सांप इन सबसे सदा निहत्त होके आत्मरक्षा करे; परन्तु जो पुरुष इन सबमें सदा नियुक्त रहके आत्मरक्षा करता है, और मुख्य सेवकोंको परित्याग करके अत्यन्त हीन प्रकृतिवाले सेवकोंको प्रिय समझता है; वह पुरुष व्यसनमें फंसके कार्य्यका अन्त प्राप्त करनेमें समर्थ नहीं होता। जो राजा द्वेषके कारण कल्याण गुणसे युक्त सज्जनोंके समीप निवास करने की इच्छा नहीं करता, वह अहङ्कात्मा दृढ़ क्रोधयुक्त राजा मृत्युके निकट वास किया करता है; और गुणवान पुरुषोंको हृदयके अप्रिय होनेपर भी जो राजा उन्हें प्रिय बचनसे वशमें कर सकता है, वह सदा भूमण्डल पर यशस्वी होके निवास करता है। राजा असमयमें अर्थ प्रणयन न करे, अनिष्ट होने पर उसमें कभी अत्यन्त सन्तापित न होवे, प्रिय कार्य्यसे बहुत हर्षित न होवे और शुभ कर्म्मोंमें सदा तत्पर रहे। कौन राजा अनुरक्त हैं, कौनसे भयके कारण अनुगत हैं और कौन निर्दोष हैं, इसे सदा विचारता रहे। राजा बलवान होकर भी निर्ब्बलका कभी तनिक विश्वास न करे, क्योंकि वे लोग असावधानीरूपी अवसर पानेसे गिद्धकी भांति आ गिरते हैं। स्वामी प्रियवादी और सब गुणोंसे युक्त होने पर भी पापी सेवक उसका अपकार किया करते हैं, इससे वैसे मनुष्योंका कभी विश्वास न करे। नहुष पुत्र ययातिने इसी भांति राजोपनिषत् अर्थात् राजाओंकी रहस्य विद्या कही है; इससे जो इस रहस्य विद्याके अनुसार मनुष्य राज्यमें नियुक्त होते हैं, वेही महान् शत्रुओंका नाश कर सकते हैं।

९३ अध्याय समाप्त।

बामदेव बोले, हे नरनाथ! राजा बिना युद्ध किये ही विजय प्राप्त करे, युद्धसे जो विजय होती है, पण्डित लोग उसे निन्दित कहा करते हैं। मूल अत्यन्त दृढ़ न रहने पर राजा अप्राप्त वस्तुओंके वास्ते कभी इच्छा न करे; क्योंकि

निर्व्वल मूलवाले राजाको अप्राप्त-वस्तुका लाभ नहीं विहित होता। जिसका जनपद उन्नत सम्पत्ति युक्त, राजप्रिय, सन्तुष्ट और मन्त्रियोंसे सम्पन्न है, उस पृथ्वीपतिका ही दृढ़मूल कहके जानना चाहिये। जिसकी सब सेना सन्तुष्ट, सान्त्वित दूसरेकी वंचनामें निष्ठावान है, वह राजा ही थोड़ी सेनाके जरिये पृथ्वी जय कर सकता है। जिसके पुरवासी और जनपद वासी प्रजा दयालु, बलवान और धान्यवान है उस राजाको ही दृढ़मूल कहके जानना चाहिये। हे राजन्! मेधावी राजा जब अपने प्रतापका समय सबसे अधिक समझे, तभी परभूमि और परधनकी लालसा करें; क्योंकि भोगोंमें उदयमान, सब प्राणियोंमें दयावान, शीघ्रता करनेवाले और आत्मरक्षामें समर्थ राजाका ही विषय बढ़ित हुआ करता है। जो विद्यमान आत्मीय पुरुषोंके विषयमें सब भांतिसे मिथ्या आचरण करता है, वह परशुसे काटे हुए बनकी तरह आप ही नष्ट होता है। जो राजा आत्महिंसक नहीं है, शत्रु लोग भी उससे द्वेष नहीं करते, क्योंकि जो पुरुष क्रोधका नाश कर सकते हैं, कोई भी उनका द्वेषी नहीं होता। आर्य्य पुरुष जिन कर्म्मोंमें विद्वेष प्रकाश करें, विद्वान राजा उस कर्म्मको कभी भी न करे; और उन लोगोंके कल्याणदायक बचनको न टाले, जो राजा सब कर्त्तव्य कर्म्मोंको सिद्ध करके अन्तमें सुख अनुभव करनेकी अभिलाषा करता है, वैसे राजाकी दूसरा कोई भी अवज्ञा नहीं कर सकता। जो राजा मनुष्य राज्यमें इसी भांति व्यवहार करता है, वह दोनों लोकोंको जय करके विजय-धर्ममें प्रतिष्ठित होता है।

भीष्म बोले, राजा वसुमनाने महर्षि वामदेवका ऐसा बचन सुनके उसके अनुसार ही सब कार्य्योंका अनुष्ठान किया था; तुम भी वैसा कर नेसे अवश्यही दोनों लोकोंकी जय कर सकोगे।

९४ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, यदि कोई क्षत्रिय युद्धमें दूसरे क्षत्रियको जीतनेकी इच्छा करे, तो वह विजय-विषयमें कैसा धर्म्म आचरण करे? यही मैं आपसे पूछता हूं; आप मुझसे यह वृत्तान्त विशेष करके कहिये।

भीष्म बोले, राजा सहाययुक्त वा बिन सहायकके ही अकस्मात दूसरेके राज्यमें आगमन करके प्रजा समूहसे ऐसा बचन कहे, कि मैं तुम लोगोंकी सर्व्वदा रक्षा करूंगा; इससे तुम लोग मुझे धर्म्मपूर्व्वक कर प्रदान करो, और मुझे राजा कहके मानो। ऐसा बचन सुनके यदि प्रजा समूह उस समागत राजाको राज्यमें बरण करे तो ऐसा होनेसे उन लोगोंका कुशल होता है। परन्तु, हे नरनाथ! यदि वे लोग अक्षत्रिय होकर राजाके विषयमें किसी प्रकार विरुद्धाचरण करें तो ऐसा होने पर उन विकर्म्मस्थ प्रजा समूहको सब भांतिके उपायसे शासन करना उचित है। अपर अर्थात् हीन क्षत्रिय भी दूसरोंमें उत्तम जांचनेके वास्ते श्रेष्ठ क्षत्रियको आत्मत्राणमें असमर्थ और शस्त्रहीन देखके शस्त्र ग्रहण किया करते हैं; इससे राजा निज शस्त्रबलसे विजित गावोंको आक्रमण करके उनके स्वामी होकर सुख पूर्व्वक निवास करे।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! यदि कोई क्षत्रिय राजा युद्धके वास्ते दूसरे क्षत्रियके निकट उपस्थित होवे तो वह क्षत्रिय राजाके साथ किस प्रकार युद्ध करे। वह मुझसे कहिये।

भीष्म बोले, युद्धमें असावधान क्षत्रिय कवच रहित क्षत्रियके साथ युद्ध करे; क्यों कि एक पुरुष एक एकके साथ युद्ध करनेसे क्रमसे असमर्थ होके युद्ध परित्याग किया करता है। यदि राजा सावधान होके आगमन करे, तो सावधान होना चाहिये और यदि वह सेनाके सहित आगमन करे, तो सेना-युक्त होके उसे आवाहन करे। और यदि राजा शठताके सहित युद्ध करें; तो शठता पूर्व्वक ही उसके साथ युद्ध करे

और धर्म्मयुद्ध करनेपर धर्म्मयुद्धके जरिये ही उसे निवारण करे। घुड़सवार होके रथीके निकट न जावे; रथपर चढ़के ही रथीके समीप जावे और व्यसनसे आर्त्त, डरे हुए और पराजित पुरुषोंके ऊपर प्रहार न करे। विषमें बुझे हुए बाण असत् पुरुषोंके ही आयुध हुआ करते हैं; कर्णी, उन लोगोंका अस्त्र नहीं होता; इससे यथार्थ युद्ध करे, जिघांसू पुरुषके ऊपर क्रोध न करे। प्राणहीन, अनपत्य, जिसका शस्त्र टूट गया हो, विपद्‌ग्रस्त और वाहन रहित पुरुषोंके ऊपर अस्त्र न चलावे, बल्कि यदि वे अपने गृह वा अपने राज्यमें उपस्थित हों तो उनकी चिकित्सा करावे। साधुओंके बीच यदि कोई साधु पुरुष भेदके कारण व्यसनमें फंसा हो, तो उसे चत न करके मुक्त करना होगा; यही राजाओंका सनातनधर्म्म है। इसही कारण स्वयम्भूपुत्र मनुने कहा है, कि साधुओंके साथ धर्म्मयुद्ध करना ही कर्त्तव्य है। साधुओंको सनातन धर्म्म अवलम्बन करना ही उचित है; कभी भी उसे नष्ट न करना चाहिये। जो धर्म्मसङ्कर चत्रिय अधर्म्म आचरणसे जय लाभ करते हैं, वह शठजीवी, पापी राजा स्वयं नष्ट हुआ करते हैं; दुष्ट लोग ही ऐसा कर्म्म करते हैं; परन्तु साधु पुरुष उत्तम व्यवहारोंसे ही साधुओंको जय किया करते हैं; क्यों कि धर्म्मपूर्व्वक मरनेसे भी वह कल्याणकारी होता है; परन्तु पाप कर्म्मके जरिये जय होनेपर भी वह कल्याणकारी नहीं होता। हे राजन्! अधर्म्म आचरण करना उचित नहीं है; क्यों कि वह वज्र गिरनेकी भांति उसही समय फल प्रदान करता है, परन्तु वह फल शाखा और मूल पर्य्यन्त सब भस्म करके लोगोंके हस्तगत होता है। पापी पुरुष पाप कर्म्मोंसे अर्थ प्राप्त करके अत्यन्त तृप्त होता है और उससे वर्द्धित होकर उस पाप कर्म्ममें ही आसक्त रहता है। जो पापी पवित्र पुरुषोंको उपहास करते हुए धर्म्मकी अविद्यमानता बोध करता है, वह धर्म्म विषयमें श्रद्धाहीन मनुष्य विनष्ट हुआ करता है; और स्वयं वरुण पाशमें बन्धके अपनेको अमरकी भांति समझता है; वायुसे परिपूरित बड़े चमड़ेकी भांति सत्कर्म्मसे निवृत्त रहता है; और अन्तमें नदीके किनारे रहनेवाले वृक्षकी भांति जड़ सहित नष्ट होता है, अनन्तर उस पापीके मरनेपर लोग उसे पत्थरसे फूटे हुए घड़ेकी भांति अभिनन्दन किया करते हैं, इससे राजा धर्म्मके जरिये विजय और कोष प्राप्त करनेकी अभिलाषा करे।

९५ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, राजा अधर्म्मके अनुसार जयकी इच्छा न करे, क्यों कि कोई भूपति भी अधर्म्मके अनुसार विजय लाभ करनेमें सम्मत नहीं हैं। हे भरत-श्रेष्ठ! अधर्म्मयुक्त विजय अनित्य है; उससे स्वर्ग प्राप्त नहीं होता; बल्कि वैसी विजय पृथ्वी और भूपति दोनोंको ही नष्ट किया करती है। इससे जो पुरुष युद्धमें कवचरहित होकर हाथ जोड़के 'मैं आपकी शरणमें हूं' ऐसा वचन कहके शस्त्र परित्याग करे राजा वैसे मनुष्यका वध न करे। जो पुरुष बलसे जीता जावे, राजा उसके साथ युद्ध न करके एकवर्ष पर्य्यन्त "मैं आपका दास हुआ" उसे ऐसी ही शिक्षा दे। सम्वत् बीतनेसे उस भांति शिक्षित होनेपर पुत्रके समान उसका पालन करना होगा। जो कन्या बलपूर्व्वक हरण की जावे; राजा उससे कहे कि तुम मुझे वा दूसरेको वरण करोगी? सम्वत् भरके बीच ऐसा ही पूछे। अनन्तर यदि वह कन्या दूसरेकी अभिलाषिनी हो, तो उसे परित्याग करना होगा; और ऐसे ही छलसे दास दासी आदि जो कुछ धन हरके लाया गया होवे, उसे भी फिर लौटाना होगा। वध्य अर्थात् तस्कर आदि दुष्टोंका ज

धन हरण किया जाता है, वह स्थायी नहीं होता; इससे उसे व्यय करना चाहिये और उनकी सब गौयें ब्राह्मणोंको दूध पीनेके वास्ते दी जावें, बैल बोझा ढोनेके वास्ते नियुक्त होवें; परन्तु वे लोग यदि शरणागत हों, तो उनके विषयमें क्षमा करनी होगी। राजा राजाके साथ ही युद्ध करे, उससे धर्म्म होता है; इससे दूसरे क्षत्रिय पुरुष राजाके सम्मुख होकर कभी शस्त्र न चलावें। दोनों ओरकी सेना इकट्ठी होनेपर यदि ब्राह्मण उसके मध्यवर्त्ती हो, तो उस समय दोनों ओरकी सेना शान्ति अवलम्बन करके युद्धसे निवृत्त होवें। जो ब्राह्मणको उल्लङ्घन करते हैं, वे सदा मर्य्यादा भेद किया करते हैं। अधिक कहांतक कहें, जो लोग इस मर्य्यादाको अतिक्रम करते हैं, वेही अधम क्षत्रियोंमें गिने जाते हैं। जो क्षत्रियधर्म्मको लुप्त और मर्य्यादाको भेद करना है, वह पुरुष क्षत्रियसभामें अग्राह्य होता तथा क्षत्रियोंके बीच नहीं गिना जाता। विजयकी इच्छा करनेवाला राजा कभी उस वृत्तिका अनुवर्त्ती न होवे; क्यों कि धर्म्मसे प्राप्त हुई विजयसे बढ़के क्या कोई अधिक लाभ होसक्ता है। सहसा-नीचस्वभाववाले प्राणियोंको शीघ्र शान्तवाद और भोगदानसे प्रसन्न करना ही राजाओंकी परम नीति है; क्यों कि वे सब कठोर वचन कहके बलपूर्व्वक वशमें किये जानेपर अत्यन्त ही दुखित होके राजाके सब व्यसनोंकी परीक्षा करते हुए अपने राष्ट्रसे भागकर सब भांतिसे शत्रुओंकी उपासना किया करते हैं। हे राजन्! वे लोग असन्तुष्ट होनेपर सब प्रकारसे राजाके व्यसनके अभिलाषी होकर आपदकालमें राजाके शत्रुओंकी अनुकूलता करते हैं; इससे राजा किसी प्रकार भी शत्रुओंको छलसे न ठगे तथा उन्हें अत्यन्त क्रुद्ध न करे। क्यों कि वे लोग चाहे कितने ही उत्पन्न क्यों होवें; उससे उनका जीवन नष्ट नहीं होता; इस ही कारण राजा थोड़ेमें ही सन्तुष्ट होकर पवित्र जीवनका ही अत्यन्त मान करे। जिसका जनपद उन्नत, सम्पत्तियुक्त, राजप्रिय और सन्तुष्ट सेवक तथा मन्त्रीयुक्त होता है, वह राजा ही दृढ़मूल हुआ करता है। जो ऋत्विक, पुरोहित, आचार्य्य और दूसरे पूजनीय श्रुतिसम्मत ब्राह्मणोंकी पूजा तथा उचित सम्मान किया करते हैं, वे जगत्में लोकवित कहके विख्यात होते हैं। महाराज! सुरपति इन्द्रने ऐसे ही व्यवहारोंसे पृथ्वीमण्डल प्राप्त किया है; इससे राजा लोग इन्हीं व्यवहारोंके अनुसार इन्द्रके विषयको जय करनेकी इच्छा करते हैं। हे राजन्! राजा प्रतर्द्दनने महायुद्धमें प्रजा समूहके भूमिके अतिरिक्त समस्त धन तथा अन्न और ओषधियोंको भी हरण किया था; और राजा दिवोदासने अग्निहोत्रके अग्निसे बची हुई हवि तथा भोजनीय सिद्धान्न हरण किया था, उस ही कारण वे लोग निन्दित हुए। हे भारत! राजा नाभागने श्रोतियार्थ और तापसार्थके अतिरिक्त दूसरे स्थानोंका सराजक राज्य दान किया था। हे युधिष्ठिर! धर्म्म जाननेवाले प्राचीन राजाओंमें जो सब उत्तम व्यवहार विद्यमान थे, वे सब मेरे अभिलषित हुए हैं। राजा दूसरी सब भांतिकी विद्याके जरिये विजयकी इच्छा करे; परन्तु माया और दम्भके जरिये अपने ऐश्वर्य्यकी अभिलाषा न करे।

९६ अध्याय समाप्त।

युधिधिष्ठिर बोले, हे नरनाथ! क्षत्रधर्म्मसे बढ़के पापयुक्त धर्म्म दूसरा नहीं है; क्यों कि राजा युद्धमें पराजित होकर स्वयं भागते हुए सेनामें स्थित निर्दोषी महाजन वैश्योंको कालके ग्रासमें डालते हैं। हे विद्वन्! इससे राजा किन कर्म्मोंसे सब लोकोंको जय करे? इसे मैं जाननेकी इच्छा करता हूं; इसे आप मुझसे विस्तार पूर्व्वक कहिये।

भीष्म बोले, राजा लोग पापियोंके निग्रह, साधुओंके संग्रह, यज्ञ और दानसे ही पवित्र हुआ करते हैं। जो राजा विजयकी इच्छासे प्राणियोंको पीड़ित करते हैं; वे ही फिर विजय प्राप्त करके प्रजा समूहको वर्द्धित किया करते हैं। वे दान; यज्ञ और तपोबलसे बुराइयोंको दूर करते और प्राणियोंके ऊपर कृपा करते हैं; इस ही कारण उनका पुण्य विशेष रूपसे वर्द्धित हुआ करता है। जैसे खेतको परिष्कार करनेवाला कृषक खेतको साफ करनेके वास्ते तृण और धान्य दोनोंको काटता है, उससे धान्य नष्ट नहीं होता ; बल्कि उससे खेत सब भांतिसे साफ होनेसे फिर उसमें धान्यकी अत्यन्त वृद्धि होती है। इसी भांति जो राजा तस्कर आदि वध्य पुरुषोंका बध करते हैं ; उन तस्करोंके नष्ट होनेसे उनके प्रजाकी बार बार वृद्धि हुआ करती है। जब डाकू लोग प्रजाके धनको हरते और प्राण बध करते हुए उन्हें अनेक प्रकारके क्लेश देते हैं, उस समयमें जो राजा डाकुओंके दलसे उन प्रजापुञ्जको रक्षा करता है ; वैसा राजा ही प्रजा समूहका धनदाता और सुखदाता होके विराजमान होता है। अनन्तर वह अभय दक्षिणा-युक्त यज्ञकरके इस लोकमें अनेक भांतिके सुखको भोगता हुआ इन्द्र लोकके समान स्थानको प्राप्त करता है। शत्रु लोग ब्राह्मण बधके वास्ते उद्यत हुए हों, तो उस समय जो राजा युद्ध यज्ञमें गमन करके यूपस्वरूप निज शरीरको त्यागता है, वह अनन्त दक्षिणायुक्त यज्ञ रूपसे वर्णित होता है। और वह युद्धमें भयरहित होके शत्रुओंके ऊपर बाण चलावे, तो देवता लोग उससे बढ़के पृथ्वी पर कुछ भी कल्याण नहीं देखते। युद्ध-भूमिमें जितने बाण उसके देहके चमड़ेको बेधते हैं, उतने ही परिमाणसे वह सर्व्वकाम-प्रद और अक्षय लोकोंको इच्छानुसार भोगता रहता है ; और युद्धमें उसके शरीरसे जो रुधिर बाहर होता है, उस रुधिर बहनेसे वह दुःखके जरिये सब पापोंसे मुक्त होता है। धर्म्म जाननेवाले पुरुष ऐसा कहा करते हैं, कि जो क्षत्रिय बाणोंकी चोटसे पीड़ित होकर जिन दुःखोंको सहते हैं, उस ही दुःख भोगके जरिये उनको महत् तपस्या हुआ करती है। जैसे प्राणी बादलोंसे जलकी इच्छा करते हैं, वैसे ही भयशील सब धर्म्मात्मा पुरुष भी युद्धमें शूर पुरुषोंके पीछे रहके निज शरीर रक्षाकी अभिलाषा करते हैं। यदि शूर पुरुष क्षेमकालकी भांति भयके समय पिछाड़ी स्थित उन भयभीत मनुष्योंकी रक्षा करके उन लोगोंको किसी प्रकार युद्धकी ओर नहीं होने देते, तो ऐसा होनेसे उन लोगोंका वह पुण्य विद्यमान रहता है। हे राजन् ! युद्धमें समान बलवाले पुरुषोंमें भी महत् अन्तर देखा जाता है, क्यों कि समस्त सेनाके इकट्ठी होनेपर जो पुरुष प्रचण्ड हो जाता है, उसके सम्मुख कोई भी गमन करनेमें समर्थ नहीं होता। उस भयङ्कर युद्धमें शूर पुरुष ही स्वर्ग प्राप्तिके मार्गको अवलम्बन कर शत्रुओंके सम्मुख होकर निज शरीर त्याग करतेहैं; परन्तु भीरु मनुष्य उस समय सहायको त्यागके भाग जाते हैं। यदि भीरु मनुष्य युद्धमें शूर पुरुषोंसे रक्षित होके उन्हें नमस्कार करें, तो उनका न्याय कार्य्य करना सिद्ध होता है ; नहीं तो उन लोगोंको वह भय विद्यमान रहता है। हे तात ! जो लोग सहायकोंको त्यागके अपने मङ्गलकी अभिलाष करके घरकी ओर भाग जाते हैं, तुम वैसे अधम पुरुषोंका संग्रह मत करो। जो सहायोंको परित्याग करके निज प्राण रक्षाकी अभिलाष करते हैं, इन्द्र आदि देवतालोग उसका कल्याण नहीं करते। इससे शूरवीर क्षत्रिय पुरुष वैसे मनुष्योंको काष्ठ वा ढेलोंसे नष्ट करें अथवा कटाग्निसे जला देवें ; वा पशु मारनेकी भांति मार डालें। शूरवीर क्षत्रियोंको क्लेद और मूत्र परि

त्याग कर रोदन करते हुए शय्यापर मरनेसे उन्हें अधर्म होता है। जो क्षत्रिय घाव रहित शरीरसे मृत्युको प्राप्त होता है, शास्त्र जाननेवाले पण्डित लोग उसके वैसे कार्य्यको प्रशंसा नहीं करते। हे तात! इससे क्षत्रियोंको घरमें मरना श्रेष्ठ नहीं है; क्यों कि शूरताभिमानी पुरुषोंका शूरत्व नष्ट होनेपर वह अत्यन्त अधर्म युक्त और निन्दनीय हुआ करता है। और मुझे यह दुःख हुआ है, मैं बहुत कष्ट पाता हूं, तथा मैं पापी हूं,—ऐसा वचन लोगोंके समीप प्रकाशित करते हुए मुख अन्धकार मलिन और कीर्त्तिरहित होकर पुत्र, सेवक आदिमें शोचनीय हुआ करता है। शूरता रहित क्षत्रिय ही रोगसे पीड़ित होके आरोग्यताकी इच्छा करता है, और आरोग्य न होनेपर बार बार मृत्युकी अभिलाष किया करता है। परन्तु बलसे युक्त शूरताभिमानी वीर क्षत्रिय ऐसी मृत्युकी इच्छा नहीं करते, बल्कि वे लोग स्वजनोंसे घिरकर युद्धमें संग्राम करके शाणित शस्त्रोंसे घायल होके मृत्युलाभ किया करते हैं, शूर पुरुष काम क्रोधसे युक्त होकर अत्यन्त युद्ध करते हुए शत्रुओंके बाणोंसे शरीर घायल होनेपर भी उसे पीड़ा नहीं समझते। वे शूर क्षत्रिय युद्धमें निज धर्म्मसे प्राप्त अनेक लोकोंसे पूजित उत्तम मृत्युलाभ करके शत्रुओंको सलोकताको पाते हैं। जो शूर पुरुष प्राणकी आशा छोड़के सब तरहके उपायके सहित युद्धमें सम्मुख स्थित होके पीठ नहीं दिखाते अर्थात् भागते नहीं; वे इन्द्रलोकमें बास करते हैं। और जो शूरवीर क्षत्रिय शत्रुओंमें घिरकर दीन भावसे युक्त नहीं होते, वे अक्षय लोक प्राप्त करते हैं।

९७ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! संग्राममें पीठ न दिखाके युद्ध करनेवाले शूर क्षत्रिय रणभूमिमें मरके किन लोकोंमें गमन करते हैं, वह मुझसे विशेष करके कहिये।

भीष्म बोले, हे युधिष्ठिर! ऐसे स्थलमें पण्डित लोग अम्बरीष और इन्द्रके सम्वाद युक्त प्राचीन इतिहासको दृष्टान्त रूपसे वर्णन किया करते हैं।

नाभागपुत्र उदार बुद्धिवाले अम्बरीष अत्यन्त दुर्लभ स्वर्ग लोकमें जाके देवलोकमें सब तेजोमय विमानोंपर स्थित शत्रु-सचिवोंके ऊपरसे जानेवाले अपने सेनापति सुदेवकी समृद्धि देखकर अत्यन्त विस्मित होके इन्द्रसे बोले, हे सुरनाथ! मैं समुद्रके सहित सब पृथ्वीको यथारीति शासित करके धर्म्मकी अभिलाषासे शास्त्र विधिके अनुसार चातुर्व्वर्ण्यधर्म्ममें प्रवृत्त हुआ हूं कठिन ब्रह्मचर्य्य और गुरु सेवासे धर्म्मपूर्व्वक सब वेद शास्त्रोंको पढ़ा है; खाने पीनेकी वस्तुसे अतिथियों स्वधा-मन्त्रोंसे पितरों, निज शाखामें वर्णित वेदाध्ययन और दीक्षासे ऋषियों और सब भांतिके उत्तम यज्ञोंसे देवताओंको सन्तुष्ट किया है, और क्षत्रधर्म्ममें स्थित होके यथा रीति शास्त्रको ओर दृष्टि करके शत्रुओंको सेनाका जय किया है। हे देवराज! यह शान्तात्मा सुदेव पहिले मेरे सेनापति थे; इन्होंने मुख्य दक्षिणा युक्त यज्ञोंको करके ब्राह्मणोंको प्रसन्न नहीं किया था; तब इन्होंने किस प्रकार मुझे अतिक्रम किया?

इन्द्र बोले हे तात! पहिले इस सुदेवने बहुतसे बड़े बड़े संग्राम यज्ञका विस्तार किया था; अब भी जो क्षत्रिय युद्ध करते हैं, उनका भी यह युद्ध यज्ञ विस्तृत हुआ करता है। ऐसा निश्चय है, कि जो सब योद्धा सेनाके मुखमें प्राप्त होकर सावधान और दीक्षित होते हैं, वे युद्धयज्ञके अधिकारी हुआ करते हैं।

अम्बरीष बोले, हे इन्द्र! युद्धयज्ञमें हवि क्या है घृत और दक्षिणा क्या है? और ऋत्विक किसको कहते हैं, वह मुझसे कहिये।

इन्द्र बोले, उस यज्ञमें हाथी ही सब ऋत्विक घोड़े अध्वर्यु, दूसरेका मांस ही हवि और रुधिर घृतरूपसे वर्णित हुआ है । सियार गिद्ध ही काकोल और बाण ही इस यज्ञके सदस्य हैं ; वेही यज्ञमें घृतशेष और हवि भोजन किया करते हैं । जलते हुए तेजधारवाले उत्तम पानी चढ़े हुए चोखे प्रास, तोमर, तलवार, शक्ति और फरसे येही सब यज्ञ करनेवालेके स्रुवा हैं । वेगपूर्व्वक धनुषसे खींचे हुए दूसरेके शरीरका वेधनेवाले तीक्ष्ण बाण ही ऋजु, उत्तम पानी चढ़े हुए चोखे और बड़े बाण ही उसके स्रुवा है, बाघके चमड़ेसे युक्त मियान और हाथी दांतके मूंठसे बने हुए हाथियोंके शरीरको विदारनेवाले खड्ग ही इस युद्ध-यज्ञमें रेखा खींचनेवाले खड्गाकार काष्ट है । शस्त्र छूटनेके समय अत्यन्त चोखे जलते और उत्तम पानी चढ़े हुए प्रास शक्ति ऋष्टि और फरसोंका शब्द ही उस यज्ञको संख्या और युद्धके जरिये विस्तीर्ण पुरुषोंसे उत्पन्न हुई बहुत सी वस्तु अर्थात् युद्धकी हवि हुआ करती है । संग्राम करते समय शस्त्रोंके लगनेपर शरीरसे पृथ्वीपर जो रुधिर गिरता है, वह होमकार्य्यमें उस यज्ञ करनेवालेको सर्व्वकामप्रद ; समृद्धियुक्त पूर्णाहुति हुआ करती है । काटो ! बंधन करो,— ऐसे जो सब शब्द सेनाके बीच सुनाई देते है, यज्ञके सामगान करनेवाले यमलोकमें उसे सामरूपसे गाया करते हैं । उस यज्ञमें शत्रुओंके सेना मुख हवि स्थापन करनेके पात्र और हाथी घोड़े आदि श्येनाचित् नाम अग्नि कहके वर्णित होते हैं । उस युद्धयज्ञमें सहस्र सेनाके मरनेपर जो सब कबन्ध उठते हैं वेही कबन्ध यज्ञ करनेवाले शूरके खदिरसे बने हुए आठ कोनेसे युक्त यूप रूपसे कहे जाते हैं । हे राजन् ! हाथियोंके समूहको अङ्कुश देनेपर जो शब्द होता है, वही उस यज्ञके इड़ोपहूत मन्त्र और वषट्‌कार रूपी होता है तलवाण और नगाड़ेके शब्द ही उस यज्ञमें त्रिसामा नाम उद्गाता हुआ करते हैं । हे राजन् युद्धमें ब्रह्मस्व हरण होनेपर जो क्षत्रिय प्रिय शरीरकी रक्षाकी आशा त्यागके निज देहको यूप रूपसे छोड़ते हैं ; वह अत्यन्त दक्षिणावाले युक्त यज्ञ रूपसे विराजमान होते हैं । जो शूर स्वामीके हितके वास्ते सेनाके सम्मुख पराक्रम प्रकाशित करके भयके कारण युद्धसे निवृत्त नहीं होते, वे मेरे स्थानके समान स्थानमें वास किया करते है । जिसकी वेदी अर्थात् युद्ध यज्ञकी भूमि काले चमड़ोंसे युक्त तलवार और परिघ समान भुजाओंसे परिपूरित होती है, वे मेरे तुल्य स्थानमें निवास करते हैं जिसके संग्राममें लोहू नदीके प्रवाहस्वरूप, भेरी मेढ़क और कछुवे, वीरोंकी हड्डियां कङ्कड़ समान मांसयुक्त रुधिर ही कीचड़, तलवार और चमड़े प्लव, केश सिवार, कटे हुए रथ, हाथी और घोड़े पुल, पताकाध्वजा बतसवृक्ष समान मरे हुए हाथी ग्राह, रुधिर ही जल, मरे हुए कुञ्जर महाग्राह, ऋष्टि और तलवार महानौका, गृद्ध, कङ्क, प्लवस्वरूप और वह नदी पार जानेवाले पुरुषोंसे दुःखसे तरने योग्य हैं, राक्षस समूहोंसे युक्त और भीरुओंको पापसागरमें बहाने वाली है । वह नदी उस संग्राम यज्ञका अवभृत-स्थान हुआ करता है । जिसके युद्धयज्ञमें भूमि शत्रुओंके सिर घोड़े और हाथियोंके गर्दनोंसे परिपूरित होता है, वह मेरे तुल्य स्थानमें निवास किया करते हैं । पण्डित लोग ऐसा कहा करते हैं, कि जिसके शत्रुसेनामुख पत्नीशाला, निज सेना मुख हवि स्थापनका पात्र, दक्षिण ओर स्थित सब योद्धा सदस्य और उत्तर ओर स्थित योद्धा लोग आग्नीध ऋत्विक होते हैं, उस शत्रुसेनारूपी भार्य्यासे युक्त यज्ञ करनेवाले पुरुषके वास्ते इन्द्रलोक आदि सब लोक निकटमें ही विद्यमान रहते हैं । व्यूहबद्ध दोनों सेनाके सम्मुखवर्त्ती शून्य प्रदेश ही युद्ध यज्ञ करनेवालेकी

वेदी होती है; उसमें यजमान ऋक्, यजु और साम इन तीनों वेदोंको अग्निरूप कल्पना करके नित्ययज्ञके जरिये यज्ञ किया करते हैं। परन्तु जो शूर शत्रुओंसे पीड़ित हो भयके कारण भागता है, वह शूर पुरुष प्रतिष्ठारहित होकर नरकमें गमन करता है। जिनकी वेदी रुधिरके वेगसे युक्त और केश, मांस तथा हड्डियोंसे परिपूरित होती है, वे लोग परम गतिको प्राप्त होते हैं। जो शूर पुरुष शत्रुके सेनापतिका बध करते उसकी सवारीपर चढ़ते हैं, बृहस्पतिके समान बुद्धिमान और विष्णुके समान पराक्रमशाली वे शूर पुरुष सबके स्वामी हुआ करते हैं। जो युद्धमें सेनापति वा उसके पुत्रको सामान्य जीवकी भांति ग्रहण करके वहांपर सत्कार युक्त होते हैं; वे मेरे तुल्य स्थानमें निवास किया करते हैं। शूर पुरुषोंके युद्धमें मरनेपर उनके वास्ते कभी शोक न करे; क्यों कि युद्धमें मरनेपर शूर पुरुष अशोचनीय होकर स्वर्गलोकमें सम्मानके पात्र हुआ करते हैं। युद्धमें मरे हुए पुरुषोंके वास्ते पिण्डदान, जलदान और अशौचकी विधि नहीं है; इससे कोई उनके वास्ते इन सब कर्म्मोंको करनेकी इच्छा न करे; युद्धमें मरनेपर पुरुष जिन लोकोंको प्राप्त करते हैं, वह मुझसे सुनो। जो पुरुष युद्धमें मरते हैं, सबसे उत्तम अप्सराओंकी एक हजार कन्या "ये हमारे पति होंगे।" ऐसा कहती हुई उनकी ओर शीघ्रताके सहित दौड़ती हैं। जो शूर युद्ध कर्म्मको सिद्ध करते हैं, उनके वास्ते वही तपस्या, पुण्य, सनातन धर्म्म और चारों आश्रमरूपी हुआ करता है। जो पुरुष संग्रामके समय मुखमें तृण, धारण, करके "मैं आपका हुआ," ऐसा वचन कहे, उसे और बूढ़े बालक स्त्री तथा पीछे रहनेवाले मनुष्योंका बध न करे। मैं जम्भ, वृत्त, बल, पाक, शतमाय, विरोचन, दुर्व्वार्य्य, नमुचि, नैकमाय, शम्बर, दैतेय, विप्रचित्ति, सब दनुपुत्रों और प्रह्लादको युद्धमें मारके देवताओंका स्वामी हुआ हूं।—भीष्म बोले, योद्धा अम्बरीषने इन्द्रका ऐसा वचन सुनकर उसे ग्रहण करके निज सिद्धि लाभ की थी।

९८ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, हे युधिष्ठिर! राजा प्रतर्द्दन और मिथिलापति जनक इन दोनोंने जिस कारणसे युद्ध किया था, शूर पुरुषोंके उत्साह विषयमें पण्डित लोग उस प्राचीन इतिहासको दृष्टान्तरूपसे वर्णन किया करते हैं। हे राजन्! संग्रामयज्ञमें दीक्षित मिथिलापति जनकने निज योद्धाओंको स्वर्ग और नरक दिखाते हुए उन लोगोंसे कहा था, हे योद्धा लोगो! तुम लोग युद्धमें भय रहित शूरपुरुषोंके इस प्रकाशमान लोकको देखो; यह स्थान गन्धर्व्वोंकी कन्याओंसे; घिरा हुआ सब कर्म्म सिद्ध करनेवाला और अक्षय है। और युद्धसे भागनेवाले पुरुषोंके वास्ते यह नरक उपस्थित है; इसमें पतित होनेपर सदा अयश हुआ करता है, इससे तुम लोग संन्यास बुद्धि अवलम्बन करके शत्रुओंको जीतो; अप्रतिष्ठित नरकके वशवर्त्ती न बनो। हे शत्रुओंके जीतनेवाले! योद्धाओंने राजा जनकका ऐसा वचन सुनके युद्धमें उन्हें हर्षित, करके शत्रुओंको जीता था। इससे ऊंचे चित्तवाले शूरवीर मनुष्योंको युद्धमें सदा अगाड़ी स्थित रहना अवश्य उचित है। गजसेनाके बीच रथी, रथियोंके बीच घुड़सवार और घुड़सवारोंके बीच पैदल सेना स्थापित करनी उचित है। युधिष्ठिर! जो राजा इस प्रकार व्यूह बनाते हैं, वे शत्रुओंको सदा जय किया करते हैं। अत्यन्त ऊंचे चित्तवाले शूर पुरुष समुद्रको क्षोभित करनेवाले मकर घड़ियालकी भांति अच्छी प्रकार युद्ध करते हुए शत्रुसेनाको क्षोभित करके स्वर्ग गति लाभ करते हैं। विपद्ग्रस्त योद्धाओंको इकट्ठे कर यथा रीति

स्थापित करके उन्हें हर्षित करे, जितभूमिकी रक्षा करे, और जो लोग लौटनेके भयसे युद्धसे भागें, अपनी सेनासे उन लोगोंका बहुत पीड़ा न करे। हे राजन्! जीनेकी आशा त्यागके लौटे हुए शूर पुरुषोंका वेग अत्यन्त असह्य होता है, इससे उन लोगोंका बहुत पीड़ा करना उचित नहीं। शूर पुरुष अत्यन्त भागनेवाले पुरुषोंके ऊपर शस्त्र चलानेकी इच्छा नहीं करते; इससे अपनी सेनासे उन लोगोंका बहुत पीड़ा न करे अचर चरके, बिन दांतवालोंके, जल प्यासे लोगोंके और कादर पुरुष शूर पुरुषोंके अन्न हुआ करते हैं। डरपोक पुरुष पीठ, उदर, हाथ और पांवसे समान होनेपर भी पराजित हुआ करते हैं; इससे भयसे आरत पुरुष पृथ्वीमें गिरके हाथ जोड़कर शूर पुरुषोंकी उपासना करें। शूर पुरुषोंकी भुजासे ये लोग सदा पत्रकी भांति रक्षित हुआ करते हैं, इससे सब अवस्थाओंमें ही शूर लोग सम्मान भाजन हुआ करते हैं। तीनों लोकोंके बीच पराक्रमसे श्रेष्ठ और कुछ भी नहीं है; क्योंकि शूर पुरुष सबको ही पालन किया करते हैं, और शूर पुरुषोंसे ही सब प्रतिष्ठित रहता है।

९९ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! विजयकी इच्छा करनेवाला अत्यन्त धर्म्म पीड़न करके भी भयभीत सेनाके सब पुरुषोंको राज भय दिखाके किस भांति रणभूमिकी ओर भेजे? यह मुझसे विस्तार पूर्व्वक कहिये।

भीष्म बोले, क्षत्रधर्म्म, सत्य, निश्चय, शिष्टाचार और राजभय प्रदर्शनजनित प्रवृत्त इन चार कारणोंसे युद्धधर्म्म स्थिर हुआ करता है। हे युधिष्ठिर! मैं तुमसे सदा फल देनेवाले उपाय धर्म्म सब फिर कहूंगा; डाकूलोग धर्म्म और अर्थके बाधक हुआ करते हैं, उनके नाश और सब कार्य्योंकी उत्तम सिद्धिके वास्ते इस समय मैं तुमसे शास्त्रोक्त उपाय कहता हूं, सुनो। हे भारत! राजा लोग सरल और कुटिल दोनों ही बुद्धि मालूम करें; परन्तु कुटिल बुद्धि मालूम करके उसका सेवन न करें, क्योंकि कुटिल बुद्धि आगत विषयोंका बाधक हुआ करती है। शत्रु लोग भेदके जरिये राजाके निकट उपस्थित होने पर जैसे राजा उन लोगोंको दण्ड देता है, वैसे ही उन दुष्टोंको भी दण्ड दे। हे पार्थ! हाथियोंके शरीरको ढांपनेके वास्ते गज, बैल और बकरेके चमड़े; शल्य, कांटे, लोह, तनत्राण, चवंर, पानी चढ़े और चोखे शस्त्र, पीतल और लोहेके कवच, अनेक रङ्गोंसे रङ्गी हुई ध्वजा पताका, तेजधारवाली ऋष्टि, तोमर, तलवार, फरसे और ढाल इन सब सामग्रियोंको युद्धके वास्ते संग्रह कर रखे। शस्त्रोंमें पर पानी चढ़ाना, और योद्धाओंको युद्धमें दृढ़ करना होगा, हे भारत! चैत और अगहनका महीना ही सेनाकी यात्राका उत्तम समय है; इससे जब पृथ्वी कीचड़ और शस्योंसे रहित तथा निर्म्मल हुआ करती है, और समय बहुत शीत तथा अत्यन्त उष्ण नहीं रहता तभी शत्रुओंको व्यसनमें फंसा देखके उनकी ओर सेना भेजे। क्योंकि शत्रुओंको निवारण करनेके विषयमें इसी भांति सेनाका नियोग ही उत्तम हुआ करता है। जल और तृणयुक्त समतल मार्ग ही सुगम होता है, इससे मार्गको जाननेवाले वनचारी दूतोंके जरिये उसे भलीभांति बारम्बार मालूम करे। मृगसमूहकी भांति जङ्गलके मार्गसे गमन करना कठिन है, इससे विजयकी इच्छा करनेवाले राजा लोग सेनाको पहिले कहे हुए मार्गसे भेजा करते हैं। उत्तम कुलमें उत्पन्न हुए सामर्थवान पुरुष सेनाके अगाड़ी रहें और टिकनेका स्थान जल दुर्गसे घिरा हुआ एक मार्गवाला होवे, ऐसा होनेसे समीप स्थित

शत्रु लोग किसी प्रकार भी उसे आक्रमण नहीं कर सकेंगे। जिस निवास स्थानके समीपवाली भूमिमें अवकाश रहे और उसके निकट वन हो, उस स्थानको ही राजा अधिक गुण युक्त समझें; इससे निज सेनाके निकटमें रहनेवाले वैसे स्थानमें अनेक गुणोंसे युक्त युद्ध जाननेवाले पुरुषोंका स्थापित करें। निज वनके समीप ऊपर कहे हुए पुरुषोंका स्थित होना पैदल सेनाका उतरना और संगोपन इन सब कार्य्योंके ही शत्रुओंको पराजित करनेके परम उपाय जानना चाहिये। इस ही रीतिके अनुसार योद्धा लोग सप्तर्षियोंको आगे करके पर्व्वतकी भांति अचल भावसे युद्ध करने पर दुर्जय शत्रुओंको जय करनेमें समर्थ होंगे।

हे युधिष्ठिर! जिस दिशामें वायु, सूर्य्य और शुक्र रहे, उस ही ओर युद्ध करनेसे जय होती है; परन्तु ये सब यदि एक ओर रहें, तो पूर्व्वापरके अनुसार श्रेष्ठ हुआ करते हैं। युद्ध जाननेवाले पुरुष कीचड़हीन जलरहित सम ढीठ अर्थात् पुल और प्रकार आदि सीमारहित तथा ढेलेसे रहित समतल भूमिकी प्रशंसा किया करते हैं। हे भारत! रणभूमि कीचड़ और गड़हेसे रहित तथा हाथी और योद्धाओंके वास्ते भूमि छोटे वर्चा महाकक्ष और जलसे युक्त होने पर प्रशंसनीय होती है। पैदल सेनाके निवासको जमीन बहुतेरे आंकलेसे घिरी हुई महाकक्षयुक्त, बास और बेतोंसे परिपूरित तथा पहाड़ और उपवनसे युक्त होनेसे प्रशंसनीय हुआ करती है। हे राजन्! वर्षारहित दिनोंमें अनेक पैदल, रथ और घोड़ोंसे युक्त सेना दृढ़ और प्रशंसनीय हुआ करती है; प्रावट् ऋतुमें अनेक हाथी और पैदलयुक्त सेना प्रशंसित होती है; इससे राजा ये भी सब गुण और देश कालका विचार करके सेना प्रयोग करें। जो राजा इसी भांति विचार करके तिथि और नक्षत्रमें शुभ आशीर्व्वादसे युक्त होकर पूरी रीतिसे सेना नियोग करता है, वह सदा जय लाभ किया करता है। मोक्षमार्ग अवलम्बन करनेवाले, भागने, चलने खाने, और पीनेवालों तथा सोते, प्यासे और विक्षिप्त पुरुषोंके ऊपर प्रहार न करे। जो अत्यन्त क्षिप्त, व्यतिक्षिप्त, निहत, प्रतनूकृत अविश्रुत, कृतारम्भ सुरङ्ग आदि गुप्त उपाय जाननेवाले, प्रतापित तथा आदि लानेके वास्ते बाहिर होनेवाले, निज गृह राजद्वार वा अमात्य द्वारके अनुवर्त्ती इत्यादि इन सबके स्वामी हैं, उनका वध न करे। जो दूसरेकी सेनाको भेदकर अपनी सेना स्थापित करते हैं, उन्हें अपने समान खाने पीनेकी वस्तु प्रदान करे और उनका दूना वेतन कर देवे। जो लोग दशके स्वामी हैं, उन्हें, एक सौके स्वामीकी सहस्राधिपति करके सावधानीके सहित उनकी रक्षा करे। मुख्य सेनाको इकट्ठे करके सब पुरुषोंसे कहना चाहिये, कि तुम लोग शपथ करके मेरे समीप यह स्वीकार करो, कि हम सब इकट्ठे होकर विजयके वास्ते युद्धमें प्रवृत्त होंगे, आपसमें कोई किसीको परित्याग करके न भागेंगे। जो युद्ध आरम्भ करके मुख्य योद्धाओंको शत्रुओंसे नष्ट करावें, और जो लोग डरपोक हों, वे इसी समय स्वयं निवृत्त होवें। जो लोग शपथ पूर्व्वक ऐसा कार्य्य स्वीकार करें, वे लोग युद्धमें सेनाके आने वा युद्ध बन्द होने पर अपनी ओरके मुख्य सैनिक पुरुषोंका वध न करें, बल्कि वे लोग अपनी तथा अपनी ओरकी सेनाके पुरुषोंकी रक्षा करके शत्रु पक्षीय सेनाका वध करें। और जो पुरुष संग्रामसे भागता है, उसका अर्थनाश वध और अकीर्त्ति होती है और वह लोगोंके निकट कठोर और निन्दित वचन सुना करता है; इस से हमारे शत्रु पक्षीय प्रतिध्वन्त दांत-ओष्ठसे युक्त शस्त्ररहित शत्रुओंके जरिये घिरे पुरुषोंको सदा अर्थनाश आदि होवे। जो सब पुरुष

युद्धमें भागते हैं, वे नीच मनुष्योंमें गिने जाते हैं, वरिक वैसे पुरुष समूहकी तुष्टि मात्रके वास्ते हैं, इस लोक और परलोकमें वे लोग सुखभागी नहीं होते। हे तात! विजई शत्रु लोगोंके हर्षयुक्त चित्त और प्रसंसा वादके सहित मण्डलाकार गतिसे भागनेवाले पुरुषोंकी ओर दौड़ने पर वह अत्यन्त ही असह्य होजाता है; ऐसा ही क्यों! युद्धमें शत्रुओंके जरिये जिसका यश नष्ट होता है, मैं मृत्युको भी उससे अधिक असह्य और दुःखदायक नहीं समझता इससे जयको ही धर्म्म और सब तरहके सुखका मूल जानना चाहिये, क्योंकि जय न होने पर शूर पुरुष भी कादरोंकी तरह परम ग्लानिसे युक्त होते हैं। 'मैं स्वर्गके कामनासे युद्धमें जीनेकी आशा त्यागके विजयी वा मरके महत् गति लाभ करूंगा'—ऐसी ही शपथ करके जो वीर पुरुष जीनेकी आशा त्याग कर युद्धमें शत्रु-सेनाका नाश करते हैं, वेही लोग भय-रहित कहके विख्यात हुआ करते हैं। हे राजन्! शत्रुओंके साथ युद्ध करनेके वास्ते ढाल तलवार ग्रहण करनेवाले पुरुष सेनाके आगे, शकट सेना पीछे और दुर्गस्थित सेना बीचमें रहे; और पुरमें रहनेवाली जो सब सेना पुरमें गमन करे, वह पदातियोंकी रक्षा करे। जो सब मनस्वी शूरवीर बलवान पुरुष आगे रहनेकी इच्छा करें, और वे सब पहिले पैदल सेनाको घेरके स्थित रहें। और यत्न पूर्व्वक डराङ्कोंके उत्साहको बढ़ाना होगा, क्योंकि वे सब उत्साहित होने पर दल बांधके समीपमें ही स्थित होंगे। सेनापति थोड़ी सेना इकट्ठी करके शत्रुओंके साथ युद्ध करावे और उसी इच्छानुसार अनेक भांतिसे विस्तारित करे, और बहुतोंके सहित थोड़ी सेनाको सूचीमुख होकर युद्ध करना उचित है; इससे वह भी करे। निकृष्ट सेना युद्धमें तत्पर होके जब बाहु युद्ध करती रहे, तब उसके उत्साहको बढ़ानेके वास्ते सत्य वा मिथ्या ही हो, हमारा शत्रु, बलरहित हुआ है, तुम लोग निर्भय होके प्रहार करो शत्रुओंके भागने पर ऐसा ही कहके हर्ष प्रकाश करे। बलवान पुरुष भयानक शब्द करते हुए शत्रुओंकी ओर दौड़ें; ताड़ी; तलत्राण गोशृङ्ग आदि शब्द किये जावें, और आगे चलनेवाले पुरुष लोग मृदङ्ग, भेरी और ढोल आदि बाजे बजावें।

१०० अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! कैसे रूप कैसे स्वभाव, किस प्रकारके आचार, कैसे कवच और किस भांतिके शस्त्रशाली शूर लोग युद्ध करनेमें समर्थ होते हैं?

भीष्म बोले, युद्धमें वीर पुरुष देशाचार और कुलाचारसे युक्त होके जैसे शस्त्र तथा वाहन आदि सब-सामग्रियोंका संग्रह करके युद्ध कार्य्यमें प्रवृत्त होते हैं, उसे सुनो। गान्धार, सिन्धु और सौवीर देशीय वीर लोग नखर और गाड़से युद्ध किया करते हैं, वे सब युद्ध करनेमें निडर और अत्यन्त बलवान हैं; तथा सब युद्धके जाननेवाले हैं। उशीनर देशीय शूर लोग सब शस्त्रोंके जाननेवाले और बलवान हैं। प्राग्देशीय योद्धा लोग हाथियोंके युद्धमें निपुण और कूटयोधी हैं। काम्बोज, यवन और मथुरा वासी शूर पुरुष प्राग्देशिय योद्धाओंकी भांति युद्ध किया करते हैं। दक्षिणी लोग तलवार और बाहु युद्धमें अत्यन्त निपुण हैं।

हे युधिष्ठिर! सभी स्थानोंमें इसी भांति महापराक्रमी महाबलवान पुरुष प्रायः उत्पन्न हुआ करते हैं; अब उनके यथोक्त लक्षण सुनो। वे सब ही प्राणियोंको पीड़ित करनेवाले, उनका बोलना, चलना और देखना सिंह और शार्दूलके समान, नेत्र कुलिङ्ग और पारावत पक्षीकी तरह होते हैं। स्वर हरिनके शब्द समान, आंख हाथी तथा ऋषभनेत्रके समान

होता है ; वे सब ही प्रमत्त, मूढ़, क्रोधी, क्रोधमुखी शरभकी भांति होते हैं ; किङ्किणी और बादलकी भांति शब्द करनेवाले दूरगामी तथा दूरपाती होते हैं । उनकी नाक चौड़ी जीभ नासिकाके अग्रभागको स्पर्श करनेवाली शरीर बिड़ालके समान ; कूजा, केश, त्वचा अत्यन्त सूक्ष्म और व्रान्त शीघ्रतायुक्त तथा चपल हुआ करती है । उनमेंसे कोई कोई गोधाकी भांति निमीलित, कोमल स्वभाव, तुरङ्गकी तरह गमन और शब्द करनेवाले तथा सब युद्धके जाननेवाले हुआ करते हैं । और उनमेंसे जो लोग सुसंहत उत्तम शरीरसे युक्त, सुन्दर दृढ़ अवयव और बड़ी छातीवाले हैं, वे प्रवादके समय कोपित और झगड़ेके समयमें हर्षित हुआ करते हैं । गम्भीर लोचन, कढे नेत्र, पिङ्गाच, भृकुटी मुख, नकुल नेत्र, युद्धमें शरीर त्यागनेवाले, कुटिल दृष्टि, पृथुललाटवाले, मांसरहित दाढ़ोंसे युक्त, वज्रकी तरह भुजा अङ्गुली चक्रसम्पन्न, कृश, शिराल और दुरासद होते हैं ; ये सब शूर लोग युद्ध उपस्थित होनेपर हाथीकी भांति मतवाले होकर वेगके सहित उसमें प्रवेश करते हैं । जिनके केशान्त प्रकाशमान और स्फुटित, पार्श्व स्थूल स्थूल, मुख दाढ़ोंयुक्त, सब हिस्से उन्नत ग्रीवास्थल पृथु, विकटरूप, स्थूल और पिण्डाकार, स्वभाव वासुदेव तथा गरुड़की भांति उद्धत, वर्त्तुलाकार सिर, मुख बिड़ालकी तरह बड़ा और स्वर कठोर होता है ; वे उग्र स्वभावयुक्त, मनस्वी, शब्दके अनुसार बाण चलानेवाले, अधार्म्मिक, गर्व्वित भयङ्कर, रौद्रदर्शन युद्धमें शरीर त्यागनेवाले युद्धसे न भागनेवाले अन्त्यज जातीय योद्धा लोग सदा सेनाके मुखस्थलमें स्थित हुआ करते हैं । हे युधिष्ठिर ! अधार्म्मिक भिन्न वृत्त पुरुष शान्त वचनसे वशमें नहीं होते ; बल्कि वे लोग शान्तवाक्यसे राजाके ऊपर अत्यन्त क्रोधित हुआ करते हैं ।

१०१ अध्याय समाप्त ।

युधिष्ठिर बोले, हे भरतश्रेष्ठ ! जय शील सेनाके कौन लक्षण श्रेष्ठ होते हैं उसे मैं जाननेकी इच्छा करता हूं ।

भीष्म बोले, हे भरतावतंस ! जयशील सेनाके जो सब लक्षण श्रेष्ठ हैं, उसे पूर्ण रीतिसे कहता हूं । हे राजन् ! दैवके प्रतिकूल तथा मनुष्योंके कालप्रेरित होनेपर विद्वान पुरुष ज्ञानमय दिव्य-नेत्रसे उसका अनुसन्धान विशेष रूपसे मालूम कर उसे निवारण करनेके वास्ते प्रायश्चित्त, जप और होम आदि मांगलिक कार्य्योंको करके उसकी शान्ति किया करते हैं । हे भारत ! जिस सेनामें वाहन और योद्धा लोग सदा उत्साहपूर्व्वक निवास करते हैं, उस सेनाकी निश्चय ही उत्तम विजय हुआ करती है ! जब वायु, इन्द्रधनुष, बादल और सूर्य्यकी किरण सेनाके अनुगामी होती हैं, तथा शियार और गिद्ध आदि अनुकूल होकर उसकी अर्चना करते हैं ; तभी वह उत्तम सिद्धि लाभ किया करती है । हे युधिष्ठिर ! अग्नि प्रसन्न किरण, ऊर्द्ध रश्मि, दक्षिणावर्त्त शिखासे युक्त और धूंए-सेरहित होने तथा आहुतिकी पुण्य गन्ध प्रकाशित होनेपर पण्डित लोग उसे भावी जयके लक्षण कहा करते हैं । गम्भीर शब्दवाले भेरी और शंख आदिके बजने तथा युयुत्सुओंके अनुकूल होनेसे ही पण्डित लोग उसे भावी जयका रूप कहते हैं । मृगोंके समूह युद्धस्थित पुरुषोंके पीछे, जो संग्रामके वास्ते गमन करें उनके बांई ओर ; तथा जिघांसु पुरुषके दाहिनी ओर रहनेसे ऊपर कहे हुए सब कार्य्य दृष्टसिद्धिसूचक होते हैं ; और अगाड़ी रहनेपर पहिले कहे हुए कार्य्योंमें प्रतिषेध किया करते हैं । शकुन, हंस, क्रौञ्च, सारस और स्वर्णचातक आदि पक्षियोंके मांगलिक शब्द करने और बलवान योद्धाओंके हर्षित होनेपर पण्डित लोग उसे भविष्य जयके लक्षण कहा करते हैं । जिसके सेनाका समूह शस्त्र, यन्त्र, कवच, पताका

और सूर्य्यमण्डलकी उज्ज्वल किरणसे प्रकाशित होकर शत्रुओंको भयानक दीखता है, वही शत्रुओंको पराजित कर सकते हैं। शूर पुरुषोंके स्वामीसेवामें रत, अभिमान रहित, आपसमें सुहृदभावयुक्त और पवित्र आचार वाले होनेपर पण्डित लोग उसे भावी जयका लक्षण कहा करते हैं। मनको प्रसन्न करनेवाले शब्द, स्पर्श और गन्ध प्रवाहित होने और योद्धाओंके धैर्य्यशाली होनेपर बुद्धिमान पुरुष उसे विजयका रूप कहा करते हैं। कौआ संग्राममे प्रविष्ट हुए पुरुषके बाईं ओर तथा जो युद्धमें प्रवेश करेंगे, उनको दाहिनो ओर रहनेसे इष्ट साधन करता है; और पीछे रहनेपर अर्थबाधा तथा अगाड़ी रहनेपर प्रतिषेध करता है। हे युधिष्ठिर! पहिले महत् चतुरङ्गिनी सेना संग्रह करके उसे सामके जरिये स्थापित करे और तिसके अनन्तर युद्धमें नियुक्त करे। हे भारत! रणभूमिमें युद्ध करते करते यदृच्छा क्रमसे वा दैवी संयोगसे जो जय होती है, वह अधम जय कहके गिनी जाती है। भागती हुई बड़ी सेना जलके वेग और डरे हुए महामृगोंकी भांति दुःखसे निवारित होती है। उरु-जङ्घा समान उदार सारयुक्त भागती हुई बड़ी सेना विदुषी होनेपर भी रणभङ्ग किया करती है; विद्या रहनसे जो रणभङ्ग नहीं करती, ऐसा कोई कारण निर्द्दिष्ट नहीं है। आपसमें परिचित, हर्ष युक्त, प्राण त्यागनेवाले, सुनिश्चित, पंचास शूर पुरुष युद्धमें बहुतसी शत्रुसेनाको नाश करनेमें समर्थ होते हैं। यहांतक कि युद्धमें कृतनिश्चय, सत्कुलमें उत्पन्न हुए सम्मानित पांच छः, वा सात शूर पुरुष ही युद्ध करनेपर अनायास ही बहुत सी शत्रुसेना जय कर सकते हैं। दूसरी भांतिके उपायसे किसी प्रकार युद्धकी अभिलाष न करे, क्यों कि साम, भेद और दान इन सबके अनन्तर युद्ध विहित हुआ करता है, जैसे "प्रज्वलित वज्रसे बिजली कभी गिरेगी"—इसी भयसे कादर पुरुष बाध्य होते हैं; वैसे ही सेनाके बीच भय दिखाके कादरोंको बाधित करे। शत्रुसेनाको युद्धके वास्ते आती जानके जो लोग उसकी ओर गमन करते हैं, उन सब योद्धाओंका शरीर खिन्न हुआ करता है। हे राजन्! स्थाणु और जङ्गमके सहित विषय अर्थात् सब देश अनेक भांति अस्त्र तापसे व्यथित होता है और अस्त्रतापसे तापित देहधारियोंकी मज्जा अवसन्न होजाती है। जो लोग शत्रुओंसे पीड़ित होकर उनके साथ सब भांतिसे सन्धि करते हैं; उनके साथ कठोरता मिले हुए सामभावका बार बार प्रणय करना उचित है। अनन्तर शत्रुओंमें भेद करानेके वास्ते दूत भेजे; शत्रुओंके बीच जो प्रधान होवे, उसहीके साथ राजा सन्धि करे। यदि ऐसा न हो, तो जिसमें शत्रुके साथ सब भांतिसे प्रतिकूलता होवे, उसी भांत शत्रुओंको पीड़ित करना असाध्य होजाता है। हे पार्थ! क्षमा साधुओंके समीपमें ही सदा समागत होती है, दुष्टोंके निकट कभी समागत नहीं होती; इससे क्षमा और अक्षमा दोनोंके प्रयोजनको मालूम करो। जो राजा जयलाभ करके क्षमा अवलम्बन करता है उसका यश विशेषरूपसे बढ़ता है और शत्रु लोग महा अपराध रहनेपर भी उसका विश्वास किया करते हैं। दैत्यवर शम्बरने ऐसा मत स्थिर किया है, कि पहिले शत्रुको दुःखित करके फिर क्षमा करनीही उत्तम कार्य्य है; क्यों कि टेढ़ी बांस आदि लकड़ियोंको न जलाके सरल करनेसे वे सब फिर सीधी हुआ करती हैं। हे युधिष्ठिर! आचार्य्य लोग इस शम्बर मत और साधु निदर्शनकी प्रशंसा नहीं करते; परन्तु वे लोग ऐसा कहते हैं कि क्रोध वा नाश न करके शत्रुओंको निज पुत्रके समान पालन करना उचित है। हे राजन्! राजाके प्रचण्ड होनेपर सब प्राणी उससे द्वेष करते हैं और कोमल होने पर भी

सब कोई उसकी अवज्ञा किया करते हैं इससे राजा उग्रता और मृदुता दोनोंका ही आचरण किया करे।

हे भारत! शत्रुओंके ऊपर प्रहार करनेके पहिले और प्रहारके समय प्रिय वचन कहे, तथा प्रहार करके रोदन और शोक प्रकाश करके उन पर कृपा करे। और घायल तथा प्रहार करनेवाले पुरुषोंका गुप्त रीतिसे सम्मान करके यह वचन कहे, कि मेरी सेनाने युद्धमें शूर पुरुषोंको मार कर मेरा अत्यन्त ही अनिष्ट किया है, मैंने बार बार उन लोगोंसे कहा है, उन्होंने मेरे वचनकी रक्षा न की। ओहो! युद्धमें पीछे न हटनेवाले उत्तम पुरुष अत्यन्त दुर्लभ हैं, मैं उनके जीवनकी अभिलाष करता हूं, ऐसा वध अत्यन्त अयोग्य हुआ है। जिन्होंने युद्धमें इन शूरवीरोंको मारा है, उन्होंने मेरे अनिष्टके अतिरिक्त इष्ट नहीं किया है, ऐसा वचन कहके गुप्त रीतिसे प्रहर्त्ता पुरुषोंको सम्मानित करे। और पुरुषोंको संग्रह करनेकी इच्छावाले पराक्रमी राजा मेरे और प्रहर्त्ता पुरुषोंके वास्ते ऐसा ही करके अपराधी पुरुषोंकी दोनों भुजा ग्रहण करके उनके ऊपर आक्रोश प्रकाश करे। निर्भय धर्मात्मा राजा इसी प्रकार सब अवस्थामें ही शान्तना युक्त कार्य्य करनेसे सब प्राणियोंके प्यारे होते हैं। वे इच्छानुसार भोग कर सकते और सब कोई उनका विश्वास किया करते हैं। इससे जो राजा पृथ्वी भोग करनेके अभिलाषी होवें वे कपटरहित होके सबको ही विश्वासित करें और सब तरहसे प्रजाकी रक्षा करें।

१०२ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, पितामह! प्रबलपक्षवाले शत्रुके कोमल वा कठोर होने पर राजा पहिले उसके साथ कैसा आचरण करे? वह मुझसे यथार्थ कहिये।

भीष्म बोले, हे युधिष्ठिर! ऐसे स्थलमें पण्डित लोग इन्द्र और बृहस्पतिके सम्वादयुक्त प्राचीन इतिहास वर्णन किया करते हैं, उसे सुनो। शत्रुओंके नाश करनेवाले देवराज शचिपतिने बृहस्पतिको प्रणाम कर हाथ जोड़के उनसे पूंछा, हे ब्रह्मन्! मैं सावधान होके शत्रुओंके साथ किस प्रकार प्रवृत्त होऊंगा और उन लोगोंको जड़ सहित नष्ट न करके फिर किस उपायसे उन्हें दमन करूंगा? दोनों सेनाके इकट्ठी होकर संग्राम करने पर साधारणकी जय हुआ करती है, इससे मैं क्या करूं, जिससे लक्ष्मी लज्जित और सन्तापित होकर मुझे परित्याग न करे?

धर्म, अर्थ और काम इस त्रिवर्ग कुशल, प्रतिभाशाली राज-धर्मके जाननेवाले बृहस्पतिने सुरपतिसे कहा, हे देवराज! राजा कलहसे अहित पुरुषोंको दमन करनेकी अभिलाष न करे, क्यों कि बालक ही क्रोध और अक्षमाकी सेवा किया करते हैं। शत्रुवधकी इच्छा करनेवाला राजा शत्रुओंको सावधान न करे; क्रोध, भय और हर्षको निज शरीरमें छिपाते हुए उन लोगोंका विश्वास न करके विश्वस्तकी भांति उनके साथ व्यवहार करे, उन लोगोंसे सदा प्रियवचन कहे; उनके साथ कोई अप्रिय आचरण न करे, निष्फल वैरसे विरत होवे और मूर्खता परित्याग करे। हे इन्द्र! जैसे उपयुक्त मांस बेचनेवाला व्याधपक्षियोंकी तरह शब्द करते हुए विहङ्गोंको अपने वशमें करके उनका वध करता है, वैसे ही उपयुक्त राजा शत्रुओंको वशमें करके उन लोगोंका वध करे। हे वासव! राजा शत्रुओंको पराभव करके सदा सुखकी नींद न सोवे दुष्टात्मा शत्रु लोग उठी हुई सर्पाग्निकी भांति सदा ही जागते रहते हैं। जयका निश्चय न होनेपर युद्ध करना उचित नहीं है, इससे उन लोगोंका विश्वासपात्र और प्रिय होके

उन्हें वशीभूत करके अर्थ-साधनमें प्रवृत्त होवे। शत्रुओंके उपेक्षा वा अवज्ञा करनेपर भी मनसे पराजित न होकर महात्मा मन्त्र जाननेवाले मन्त्रियोंके सहित मन्त्रणा स्थिर करे। अनन्तर शत्रुओंके तनिक विचलित होनेपर ही उस समय उनके ऊपर प्रहार करे और आप्तकारी पुरुषोंके जरिये उनकी सेना तथा दण्ड दूषित करे। राजा शत्रु आदिके मध्य और अन्तको मालूम कर गुप्त भावसे मन ही मन विषम भाव धारण करके उन लोगोंका सब बल प्रमाणके अनुसार जानके भेद, दान अथवा औषधिके जरिये उन लोगोंको दूषित करे; परन्तु शत्रुओंके साथ कभी संसर्ग करनेकी अभिलाषा न करे। शत्रुओंको मारनेके वास्ते बहुत समय तक उपेक्षा करे, वे लोग जिस प्रकार विश्वास लाभ करें वैसे ही कार्य्योंको करते हुए बहुत समयकी आकांक्षा करके समय वितावे। सब शत्रुओंको नष्ट न करके उन लोगोंको विजय प्रदर्शित करे। हे देवेन्द्र! राजा शत्रुओंके ऊपर शल्य न चलावे और वाक्यवाणसे भी उन्हें घायल न करे; शत्रुवधकी इच्छा करनेवाले पुरुषोंके शत्रु नाशका समय बीतनेसे वह फिर नहीं प्राप्त होता; इससे समय उपस्थित होनेपर ही राजा शत्रुओंके ऊपर प्रहार करे, कभी समयको न बीतने देवे। जो समय समयकी अभिलाष करनेवाले पुरुषको अतिक्रम करता है, कर्म्म चिकीर्षु पुरुषके वास्ते फिर उस समयका मिलना अत्यन्त कठिन हो जाता है। असमयमें शत्रुके प्राप्त होनेपर राजा साधुसम्मत सामर्थ संग्रह करके उसे शिक्षित करे, परन्तु उन लोगोंको यानेसे स्वकार्य्य साधन वा उन्हें पीड़ित न करे। योग्य राजा काम क्रोध और अभिमान त्यागके वारवार शत्रुओंके छिद्रका अनुसन्धान करे। हे देवताओंमें उत्तम शक्र! मृदुता दम्भ, आलस्य और प्रमाद ये चारों तथा सब माया सुन्दर रीतिसे विहित हुई हैं; वेही सब मूर्ख पुरुषोंको अवसन्न किया करती हैं। इससे राजा मृदुता आदि ऊपर कहे हुए चारों गुणोंको दमन करके तथा समस्त माया परित्याग करनेसे ही शत्रुओंके वध करनेमें समर्थ होते हैं। राजा अकेले जहांतक मन्त्रको गोपन करनेमें समर्थ होसके, वहां तक गोपन करे; क्योंकि मन्त्री लोग गुप्त मन्त्रोंको गोपन करते और आपसमें प्रकाश भी किया करते हैं। परन्तु अकेले विचार विषयमें एकवारगी असमर्थ होनेपर दूसरेके साथ मन्त्रणा करे। अनन्तर शत्रुओंके अदृष्ट अर्थात् दूर होनेपर उनके ऊपर ब्रह्मदण्ड अभिचार आदि प्रयोग करे; और निकटमें रहनेपर उनको और चतुरङ्गिनी सेना नियुक्त करे। राजा पहिले शत्रुओंके ऊपर भेद और साम दोनोंको ही प्रयोग करे; फिर युद्ध उपस्थित होनेपर उस शत्रुके ऊपर सेना नियोग करनेमें प्रवृत्त होवे राजा समयके अनुसार शत्रुके निकट प्रणत होवे; परन्तु शत्रुके प्रमत्त होनेपर राजा प्रमत्त होके उसके वधका अनुसन्धान करे। राजा प्रणिपात; दान और मीठे वचनसे शत्रुओंकी प्रसन्नता सिद्ध करे परन्तु कदापि उन्हें शङ्कित न करे। जो सब शत्रु शङ्कित हुए हैं, राजा वैसे शत्रुओंके स्थान पर न जावे, उनका कभी विश्वास न करे; क्योंकि वे लोग शङ्कायुक्त होके सदा ही सावधान रहते हैं। हे सुरपति! शङ्कित शत्रुओंके वास्ते कठिन कार्य्य कुछ भी नहीं है; ऐसा कहा गया है, कि विविधवृत्त मनुष्योंके ऐश्वर्य्य की भांति वे लोग योग अवलम्बन करके फिर मिलित होनेके वास्ते यत्न किया करते हैं। हे सुरोत्तम! इससे राजा मित्र और शत्रुके विषयमें विशेष करके विचार करे। हे सुरराज! राजाके मृदुस्वभाव होनेपर प्रजा उसकी अवज्ञा करती है और कठोर स्वभाव होनेपर उससे व्याकुल हुआ करती है; इससे तुम केवल

कोमल वा कठोर न होकर कठोर और कोमल दोनों भावको ही अवलम्बन करो। जैसे वेग-शाली जलके जरिये सब तरहसे परिपूरित तट सदा विदारण करनेसे उसमें बाधा होती है, वैसे ही राजाके प्रमत्त होनेपर उसके राज्यमें बाधा हुआ करती है। हे पुरन्दर! राजा साम, दान, दण्ड और भेद इन सब उपायोंको एक ही समय शत्रुके ऊपर प्रयोग न करे; परन्तु मेधावी राजा समस्त उपाय प्रयोग करनेमें समर्थ होनेपर भी उसे न करके बुद्धिमानोंके बीच जो पुरुष निपुण हों उनके ऊपर ही इन उपायों-मेंसे एक एकको बांटकर प्रयोग करे। जब हाथी, घोड़े और रथोंसे युक्त अनेक पदाति और यन्त्रोंसे परिपूरित षड़ाङ्गिनी सेना अनु-रक्त होवे, और जिस समय राजा शत्रुसे अपने बलको अनेक भांतिसे दृढ़ समझे, उस समय विचार न करके प्रकाश्य भावसे शत्रुओंके वध करनेमें प्रवृत्त होवे। शत्रुके ऊपर साम उपाय प्रयोग करना उत्तम नहीं है, इससे राजा उसे न करके शत्रुके विषयमें रहस्य दण्डक विधान करे; परन्तु कोमल दण्ड, युद्धके वास्ते यात्रा, शस्यनाश, विष आदिसे जल दूषित करना और बार बार प्रकृति विचार न करे। किन्तु उनके ऊपर अनेक तरहकी माया, उन्हें परस्पर उत्थापर आदि और जिससे अपनेको अपयश न हो, वैसो कपट उपाय करे; अनन्तर उन लोगोंको निज पुर वा राष्ट्रमें प्रविष्ट होनेपर आप्त पुरु षोंको उनके निकट रखे। हे बल-सूदन! राजा लोग शत्रुओंके अनुगामी होकर उन लोगोंके पुर और राज्यमें स्थित सब भोग्य वस्तुओंको जय करके निजपुरोंमें विधिपूर्व्वक नीति स्थापित करें। हे राजन्! राजा लाग इम लोगोंको गूढ़ धन प्रदान करके निज भोग्य वस्तुओंमें संकोच करते हुए मेरे सब सेवक दुष्ट हैं, ये लोग मुझे त्यागके दूसरे राजाके शरणागत हुए हैं,—लोगोंके समीप उन लोगोंके इसी प्रकार दोष वर्णन करके उन्हें पराये देश वा पर राज्यमें नियोजित करें। और दूसरे शास्त्रवित्, उत्तम रीतिसे सज्जित, शास्त्र विधानके जाननेवाले सुशोभित तथा भाष्य कथा विशारद सेवकोंके जरिये शत्रुपुरीके बीच मृत्युके अधिष्ठात्री देव-ताको स्थापित करें।

इन्द्र बोले, हे द्विजसत्तम! दुष्टका क्या चिन्ह है? दुष्टको किस प्रकार मालूम करे? इसे मैं पूंछता हूं, आप मुझसे विस्तार पूर्व्वक कहिये।

बृहस्पति बोले, जो पुरुष परोक्षमें लोगोंके दोष प्रकाशित करे, सद्गुणोंसे युक्त मनुष्योंको निन्दा करे और दूसरे किसीके गुणके वर्णन करनेपर पराङ्मुख होकर मौनभावसे स्थित होवे; उसे दुष्ट समझना चाहिये। यद्यपि दुष्ट पुरुषोंके मौनभावसे स्थित होनेपर उसके दुष्ट-ताका कारण नहीं मालूम होसकता, परन्तु उस समय वह पुरुष लम्बी सांस छोड़ता, ओठ काटता शिर कंपाता, और अत्यन्त संसर्ग करता असन्तुष्ट होकर वार्त्तालाप करता, परोक्षमें स्वीकृत कार्य्योंको पूरा नहीं करता और अप-रोक्ष होनेपर उस विषयका उल्लेख नहीं करता, स्वयं पृथक् आके भोजन आदि करता है और आज भाजनादि विधिपूर्व्वक नहीं हुआ कहके परोक्षमें उसकी निन्दा किया करता है, इससे असन, शयन और सवारी आदिसे दुष्टोंके अभि-प्रायको मालूम करना चाहिये। हे राजन्! जो पुरुष आर्त्त लोगोंके समीप आरत होता और प्रिय पुरुषोंके ऊपर प्रसन्न होता है, उसे ही मित्र जानना चाहिये; इसके विपरीत होनेपर शत्रुका लक्षण मलूम करे। हे त्रिदशनाथ! मैंने तुमसे इन सब लक्षणोंको जिस प्रकार कहा है, उसे विशेष करके मालूम करो; दुष्टोंका स्वभाव अत्यन्त बलवत्तर होता है। हे सुरसत्तम! मेरे कहे हुए इस दुष्टविज्ञानको सुनके शास्त्रके अनुसार इसके यथार्थ तत्वको मालूम करो।

भीष्म बोले, इन्द्रने बृहस्पतिका ऐसा वचन

सबके उसके अनुसार शत्रुओंके अनुसन्धानमें रत होके विजयके निमित्त वैसा ही आचरण करके शत्रुओंको वशमें किया था।

१०३ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! धर्म्मात्मा राजा सेवकोंसे प्रबाधित, कोष और दण्डसे च्युत तथा अर्थलोभमें असमर्थ होकर सुखका अभिलाषी होनेपर कैसा आचरण करे?

भीष्म बोले, हे युधिष्ठिर! ऐसे स्थलमें क्षेमदर्शी राजाके जिस इतिहासको वर्णन किया करते हैं, वह मैं तुमसे कहता हूं, सुनो। मैंने सुना है, पहिले राजपुत्र क्षेमदर्शी शत्रुके जरिये बलक्षीण होके तथा घोर आपदमें पडके कालक वृक्षीय मुनिके निकट आके उनसे पूछा था—राजा क्षेमदर्शी कालकवृक्षीय मुनिसे बोले, हे ब्रह्मन! मेरे समान अर्थभागी पुरुष अर्थ प्राप्तिके वास्ते बार बार यत्नवान होकर राज्य लाभ न कर सकनेपर कैसा आचरण करे? हे मुनिसत्तम! मेरे समान पुरुषोंका मरना, स्तैन्यपर भ्रंसय और क्षुद्र आचारके अतिरिक्त जो कर्त्तव्य है, उसे कहिये। आपके समान धर्म्मजाननेवाले कृतज्ञ पुरुष ही शारीरिक और मानसिक व्याधिसे युक्त मनुष्योंके आश्रय हुआ करते हैं। पुरुष विषय भोगसे विरक्त होकर शक्ति और प्रीति परित्याग करके बुद्धिमय वस्तु लाभ करके सुख भोगनेमें समर्थ होता है। जो लोग सुखको धनके आधीन समझते हैं, उनके वास्ते मैं शोक करता हूं; क्योंकि स्वप्नलब्ध धनकी भांति मेरा बहुतसा अर्थ नष्ट हुआ है। अहो! हम जब इस अविद्यमान धनकी आशा परित्याग नहीं कर सकते, तब जो लोग उपस्थित बहुतसे धनका परित्याग करते हैं, वे लोग कितने कठिन कार्य्यको करते हैं; हे ब्रह्मन! मैं श्रीभ्रष्ट होकर अत्यन्त ही आर्त्त, दीन और दुःखी अवस्थाको प्राप्त हुआ हूं; इस समय जिसमें सुख लाभ हो, मुझे वही उपदेश करिये।

महातेजस्वी कालकवृक्षीय मुनि बुद्धिमान कोशल्य क्षेमदर्शीका ऐसा वचन सुनकर बोले, हे राजन्! यद्यपि आप "मैं और मेरी जो कुछ वस्तु विद्यमान हैं, ये सब अनित्य हैं," इस प्रकार जानते हैं, तो पहिले ही आपको ऐसा समझना उचित था। आप जो समझते हैं, कि सब वस्तु विद्यमान हैं, वे सभी नहीं हैं, ऐसाही समझिये; क्योंकि बुद्धिमान पुरुष ऐसा समझनेसे अत्यन्त आपदायुक्त होनेपर भी दुःखित नहीं होते। जो होगया और जो होगा, वह सब फिर न होवेगा, इसी भांति आप जानने योग्य विषयोंको जानकर अधर्म्मसे मुक्त होंगे। पहिले पूर्व्व राजाओंको जो कुछ धन थे और उसके अनन्तर जो कुछ थे, तुम्हारा वह सब, कुछ भी नहीं है; इससे उन सब विषयोंसे ममतारहित होके शान्त हूजिये, कौन पुरुष, इसे जानके दुःखित होगा? जो हुआ है, वह फिर नहीं होता; जो नहीं हुआ है, वही हुआ करता है, शोकसे आरत पुरुषोंमें धन उपार्ज्जनकी सामर्थ नहीं रहती; इससे आप किसी प्रकारका शोक न कीजिये, महाराज! देखिये, तुम्हारे पिता और पितामह आज कहां हैं; आज आप उन लोगोंको नहीं देख सकते हैं और वे लोग भी आपको नहीं देखते हैं। आप अपने देहको अनित्यता देखकर उन लोगोंके वास्ते क्यों शोक करते हैं? बुद्धिसे यह विचारिये, कि कोई विषय भी नित्य न होगा। हे राजन्! मैं, आप और आपके सुहृद लोग, निश्चय ही हम कोई न रहेंगे, सब कोई मृत्युग्रासमें पड़ेंगे और सभी वस्तु नष्ट होंगी। जो सब मनुष्य बीस वा तीस वर्षके जीवित हैं, एक सौ वर्षके बीच उन सबको ही मरना होगा। यद्यपि पुरुष महत् वृत्तसे निकल नहीं

होता, तो ऐसा होनेपर मेरा नहीं है, यह मेरा नहीं है, यह समझके अपना दुःखसाधन करें। जो लोग अनागत और अतीत वस्तुओंको "मेरी नहीं है" ऐसा समझते और भाग्यको ही बलवान जानते हैं; पण्डित लोग उन्हें ही ममतारहित और साधुओंके समान जानते हैं। आपके समान आर्थ्य वा बुद्धि पौरुष युक्त बहुतेरे मनुष्य जीवित रहते और राज्य भी शासन किया करते हैं। परन्तु आपकी तरह वे लोग शोक नहीं करते; इससे आप भी शोक न कीजिये। आप क्या उन बुद्धि और पौरुष युक्त पुरुषोंसे श्रेष्ठ वा उनके समान नहीं हैं?

राजाने कहा, हे द्विज! यदृच्छानुसार जो सब वस्तु प्राप्त होती हैं, उसे ही मैं राज्य बोध किया करता हूं और वह सभी महाकालके जरिये नष्ट हुआ करती है। हे तपोधन! इससे मैं यथा प्राप्त धनसे जीविका निर्व्वाह करते हुए स्रोतकी भांति महाकालके जरिये ह्रियमान उस राज्यका यह फल देखता हूं, कि यदृच्छा प्राप्त राज्य आदिके नाश होनेपर जीवन नष्ट न होकर केवल शोक बढ़ता रहता है।

मुनि बोले, हे कौशल्य! जैसे मनुष्य अनागत और अतीत वस्तुके यथार्थ रूपको निश्चय करके सब विषयोंमें शोक नहीं करते, आप भी उस ही भांति होइये। हे राजन्! आप प्राप्त अर्थकी इच्छा करिये अप्राप्त अर्थकी कभी अभिलाषा न करिये और वर्त्तमान समयके विषयोंका अनुभव कीजिये तथा अनागत विषयके वास्ते शोक न करिये। हे कौशल्य! आप लब्ध धनसे ही सन्तुष्ट रहिये, श्री हीन होने पर शोकसे आर्त्त होकर कभी शुद्ध स्वभावसे विचलित न होइये। पुरुष पूर्व्वक कर्म्मके अनुसार भाग्यहीन बुद्धि होकर सदा विधाताकी निन्दा करते हैं, और यथा लब्ध धनसे सन्तुष्ट नहीं होते। और इस ही कारणसे दूसरे लोग वृद्ध आदि श्रीमान् पुरुषोंका सम्मान करके बारम्बार ऐसा ही दुःख अनुभव किया करते हैं। हे राजन्! इससे जैसे बलके अभिमानी मनुष्य ईर्षा और अभिमानके वशमें होकर दूसरेकी बुराई करनेमें प्रवृत्त होते हैं, आप मत्सरयुक्त होकर वैसा न करिये। यद्यपि आपमें वह श्री विद्यमान न रहे, तौभी आप दूसरेकी श्री सह्य कीजिये; कभी द्वेष न करिये, क्योंकि जो मनुष्य मत्सरी होकर लोगोंकी श्रीसे द्वेष करते हैं, लक्ष्मी उनके निकटसे भाग जाती है; और जो मनुष्य मत्सरता रहित होते हैं, वे शत्रुके निकट रहनेवाली लक्ष्मीको भी सदा भोग किया करते हैं। योग धर्म्म जाननेवाले धीर धर्म्मचारी मनुष्य श्री, पुत्र, और पौत्रोंको स्वयं परित्याग किया करते हैं। दूसरे साधारण पुरुष विधित्सा अर्थात् सब कार्य्योंके अनुपरम और धन, इन दोनोंके अस्थिर अर्थ तथा परम दुर्लभ समझके परित्याग करते हैं। परन्तु आप बुद्धिमान होके भी अकाम्य, पराधीन अस्थिर अर्थकी कामना करते हुए केवल कृपणकी तरह व्यर्थ शोकित होरहे हैं। इससे आप उस बुद्धिको जाननेके अभिलाषी होकर यह सब अर्थ परित्याग कीजिये; क्योंकि सब अनर्थ, रूपी होकर अर्थ रूपसे मालूम हो रहे हैं। हे राजन्! कितने ही लोगोंका अर्थके ही वास्ते धननाश होता है, कोई उसे अत्यन्त सुखदायक समझके सब भांतिसे श्रीलाभ करनेकी अभिलाष किया करते हैं। जो पुरुष श्रीमें रममान होकर दूसरा कुछ भी श्रेष्ठ नहीं समझता उस चेष्टमान पुरुषके सब कार्य्य ही नष्ट हो जाते हैं। हे कौशल्य! यदि किसी पुरुषके अभिप्रेय कृच्छ्रलब्ध धन नष्ट होवे, तो वह पुरुष आशा भङ्ग होनेपर उससे निवृत्त हुआ करता है। सत्कुलोंमें उत्पन्न हुए मनुष्य पारलौकिक सुखकी इच्छा करते हुए लौकिक कार्य्योंसे विरत होकर केवल धर्म्म कार्य्य किया करते हैं।

धन लोभसे युक्त पुरुष धनके वास्ते जीवन परित्याग करते हैं। ऐसा क्या वे लोग धनके अतिरिक्त जीवनको भी कार्य्यकारी नहीं समझते। वरन उनकी वैसी कृपणता और निर्बुद्धिता देखिये कि जो लोग मोहके वशमें होकर अनित्य जीवनमें अर्थ दृष्टि अवलम्बन किया करते हैं; उनके बीच कोई विनाशके अनन्तर सञ्चय मरणके अनन्तर जीवन और वियोगके बाद संयोग, इन सबसे चित्त नहीं लगाते। हे राजन्! कभी पुरुष धनको और कभी धन पुरुषको अवश्य परित्याग करता है; इससे जो लोग इस विषयको विशेष रूपसे जानते हैं, वे उस विषयमें कभी शोकित नहीं होते; क्यों कि इसी तरह दूसरेके भी मित्र और धन नष्ट हुआ करते हैं। हे राजन्! आप विचार करके देखिये, कि मनुष्य लोग अपनी और दूसरेकी बुद्धिसे आपदोंमें पतित होते हैं; इससे आप उसे विशेष रूपसे देखकर इन्द्रियनिरोध, मन और वचनको संयम कीजिये; क्यों कि अहितकारी इन्द्रिय, मन और वाक्य इन सबके दुर्बल और सन्निकृष्ट विषयोंमें आसक्त होनेपर कोई भी उन्हें निवारण करनेमें समर्थ नहीं होता, पर विषय सन्निकृष्ट होनेपर ये सब स्वयं निवारित हुआ करते हैं। आपके समान ज्ञानसे तृप्त पराक्रमी पुरुष इन्द्रियोंको दमन किया करते हैं, इससे वे लोग इस विषयमें शोक नहीं करते। इसके अतिरिक्त आपके समान मृदु, धार्मिक सुनिश्चित और ब्रह्मचर्य्य युक्त मनुष्य अल्प विषयकी अभिलाषासे चञ्चल नहीं होते और उसके वास्ते शोक भी नहीं करते; तथा वे लोग भ्रष्टाचार पूर्व्वक कापालीवृत्ति, नृशंसता पापी, दुष्ट और कादरोंके योग्य वृत्तिको अवलम्बन करनेमें प्रवृत्त नहीं होते। हे राजन्! इससे आप मन और वचनको संयम करके सब प्राणियोंमें दया प्रकाशित करते तथा महावनमें फल मूलसे जीविका निर्व्वाह करते हुए अकेले ही विहार कीजिये। जैसे ईषा समान दांत युक्त हाथी महावनमें अकेले ही विहार करता है, वैसे ही विद्वान पुरुष वनके बीच अरण्यवृत्ति अवलम्बन करके अकेले ही विहार करें। जैसे महातालाब पूर्णरीतिसे क्षुभित होकर स्वयं ही प्रसन्न होता है; मैं ऐसी अवस्थायुक्त पुरुषोंको इसी भांति जीवित रहना ही सुख समझता हूं। महाराज! मन्त्री आदिकोंसे रहित मनुष्योंको श्रीअसम्भव है और केवल दैवके ऊपर निर्भर करनेसे आप कौनसा कल्याण समझते हैं?

१०४ अध्याय समाप्त।

अनन्तर मुनि बोले, हे राजन! यदि आपके निज शरीरमें कुछ पौरुष है, ऐसा समझते हैं, तो जिससे आपको फिर राज्य प्राप्त होवे, मैं वैसी नीति कहता हूं; आप यदि उस नीतिको अनुष्ठान करने और कार्य्य करनेमें अपनेको समर्थ समझें; तो मैं आपसे जो सब यथार्थ वचन कहूंगा, उसे चित्त लगाके सुनिये। हे राजन्! मैं जो कहूंगा, आप यदि वैसा ही आचरण करें, तो आप निश्चय ही उस महान् सब अर्थ, राज्य, राज्यके मन्त्र और महती श्री फिर प्राप्त करेंगे, इससे मैं आपसे फिर कहता हूं, कि यह आपको रुचता है, वा नहीं वह मुझसे कहिये। राजाने कहा, हे भगवन्! मैं पौरुषसे युक्त हुआ हूं, आप मुझसे जिस नीतिको कहना चाहते हैं उसे कहिये, आपके साथ मेरा यह समागम सफल होवे।

मुनि बोले, आप दम्भ, क्रोध, काम, हर्ष और भय त्यागके प्रणत भावसे हाथ जोड़के शत्रुओंकी सेवा कीजिये। आप उस सत्यसन्ध मिथिलराजकी शुद्ध और उत्तम कर्म्मोंसे आराधना कीजिये, ऐसा होनेसे ही वे आपको वित्त दान करेंगे। इसी भांति क्रमसे सबके विश्वासपात्र होनेपर आप विदेहराजके बाहुस्वरूप

होंगे, अनन्तर उत्साहयुक्त, व्यसनरहित, शुद्ध स्वभाववाले सहायकोंको प्राप्त कर सकेंगे। नीतिशास्त्रके अनुसार चलनेवाले स्थिर चित्त जितेन्द्रिय विदेहराजकी प्रजाको प्रसन्न करके आप स्वयं अपना उद्धार कीजिये। श्रीमान् धैर्य-शाली उस विदेहराजसे आप सत्कृत होनेपर सबके विश्वासपात्र होकर अत्यन्त ही आदर योग्य होंगे। तिसके अनन्तर आप सुहृदल लाभ कर उत्तम मन्त्रियोंके साथ विचार करके बेलसे बेल तोड़नेकी भांति शत्रुपक्षीय आभ्यन्तरिक पुरुषोंके जरिये शत्रुओंमें भेद अथवा शत्रुओंके साथ सन्धि करके विदेह राजके सब बलको नष्ट कीजिये। शुद्धभाव युक्त मनुष्य, स्त्री, ओढ़नेके वस्त्र, शय्या, आसन, महामूल्यवान सवारी, गृह; पशु, पक्षी, गन्ध, रस और फल आदि जो सब वस्तु अलभ्य हैं, आप उन सबको इस प्रकार सञ्चित कराइये, कि जिससे सब शत्रु स्वय हो नष्ट होवें। हे राजन्! आप सुनीतिके अभि-लाषी हैं, शत्रु लोग यदि आपके जरिये इन सब विषयोंमें प्रतिषिद्ध होकर उसे उपेक्षा करें, तो आप कदापि उन लोगोंको निवृत्त न कीजिये। हे राजेन्द्र! आप बुद्धिमान पुरुषोंमें सम्मत होकर शत्रुओंके विषयमें विचार करिये और सदा सावधानी तथा भय-चकित आदि श्वेत-कारी उपायसे मित्र धर्म्मका आचरण कीजिये। आप ऐसे ही उपायके अनुसार विदेहराजके दुस्तर महान् आरम्भ सब प्रयोजित करिये और बलवान सेनाके जरिये नदीकी भांति सब विरोध विशेष रूपसे नष्ट करिये। और विदे-हराजके बगीचे, महामूल्य शय्या, आसन तथा कोष इन सबको सुखसे भोग करके उनका कोष खाली करिये। आप ब्राह्मणोंको विदेहराजके उद्देश्यसे यज्ञ और दान आदि कार्य्योंमें नियुक्त करके पीछे अपना मङ्गलार्थ कीजिये, ऐसा होनेसे ही वे लोग भेड़ियेकी तरह उन्हें भक्षण करते हुए आपका मङ्गल करेंगे। पुण्यशील पुरुष निश्चय ही परम गतिको प्राप्त होते हैं, ऐसा ही क्यों; वे लोग स्वर्गमें भी पुण्यस्थान लाभ किया करते हैं। हे कौशल्य! धर्म्म और अधर्म्मके जरिये शत्रुओंके कोषको नष्ट कर सके, तो वे लोग धर्म्म और अधर्म्म युक्त पुरुषके वशमें हुआ करते हैं। हे राजन्! शत्रु लोग स्वर्ग और जयके जरिये ही आनन्द अनुभव किया करते हैं; इससे आप उनके स्वर्ग और जयकी मूल कोषको विशेष करके नष्ट करें परन्तु मनुष्य-कर्म्म और दैव कर्म्म जय आदि उनके समीप वर्णन करना। दैव परायण मनुष्य शीघ्र नष्ट होता है, यह निश्चय ही है; इससे आप उनको सर्व्वस्व दान स्वरूप विश्वजित् यज्ञ कराके उन्हें राज्यसे विरत कीजिये, उससे वह सिद्धार्थ होकर गमन करेंगे। इससे आप उस विदे-हराजको याग धर्म्म जाननेवाले महाजनोंके पीड़ाका सब वृत्तान्त कहिये, और कुछ पुण्य उपदेश करिये। वह महाजनोंके किसी प्रकारकी पीड़ाका वृत्तान्त सुननेसे ही राज्य त्याग करेंगे तब आप सब शत्रुओंके नाश करनेवाले सिद्ध औषध प्रयोग करके उनके हाथी, घोड़े और मनुष्योंका नाश करियेगा। हे राजन्! इसी प्रकार तथा दूसरे अनेक तरहके दम्भ योग निश्चित है, कृतात्मा पुरुष विष प्रयोग करके सबको ही नाश करनेमें समर्थ हुआ करते हैं।

१०५ अध्याय समाप्त।

राजाने कहा, हे ब्रह्मन्! मैं कपट और दम्भके जरिये जीवित रहनेकी इच्छा नहीं करता और अधर्म्म युक्त महत् अर्थको भी अभिलाष नहीं करता। हे भगवन्! कपटता और दम्भ रखनेसे कोई मुझ पर शङ्का करेगा ऐसा समझ कर और उससे अपनी बुराई होनेकी सम्भावना देखकर मैंने पहिलेसे ही इसे परित्याग किया है। मैं इस लोकमें अनृ-

शंस धर्म्मके जरिये जीवित रहनेकी इच्छा करता हूं ; इससे मैं ऐसा आचरण नहीं कर सकूंगा, और आपसे भी ऐसा होना उपयुक्त नहीं है।

मुनि बोले, हे राजन् ! आपने जैसा कहा है, उससे मैं आपको प्रकृतिस्थ वा बुद्धिस्थ और अनृशंस धर्म्म युक्त बोध करता हूं । मैं आप-दोनोंके मङ्गलके वास्ते यत्न करूंगा और आपके साथ विदेहराजकी जिसमें सदाके वास्ते अक्षय सन्धि होवेगी, वही उपाय करूंगा । महाराज आपके समान सत्कुलमें उत्पन्न बहुश्रुत अनृशंस, राज्य प्रणयनमें कुशल पुरुषको पाके कौन राजा अमात्य पद पर नियुक्त न करेगा ? आप क्षत्रिय कुलमें जन्म ग्रहण करके राज्यच्युत और अत्यन्त विपदग्रस्त होकर भी जब अनृशंस वृत्तिसे जीविका निर्व्वाह करनेके अभिलाषी हुए हैं, तब मैं आपको धन्यवाद देता हूं । हे तात ! सत्यसन्ध विदेहराज मेरे गृहपर आवेंगे, मैं उन्हें जिस कार्य्यमें नियुक्त करूंगा, वह उसको ही करेंगे, इसमें सन्देह नहीं है । अनन्तर मुनिने विदेहराजको आवाहन करके कहा यह जो क्षेमदर्शी राजकुलमें उत्पन्न हुआ है, मैंने उसके अन्तःकरणको सब भांतिसे परीक्षा करके देखा है, इसका चित्त आरसी और शरदकालके चन्द्रमा समान शुद्ध है ; मैं इसके चित्तमें किसी प्रकारकी कुटिलता नहीं देखता हूं । इससे इसके साथ आपकी सन्धि होवे, आप जैसा मेरा विश्वास करते हैं, वैसे ही इसका भी विश्वास करिये । हे राजन् ! जिस राजाके अमात्य नहीं हैं, वे राज्यको तीन दिन भी अपने शासनमें नहीं रख सकते ; इससे राजा वीरता और बुद्धियुक्त मनुष्यको मन्त्री करें, दोनों पराक्रम और बुद्धिबल ही दोनों लोक तथा राजके प्रयोजन सिद्ध हुआ करते हैं । धर्म्मात्मा मनुष्योंकी इस प्रकार दूसरी गति कहीं भी नहीं है । यह राजपुत्र क्षेमदर्शी अत्यन्त धार्म्मिक हैं ; विशेष करके इन्होंने साधु-ओंके मार्गको अवलम्बन किया है इस धर्म्मात्मा राजपुत्रको आप संग्रह करके पूर्ण रीतिसे सेवा करनेसे यह आपके शत्रुओंका निग्रह करेगा । यदि ये पिता पितामह पदके वास्ते युद्धकी इच्छा करके आपके साथ क्षत्रियोंके स्वकार्य्य अर्थात् संग्राम करनेमें प्रवृत्त होंगे । तो आप भी विजयकी अभिलाषासे इनके सङ्ग युद्ध करियेगा ; परन्तु ऐसा न करके मेरी इच्छाके अनुसार हितैषी होकर इन्हें वशमें करिये । आप धर्म्मदर्शी होके अपने समान पुरुषोंसे अनुचित लोभको त्यागकर धर्म्मकी रक्षा करिये ; काम और क्रोधके वशमें होकर निज धर्म्मको त्यागना आपको उचित नहीं है । हे तात ! एक पुरुषकी सदा जय और एककी सदा पराजय नहीं होती ; जय-पराजय दोनों ही हुआ करती है ; इससे भोग्य वस्तुओंके जरिये शत्रुके साथ सन्धि करनी उचित है । हे तात ! जय-पराजय दोनों ही आपमें देखी जाती है । निःशेषकारियोंको निःशेष-निबन्धन रूपी भय हुआ करता है । विदेहराज जनक कालक वृक्षीय मुनिका ऐसा वचन सुनकर उस पूजनीय ब्राह्मणश्रेष्ठ मुनिका सम्मान और सत्कार करके बोले, हे ब्रह्मन् ! आप महाबुद्धिमान और महाश्रुत हैं ; इससे आपने हम दोनोंके मेलकी इच्छा करके जो कुछ कहा वह योग्य है । आपने मुझसे जैसा कहा, मैं वैसाही करूंगा, क्यों कि मैं इसे परम कल्याणदायक बोध करता हूं ; इस विषयमें अब मैं कुछ भी विचार न करूंगा । अनन्तर मिथिलापति जनकने कोशल्य क्षेमदर्शीको आवाहन करके कहा, हे राजसत्तम ! मैंने धर्म्म और नीतिसे पृथ्वी जय किया ; परन्तु आपने अपनी अवज्ञा करके निज गुणोंसे मुझे जय किया है ; इससे आप विजयीकी भांति विराजमान रहिये । यद्यपि मैंने आपको जय किया है, तौभी आपके बुद्धि और पौरुषकी अवज्ञा नहीं कर सकता ; इससे आप विजयीकी तरह

विद्यमान रहिये। हे राजन्! इस समय आप यथारीति पूजित होकर मेरे घर चलिये। अनन्तर मिथिलाराज जनक और कौशल्य दोनों ही ब्राह्मण श्रेष्ठ मुनिकी पूजा करके विश्वासी होकर घर गये। तब विदेहराजने कौशल्यको गृहमें प्रवेश कराके पाद्य, अर्घ और मधुपर्कसे उनकी पूजा करके उन्हें कन्या तथा विविध वस्तु दान की। राजाओंका यही परम धर्म है, जय और पराजयको अनित्य जानना चाहिये।

१०६ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे परन्तप! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रोंके धर्मवृत्त, साधारणके व्यवहार जीवन उपाय और फल, राजाओंके व्यवहार, कोष, कोषस्थापन, जय, सेवकोंके गुण, व्यवहार, प्रजाकी वृद्धि, षाड्गुण्यके गुण कल्पना, सेनाके व्यवहार, सत् और असत् पुरुषोंके लक्षणका ज्ञान, समान, हीन और अधिक कहे पुरुषोंके यथावत् लक्षण मन्त्र वित्त और पुरुषोंकी प्रसन्नताके वास्ते वर्द्धित मनुष्यको जिस भांति रहना होता है, हीन मनुष्योंका ग्रहण और जीविका, उपदेशयुक्त सुगम ग्रन्थोंसे जैसा धर्म वर्णित हुआ है, आपने विजयी पुरुषोंका जैसा व्यवहार कहा है, वह व्यवहार; शूर पुरुषोंकी वृत्ति, शूरलोग पृथक् न होके जिस प्रकार वर्द्धित होवें, वे लोग शत्रुओंके जीतनेकी अभिलाषा करके किस भांति सुहृद पुरुषोंको प्राप्त करें? हे शत्रुतापन! मैं बोध करता हूं, कि शूर पुरुषोंमें परस्पर भेद ही नाशका कारण है। इससे उन लोगोंमें जिससे भेद न होवे और अनेक पुरुषोंके निकट मन्त्रको छिपाना अत्यन्त कठिन है; वह जिस प्रकार गोपन करना होता है और इन सबके उपाय मैं आपके निकट सुननेकी इच्छा करता हूं। आप यह सब वृत्तान्त विस्तारके सहित मेरे समीप वर्णन कीजिये।

भीष्म बोले, हे भरतसत्तम! राजकुल और गण अर्थात् शूरकुल, ये दोनों ही कलह वैर-सन्दीपक लोभ और क्रोधके वशीभूत हैं। राजा लोभकी इच्छा करे, तो शूर लोग क्रोधकी अभिलाष करते हैं; इससे दोनों कुल क्षय और व्ययसे युक्त होकर परस्परमें एक दूसरेके नाशक हुआ करते हैं। वे लोग दूत, मन्त्र, बल, आदान, साम, दान, भेद, क्षय और भय आदि इन सब उपायोंके जरिये आपसमें परस्परका आकर्षण किया करते हैं। उसमेंसे एक मतके अनुसार चलनेवाले शूरोंमें आदानसे भेद होता है। वे लोग पृथक् होनेसे ही आपसमें चित्तकी अनैक्यताके कारण शत्रुओंके वशमें हुआ करते हैं। हे राजन्! जब शूरलोग मत-भेद होनेसे ही नष्ट और शत्रुओंसे पराजित होते हैं; उस समय उन लोगोंको सदा एक मतमें रहनेके वास्ते सब तरहसे यत्न करना उचित है। शूर पुरुषोंके बल और पौरुष एक होनेपर वे लोग अर्थलाभमें समर्थ हो सकते हैं। यहां तक कि उन लोगोंकी वृत्ति एक तरहकी होनेपर अन्य मतावलम्बी शूर पुरुष भी उनके साथ मित्रता करते हैं। जो शूर पुरुष परस्परकी सेवा करते हैं, ज्ञानवृद्ध पण्डित लोग उनकी प्रशंसा किया करते हैं; क्योंकि उन लोगोंकी अभिसन्धि पृथक् न होनेसे ही वे लोग सब भांतिसे सुख भोग कर सकते हैं। जो शूर लोग सब धर्म व्यवहार शास्त्रके अनुसार स्थापित करके उसपर यथावत् दृष्टि रखते हैं, वे समूहके बीच श्रेष्ठ होकर वर्द्धित हुआ करते हैं। शूर पुरुष पुत्र और भाइयोंको सदा युद्धकार्य्यमें विशेष रूपसे शिक्षा देके उन शिक्षित पुत्र और भाइयोंको ग्रहण करनेसे सब गुणोंमें वर्द्धित हुआ करते हैं। हे महाबाहो! जो सब शूर दूत, मन्त्र, उपाय

और क्रोधके कार्य्योंमें सदा रत रहते हैं, वह सब तरहसे बढ़ते हैं। हे राजन्! जो सब शूर बुद्धिमान, महा उत्साहयुक्त और कार्य्योंमें स्थिर पौरुषवाले, शूरोंको सदा सम्मानित करते हैं, उनकी बढ़ती हुआ करती है। जो सब शूर धनवान, शास्त्रज्ञ और शास्त्रपारग हैं, वे कष्ट-युक्त घोर आपदमें मोहित मनुष्योंका परित्राण किया करते हैं। हे भरतसत्तम! क्रोध, भय, दण्ड, कर्षण, निग्रह और वध, ये सब शूर पुरुषोंको सदा शत्रुओंके वशमें किया करते हैं। हे राजन्! इससे समूहमें मुख्य प्रधान शूरोंका विशेष सम्मान करना उचित है; क्यों कि समस्त लोकयात्रा ही पूर्ण रीतिसे उन शूर पुरुषोंके अधिकारमें हुआ करती है। हे शत्रु, कर्षण भारत! मुख्य शूर पुरुष ही दूत और मन्त्रकी रक्षा किया करते हैं इससे वेही मन्त्रणा सुनने पावें; परन्तु सब शूर पुरुष मन्त्रणा नहीं सुनने पावेंगे। जो समूहके बीच मुख्य हैं, वे सबके साथ मिलके गुप्त भावसे समूहका हित किया करते हैं; परन्तु गणके पृथक् भिन्न और विरत होनेपर उसका विपरीत होता है। यहांतक कि निज शक्तिके अनुष्ठानकारी गणोंमें भेद होनेसे सब अर्थ अवसन्न होते और अनर्थ उत्पन्न हुआ करता है। इससे कुलवृद्ध पण्डित लोग मुख्यगणके निकटसे निकृष्ट गणको शीघ्र दूर करें, वे लोग उपेक्षित होनेपर सदा कुलमें झगड़ा करते और गण-भेदके कारण होकर गोत्रनाश किया करते हैं। हे राजन्! इससे भीतरी भयकी यत्नपूर्व्वक रक्षा करके असार वाह्य भयको त्यागना उचित है; क्यों कि आभ्यन्तर भय ही सदा मूलच्छेदन किया करता है। हे राजन्! अकस्मात् क्रोध, मोह और स्वाभाविक लोभके कारण आपसमें एक दूसरेसे वार्त्तालाप न करनेसे उसे ही पराभवका लक्षण मालूम करना चाहिये। सब कोई पराक्रम, बुद्धि,-रूप वा धनमें समान होवे, वा न होवें, जाति और कुलमें समान होंगे। शत्रु लोग प्रधान भेद करनेसे ही गण भेद कर सकते हैं; इससे पण्डित लोग गण सम्पत्तिको परम आश्रय कहा करते हैं।

१०७ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे भारत! यह धर्म्म मार्ग बहुत बड़ा और अनेक शाखाओंसे युक्त है; इन सब धर्म्मके बीच कौन धर्म्म अत्यन्त अनुष्ठेय कहके आपका सम्मत है? सब धर्म्मके बीच कौन धर्म्म अनुष्ठेय और गुरुतर करके आपको अभिमत है? मैं इस लोक और परलोकमें जिस परम धर्म्मका आसरा करूंगा आप उसे वर्णन करिये।

भीष्म बोले, पिता, माता और गुरुजनोंको पूजा करना मुझे बहुमत है, मनुष्य इस लोकमें उक्त कर्म्मोंमें नियुक्त रहनेसे ही सब लोकोंको जय करते हुए महत् यशस्वी होते हैं। हे तात युधिष्ठिर! पूजनीय पिता, माता और गुरु जिस कर्म्मको करनेकी आज्ञा दें, वह धर्म्म ही हो, वा धर्म्म विरुद्ध हो होवे, शङ्का रहित चित्तसे उसे करना ही उचित है। उन लोगोंके निवारण करने पर दूसरे धर्म्मका आचरण न करे, वे लोग जो कुछ आज्ञा दें वही धर्म्म है, यह निश्चय जाने। पिता, माता और गुरु ये तीनों त्रिलोक स्वरूप हैं; ये ही तीनों आश्रम, तीनों वेद और तीनों अग्नि स्वरूप हैं; पिता गार्ह-पत्य, माता दक्षिण और गुरु आहवनीय अग्नि हैं, ये तीनों अग्नि अत्यन्त बृहत् हैं। पिता, माता, और गुरु इन तीनोंके निकट अप्रमत्त रहनेसे तीनों लोक जय करेगा, पितृपूजासे इस लोक, मातृपूजासे परलोक और गुरु पूजासे अवश्य ही ब्रह्मलोक उत्तीर्ण होगा।

हे भारत! तीनों लोकके बीच इन सबका पूर्णरीतिसे सम्मान करना। तुम्हारा मङ्गल

होगे, तुम महत् यश और धर्म्म फल प्राप्त करोगे। पिता, माता और गुरुके समीप भोग कार्य्य विषयमें अपनी अधिकता दिखाना, अति भोजन और दोष वर्णन न करे; सदा उन लोगोंकी सेवा करे, यही उत्तम सुकृत है। हे नृपसत्तम! ऐसा करनेसे तुम कीर्त्ति, पुण्य, यश और पवित्र लोकोंको प्राप्त करोगे। पिता माता और गुरुका जो लोग सम्मान करते हैं वे सब लोगोंमें आदरणीय होते हैं, और जो इनका अनादर करते हैं उनके सब कार्य्य ही निष्फल होते हैं। हे शत्रुतापन! उनके वास्ते यह लोक और परलोक कुछ भी नहीं है, ये तीनों गुरु जिसके जरिये सदा अपमानित होते इस लोक और परलोकमें उसका यश प्रकाशित नहीं होता तथा परलोकमें उसका कल्याण कीर्त्तित नहीं होता। पिता माता वा गुरुके उद्देश्यसे मैं जो सब अर्थ संग्रह करके परित्याग करूं, तो मेरे पक्षमें वह सौगुणा वा सहस्रगुणा हुआ करता है। हे युधिष्ठिर! इस ही कारण मेरे वास्ते तीनों लोक प्रकाशित हैं। दस श्रोत्रियोंसे एक साधु आचार्य्य मुख्य है; दश उपाध्यायसे पिता मुख्य है; दश पितासे माता मुख्य है, और क्या कहूं, माता गौरवसे समस्त पृथ्वीको अभिभव किया करती है, इससे माताके समान गुरु नहीं है। मेरे विचारमें पिता और मातासे गुरु ही गौरवयुक्त है; माता पिता दोनों ही जन्मके विषयमें कारण हैं? हे भारत! पिता माता दोनोंसे ही इस शरीरकी उत्पत्ति होती है; और आचार्य्यके उपदेशके अनुसार जो जन्म होता है, वह अजर और अमर है। पिता माता अपकार करनेपर भी सदा अवध्य हैं। अपराध युक्त पिता माताका वध न करनेसे दोषी नहीं होना पड़ता। राजा जैसे वध्य पुरुषोंके वध न करनेसे दूषित होता है, उस भांति अपराधी गुरुका वध न करनेसे दूषित नहीं होता। धर्म्मके वास्ते यतमान अर्थात् दुष्ट माता पिताके प्रतिपालनके निमित्त जो लोग यत्न करते हैं, महर्षि और देवता लोग उन्हें अनुग्रह भाजन समझते हैं। जो सत्य वचनसे वेदके विषयमें अनुग्रह प्रकाशित करते और जो सत्य वचनके जरिये अमृत प्रदान करते हैं उन्हें ही पिता माता समझना चाहिये; तथा उनके कार्य्यको मालूम करके कभी उनके विषयमें अनिष्ठ आचरण न करे। जो लोग विद्या पढ़के कृतकृत्य होकर गुरुके विषयमें कार्य्यके जरिये मनही मन उनका आदर नहीं करते, उन लोगोंको भ्रूणहत्यासे भी अधिक पाप हुआ करता है, इस लोकमें उनसे बढ़के अधिक पापी दूसरे कोई भी नहीं हैं।

गुरुजन शिष्योंको जैसा मानें, शिष्य लोग भी उनकी वैसी ही पूजा करें; इससे जो लोग प्राचीन धर्म्मको कामना करते हैं, उनके पक्षमें गुरुजन पूजनीय, यत्नसे संविभाज्य और अर्च्चनीय होते हैं। जिन कर्म्मोंसे पिताको प्रसन्न किया जा सकता है, उससे प्रजापति प्रसन्न होते हैं; और जिसके जरिये माताको प्रसन्न किया जा सकता है, उससे पृथ्वी पूजित होती है, तथा जिन कर्म्मोंसे उपाध्यायको प्रसन्न किया जासकता है, उससे ब्रह्म पूजित होता है, इससे पिता माताकी अपेक्षा गुरु ही पूजनीय है। किसी प्रकारके कार्य्यसे गुरु अवज्ञाभाजन नहीं होसकते; गुरुका जैसा मान्य करना होता है, पिता-माताका वैसा नहीं। पिता, माता और गुरु कभी अवमान भाजन नहीं होसकते; उन लोगोंके कार्य्यमें कोई दोष देखना उचित नहीं है। देवता और महर्षि लोग गुरुओंका जैसा सम्मान करना होता है, उसे जानते हैं। जो लोग कार्य्य वा मनसे पिता माताका अनिष्ट करते हैं, भ्रूणहत्यासे भी उनका पाप अधिक प्रबल है और इस लोकमें उनसे अधिक दूसरा कोई पापी नहीं है। जो औरससे पुत्र पालन-पोषण करनेपर वर्द्धित होकर पिता माताको

प्रतिपालन नहीं करता, उसका वह पाप भ्रूण हत्यासे भी अधिक है, उससे बढ़के पापी दूसरा कोई नहीं है। मित्रद्रोही, कृतघ्न, स्त्रीघाती और गुरुघाती इन चारोंके निष्कृतिका विषय मैंने नहीं सुना। इस लोकमें पुरुषको जो कुछ कर्त्तव्य है, वह सब विस्तारके सहित कहा गया, यही कल्याणकारी और इससे अधिक श्रेष्ठ दूसरा कुछ भी नहीं है; सब धर्म एकत्रित करके उसमें जो सार स्वरूप था, वही कहा गया।

१०८ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे भारत! मनुष्य धर्ममार्गमें निवास करनेकी इच्छा करते हुए किस प्रकार वर्त्तमान रहे। हे विद्वन् भरतश्रेष्ठ! मुझ जिज्ञासुको आप वही उपदेश करिये। हे राजन्! सत्य और मिथ्या ये दोनों ही संसारी लोगोंको आवरण करके विद्यमान हैं; उन्हें त्यागना अत्यन्त कठिन है; इससे धर्म-निश्चित मनुष्य उन दोनोंके बीच कैसा आचरण करे? सत्य क्या है, मिथ्या क्या है? और सनातन धर्म कौनसा है! किस समय सत्य बोले और किस समय मिथ्या कहे?

भीष्म बोले, हे भारत! सत्य कहना ही उत्तम है, सत्यसे श्रेष्ठ दूसरा कुछ भी नहीं है, लोकके बीच जो कठिनाईसे जानने योग्य है, उसे कहता हूं। किसी समय सत्य बोलना उचित नहीं और कभी मिथ्या कहो जाती है; जिससे मिथ्या सत्य और सत्य भी मिथ्या हुआ करता है, जिसमें सत्य निष्ठायुक्त नहीं है, वैसा बालक अर्थात् अज्ञानी मनुष्य बध्य होता है। सत्य और मिथ्याका विशेष रूपसे निश्चय कर सकनेसे मनुष्य धर्म जाननेवाला हुआ करता है। जैसे व्याधा हिंसक स्वभाववाला है, वह भी अन्धेका बध करनेसे स्वर्गको गया था, वैसे ही अनार्य्य, हीनबुद्धि अत्यन्त निठुर पुरुष भी महत् पुण्य लाभ कर सकता है; गङ्गाके किनारे सांपिनके स्थापित किये हुये सबल अण्डोंको भेद कर उलूकने जिस प्रकार महत् पुण्यलाभ किया था; वैसे ही अधर्म्मी मूढ़ पुरुष धर्म करनेवाला होकर जो महत् पुण्य प्राप्त कर सकेगा, उसमें आश्चर्य ही क्या है? जिस विषयमें धर्म अत्यन्त दुर्लभ और दुर्ज्ञेय है, यह प्रश्न वैसा ही हुआ है। धर्मका लक्षण वर्णन करना अत्यन्त कठिन है, इससे कौन इसे निश्चय करके कह सकता है? जीवोंको उन्नतिके वास्ते ऋषियोंने धर्मका वर्णन किया है; इससे जो अभ्युदय युक्त है, वही धर्म कहके निश्चित है। जो धारण करता है, महर्षि लोग उसे ही धर्म कहते हैं; धर्मसे प्रजा धृत हुई है, इससे जो धारणायुक्त है, वही धर्म है, यह निश्चय है। कोई कोई पुरुष श्रुतिको ही धर्म कहते हैं, दूसरे उसे अङ्गीकार नहीं करते! मैं उनकी निन्दा नहीं करता; सबमें ही कुछ विहित नहीं होता। जो अन्यायसे किसीके धनको हरनेकी इच्छा करते हैं; उन्हें धनीका सन्धान देना उचित नहीं है; यही धर्मरूपसे निश्चित है। चोर लोग धनी को बात पूंछे, तो यदि न कहनेसे उनके समीपसे छुटकारा मिले तो किसी प्रकार भी उनसे न कहे; बिना कहे यदि उनके हाथसे छुटकारा न हो, तो शपथ पूर्व्वक नहीं जानता हूं, ऐसा भी कहे; ऐसे स्थलमें मिथ्या कहनेसे भी दोष नहीं होता इससे ऐसे स्थानोंमें सत्यसे मिथ्या कहना ही उत्तम है। शपथ करने पर भी यदि पापाचारी मनुष्योंके हाथसे छुटकारा मिले तो, वह भी उत्तम है। किसी प्रकारकी सामर्थ रहते पापाचारी मनुष्योंको धन दान न करे, पापाचारियोंको जो धन दिया जाता है, वह दाताको ही पीड़ित करता है। उत्तमर्ण (ऋण देनेवाला) यदि ऋणी पुरुषके शरीरको दासत्वमें नियुक्त

करके दिया हुआ धन वसूल करनेकी अभिलाषा करे, उस समय सत्य कहनेके वास्ते लाये गये साक्षी लोग जो कुछ कहें, और उस विषयमें जो कहना योग्य है, उसे यदि न कहें, तो वे सब ही मिथ्यावादी हैं। प्राणनाश और विवाहके समय मिथ्या वचन कहनेसे भी दोष नहीं होता। दूसरेके धर्मके वास्ते और अर्थ रक्षाके निमित्त झूठ कहनेसे दोष नहीं होता; दूसरेकी सिद्धि कामना करते हुए नीच पुरुष ही धर्म-भिक्षुक होते हैं। दोनों मिलके किसी कार्य्यको करते हुए लाभालाभको समान हिस्सेमें बांट लूंगा ऐसा निश्चय होनेपर अन्तमें यदि अर्थ नष्ट होवे, तो भी हिस्सेके अनुसार देना उचित है। कोई पुरुष यदि धर्मबन्धनसे च्युत हो, अथवा अधर्मके वशमें होकर यदि जबर्दस्ती करे, तो उसके ऊपर दण्डविधान करना उचित है; और दासत्व प्राप्त करके यदि कोई कपटता करे, तो कपटतासे ही उसे दण्ड देना चाहिये। जिस पुरुषने आसुर-धर्मका सहारा लिया है, वह सदा ही सब धर्मोंसे च्युत हैं; शठ मनुष्य निज धर्म त्यागके असुर धर्मके जरिये जीविका निर्व्वाह करनेकी इच्छा करते हैं। लोकमें जिसने भयको ही सर्व्वस्व रूपसे निश्चय कर रखा है, वही पापी है जो पापी ऐसा जानता है, कि धन ही उत्तम है, धन कल्याण दायक नहीं है; उसे जिस उपायसे होसके वध करना उचित है। जो लोग धर्म-कर्मके वास्ते क्लेश नहीं सहते और दीन दरिद्रोंके सहित धनको विभाग करके भोग नहीं करते, वेही पापके स्थान हैं; वेही देवता और मनुष्योंसे भ्रष्ट प्रेतके समान हैं। जो लोग यज्ञ और तपस्यासे हीन हैं, उनके साथ सहवास मत करो, क्योंकि उन लोगोंको वित्तनाशके वास्ते जो दुःख होता है, वह प्राण वियोगके समान है पापाचारियोंके वास्ते धर्म रूपसे कोई विषय निश्चित नहीं है; इससे इस धर्ममें तुम्हारी अभिरुचि होवे, यत्नपूर्व्वक उन्हें यह उपदेश देवे; ऐसा पुरुष ही कोई नहीं है। वैसे पुरुषका जो वध करता है, वह पापग्रस्त नहीं होता; वह निज कर्म्मसे ही मरे हुए पुरुषका वध किया करता है; जो मारा जाता है, वह निज कर्म्मके जरिये ही मरता है। उन बुद्धिहीन पापाचारियोंके बीच इन सबको मारूंगा, जो पुरुष ऐसा नियम करता है, वह कौआ और गिद्धकी तरह केवल कपटजीवी हैं; वह देह त्यागनेसे इन्हीं सब योनियोंमें जन्म लेता है। जो मनुष्य जिस विषयमें जैसा व्यवहार करता है, उसके साथ वैसा ही व्यवहार करना धर्म है; कपटीको कपट व्यवहारोंसे बाधित करना चाहिये और साधु आचरणवाले मनुष्यके समीप सदाचरण करना उचित है।

१०९ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! जिस समय प्राणी जैसी अवस्थामें रहते हैं, उस ही उस अवस्थामें क्रमसे क्लेशित होनेपर जिस उपायके सहारे दुस्तर विषयोंके पार होसकते हैं, उसे आप मेरे समीप वर्णन कीजिये।

भीष्म बोले, जो सब स्थिर चित्तवाले द्विजाति पहिले कहे हुए आश्रमोंके यथोक्त धर्माचरण करते हैं, वेही कठिन विषयोंको अतिक्रम किया करते हैं। जो दम्भका आचरण नहीं करते, जिनकी चित्तवृत्ति स्थिर है और जो इन्द्रियोंको निग्रह किया करते हैं; वेही दुस्तर विषयोंको अतिक्रम करते हैं। निन्दा करनेपर जो प्रत्युत्तर नहीं करते, हिंसित होनेपर भी जो हिंसा नहीं करते; दान करते परन्तु किसीसे मांगते नहीं, वेही कठिन विषयोंको अतिक्रम किया करते हैं। जो प्रतिदिन अतिथियोंको आश्रय देते, कभी किसीकी निन्दा नहीं करते और सदा स्वाध्याय रत अर्थात्

स्वाध्यायोक्त वेद पाठ करते हैं, वेही दुस्तर विष-योंको अतिक्रम किया करते हैं। जो सब धर्म्म जाननेवाले मनुष्य माता पिताकी वृत्तिका आसरा करते और दिनमें निद्रित नहीं होते, वेही दुस्तर विषयोंको अतिक्रम किया करते जो मन वचन कर्म्मसे कुछ पापाचरण और जीवोंके वास्ते दण्ड विधान नहीं करते, वेही कठिन विषयोंको अतिक्रम किया करते हैं। जो राजा लोग रजोगुणसे युक्त होकर लाभके कारण धन नहीं हरते, और सब विषयोंको सब तरहसे रक्षा करते है, वेही कठिन विष-योंको अतिक्रम किया करते हैं। जो सब अग्नि-होत्र परायण साधु लोग ऋतुकालमें निरत होकर दूसरी वृत्ति अवलम्बन नहीं करते, वेही दुस्तर विषयोंको अतिक्रम किया करते हैं। जो शूर पुरुष युद्धमें मृत्युका भय त्यागके जयकी इच्छा करते हैं, वही कठिन विषयोंको अतिक्रम कर सकते हैं। इस संसारमें प्राणत्या-गका समय उपस्थित होनेपर भी जो सत्य वचन कहते हैं, वे जीवोंके निदर्शन स्वरूप मनुष्य दुस्तर विषयोंको अतिक्रम किया करते हैं। जिनके कार्य्योंमें कोई कपटता नहीं है, वचन सत्य और प्रिय है तथा सब अर्थ सत्का-र्य्योंमें परिणत होता है; वेही कठिन विषयोंको अतिक्रम करते हैं। जो ब्राह्मण अनध्यायके दिवस वेद पाठ नहीं करते, वे तपस्यामें निष्ठा-वान तपस्वी लोग दुस्तर विषयोंको अतिक्रम किया करते हैं जो सब कुमार ब्रह्मचारी विद्या वेद और व्रतमें निष्ठावान होकर तपस्या करते हैं, वे दुस्तर विषयोंको अतिक्रम किया करते हैं। जिन महात्माओंमें रजोगुण और तमोगुण शान्त होगया है, तथा वे लोग केवल सतोगु-णको अवलम्बन किये हैं, वेही दुस्तर विषयोंको अतिक्रम किया करते हैं। जिसके समीप कोई भयभीत नहीं होते और जो किसीके निकट त्रास युक्त नहीं होते तथा सब प्राणी ही जिसे आत्म समान हैं, वेही दुस्तर विषयोंको अति-क्रम कर सकते हैं। जो सब पुरुषश्रेष्ठ साधु लोग पराई श्रीको देखके दुःखित नहीं होते और जो ग्राम्य विषयसे निवृत्त रहते हैं, वेही दुस्तर विषयोंको अतिक्रम किया करते हैं। जो सब श्रद्धावान शान्त स्वभाववाले मनुष्य देवता-ओंको प्रणाम करते और सब धर्म्म सुनते हैं, वेही कठिन विषयोंको अतिक्रम किया करते हैं जो प्रजाकामनासे शुद्धचित्तसे प्रति तिथिमें श्राद्ध करते हैं, वे सब कठिन विषयोंको अतिक्रम करते हैं। जो क्रोधको रोकते और क्रुद्ध पुरु-षोंको पूरी रीतिसे शान्त किया करते हैं, तथा प्राणियोंके ऊपर कोपित नहीं होते; वेही दुस्तर विषयोंको अतिक्रम किया करते हैं। जो मनुष्य इस लोकमें सदा मद्य मांसका भोजन परित्याग करते जन्म भर मद्य पान नहीं करते; वेही कठिन विषयोंको अतिक्रम किया करते हैं, जो प्राणयात्रा निर्व्वाहके ही वास्ते भोजन करते पुत्र उत्पत्तिके वास्ते भार्य्याका सङ्ग करते, सत्य कहनेके निमित्त वचन बोलते हैं, वेही दुस्तर विषयोंको अतिक्रम किया करते हैं। सब प्राणि योंके ईश्वर, जगत्को उत्पत्ति और लयके कारण नारायण देवको जो लोग भक्ति करते हैं, वेही दुस्तर विषयोंको अतिक्रम किया करते हैं। हे राजन्! यह जो पद्मके समान लोचनेवाले पीताम्बरधारी महाबाहु अच्युत अर्ज्जुनके सुहृद, भ्राता, मित्र और सम्बन्धी हैं; जो अचि-न्त्यस्वभाव पुरुषश्रेष्ठ प्रभु गोविन्द इच्छा करनेसे ही सब लोकोंको चमड़ेकी तरह समेटा करते हैं, जो धनञ्जय तथा तुम्हारे प्रिय और हितकर कार्य्योंमे सदा तत्पर रहते हैं, वह यही पुरुष प्रवर अनाभिभवनीय वैकुण्ठ ही पुरुषोत्तम हैं! जो सब भक्त लोग इस लोकमें इस नारायण हरिका आसरा करते हैं, वे दुस्तर विषयोंको अतिक्रम किया करते हैं; इस विषयमें कोई विचार नहीं है। जो लोग इस दुस्तर विषयसे

अतिक्रमका विवरण पाठ करते, सुनते, वा ब्राह्मणोंके निकट गाया करते हैं, वे भी कठिन विषयोंसे पार होते हैं। हे पापरहित! मनुष्य लोग इस लोक और परलोकमें जिस प्रकार दुस्तर विषयोंसे उत्तीर्ण होते हैं, मैंने वही उस कार्य्यका विवरण तुम्हारे समीप वर्णन किया।

११० अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! जो प्रिय नहीं हैं, वे प्रिय रूपसे और जो प्रियदर्शन हैं, वे अप्रिय रूपसे दीख पड़ते हैं, इससे ऐसे पुरुषोंको हम किस प्रकार जानेंगे?

भीष्म बोले, हे युधिष्ठिर! इस विषयमें गिद्ध गोमायु सम्वाद युक्त जिस पुराने इतिहासको प्राचीन लोग उदाहरण दिया करते हैं, उसे सुनो। पहिले समयमें श्रीमती पुरीका नाश पुरोके बीच परहिंसामें रत, क्रूर स्वभाववाला पुरुषोंमें अधम पौरिक नाम एक राजा था। वह आयु क्षय होनेपर अनिन्दित गतिको प्राप्त होकर पूर्व्व-कर्म्मके दोषसे जम्बुक हुआ था। वह प्रथम ऐश्वर्य्यको स्मरण करके दुःखको प्राप्त हुआ। दूसरेके लानेपर भी वह मांस भक्षण नहीं करता था। वह सब जीवोंके विषयमें हिंसा रहित सत्यवादी और दृढ़व्रती होकर यथा समयमें स्वयं गिरे हुए फलके जरिये आहार-वृत्तिसे जीविका निर्व्वाह करता था। श्मशानमें वास करना ही उसे सम्मत था, जन्मभूमिके अनुरोधके कारण दूसरी जगह निवास करनेकी उसकी इच्छा नहीं होती थी। समान जातिवाले सियारोंने उसकी पवित्रताको सहन नहीं किया, वे सब विनय युक्त वचनसे उसकी बुद्धि विचलित करने लगे। वे सब बोले, तुम भयङ्कर श्मशानमें वास करते हुए शुद्धाचारसे रहनेकी अभिलाष करते हो, तुम जब मांसभक्षी हो, तब तुम्हारी ऐसी विपरीत बुद्धि क्यों हुई? इससे तुम हमारे समान रहो, हम लोग तुम्हें भक्ष्य वस्तु देंगे; शुद्ध आचार परित्याग करके भोजन करो; जो हम लोगोंका भोजन है, वही तुम्हारा भक्ष्य होवे। जम्बुकने सजातीय सियारोंका वचन सुनके स्थिर होकर विस्तार पूर्व्वक युक्तियुक्त निठुरतारहित मधुर वचनसे उत्तर दिया, कि मेरे जन्मका कोई प्रमाण नहीं है; स्वभावके अनुसार चाहे जिस किसी कुलमें उत्पन्न हुआ हूं, जिससे यश बढ़े, मैं वैसे कर्म्मकी इच्छा करता हूं, यद्यपि मैं श्मशानमें वास करता हूं; तौभी मेरा नियम सुनो; आत्मा ही कर्म्म फल भोग करता है, आश्रम कोई धर्म्मके कारण नहीं है। आश्रममें रहके जो पुरुष ब्रह्महत्या करते अथवा दूसरे आश्रममें रहके गऊदान करते हैं; उससे क्या उन लोगोंके पाप वा दान व्यर्थ होते हैं? तुम लोग केवल स्वार्थी और लोभके वशमें होकर केवल भक्षण करनेमें ही रत होरहे हो; परिणाममें जो तीनों दोष वर्त्तमान हैं, मोहित होकर उसे नहीं देखते हो। असन्तोष कारिणी गर्हणीया वृत्ति धर्म्महानिके कारण दूषित होती है, इस लोक और परलोकमें अनिष्ट करनेवाली वृत्तिमें मेरी अभिलाषा नहीं है। कोई विख्यात बली शार्दूल गोमायुको पवित्र और पण्डित समझके स्वयं उसका अपने समान सम्मान करते हुए मन्त्रीके कार्य्यके वास्ते चुना।

शार्दूल बोला, हे प्रियदर्शन! तुम्हारा स्वभाव मालूम हुआ, तुम मेरे साथ राजकार्य्य करनेके वास्ते चलो, अभिलषित भोगकी इच्छा करके प्रचुर भोग परित्याग करो। मैं तीक्ष्ण रूपसे विख्यात हूं; इससे तुम्हें कोमलता युक्त हितकर वचन कहता हूं, कि तुम्हारा कल्याण होगा।

अनन्तर जम्बुक महानुभाव मृगेन्द्रके वचनका सम्मान करके कुछ नत होकर विनययुक्त वचनसे कहने लगा। सियार बोला, हे मृग-

राज ! तुमने मेरे वास्ते जो वचन कहा, वह तुम्हारे योग्य ही है ; तुम जो धर्म्मार्थ कुशल और पवित्र सहाय खोजते हो, वह उचित ही है, हे वीर ! अमात्यके बिना अथवा शरीरके परिपन्थी दुष्ट अमात्योंके जरिये मण्डलकी रक्षा करनी अत्यन्त कठिन है। हे महाभाग ! नीतिज्ञ, अनुरक्त, सन्धि कुशल, परस्पर असंसृष्ट, विजिगीषु, लोभरहित, कपट हीन, बुद्धियुक्त, हितमें रत, ऊंचे चित्तवाले सहायकोंका आचार्य्य और पिताकी तरह सम्मान करना होता है। हे मृगराज ! मुझे सन्तोषके कारण दूसरे विषयोंमें इच्छा नहीं होती, मैं सुख-भोग और उसके आश्रित ऐश्वर्य्यकी अभिलाषा नहीं करता ; मेरा चरित्र तुम्हारे पुराने सेवकोंके साथ न मिलेगा। वे शीलरहित सेवक मेरे वास्ते तुमको विभिन्न करेंगे ; दूसरे किसी तेजस्वीका आसरा भी प्रशंसनीय नहीं है। पवित्र चित्तवाले महाभाग पुरुष श्रमिसे भी प्रचण्ड हैं, मैं दीर्घदर्शी महाउत्साहसे युक्त धर्म्मात्मा, महाबलशाली, कृती, अव्यर्थकारी और अनेक भोगोंसे अलंकृत था। मैं थोड़ेमें सन्तुष्ट नहीं होता था और कभी सेवावृत्तिका अनुष्ठान भी नहीं किया है ; इससे सेवावृत्तिसे अनभिज्ञ हूं ; केवल स्वच्छन्दताके सहित वनके बीच घूमा करता हूं। जो गृहस्थाश्रममें वास करते हैं, उन लोगोंको ही राजाके निकट निन्दाजनित दोष हुआ करता है, और वनवासियोंका व्रत आचरण आसक्ति रहित तथा निर्भय होता है। राजासे बुलाये जानेपर मनुष्यके मनमें जो भय होता है, सन्तुष्टचित्त और फलमूल भोजन करनेवाले वनवासियोंके मनमें वह भय नहीं रहता। अनायास प्राप्त हुए जल और भययुक्त स्वादिष्ट अन्न इन दोनोंके बीच विचार करके देखता हूं, जिसमें निवृत्ति है, उसहीमें सुख है, राजा लोग सेवकोंके अपराधके कारण उस प्रकार दण्डविधान नहीं कर सकते, जैसे श्राघातसे दूषित होकर वे लोग मृत्युको प्राप्त होते हैं। हे मृगेन्द्र ! यदि मुझे यह राजकार्य्य करना होवे, तुम ऐसा विचारते हो ; तो मुझे जिस प्रकार रहना होगा, उसका एक नियम करनेकी इच्छा करता हूं। तुम्हारे प्राचीन मन्त्री मेरे माननीय होंगे, परन्तु मेरा हितकर वचन तुम्हें सुनना योग्य है। मेरी जो वृत्ति कल्पित होगी, वह तुम्हारे समीप स्थिर रहेगी, मैं कभी तुम्हारे दूसरे मन्त्रियोंके साथ विचार नहीं करूंगा ; तुम्हारे प्राचीन मन्त्री नीतिज्ञ होनेपर भी मेरे विषयमें व्यर्थ वार्त्ता करेंगे। मैं अकेले एकान्तमें केवल तुम्हारे साथ मिलके हितकर वचन कहूंगा ; स्वजनोंके कार्य्यमें तुम मुझसे हिताहितका विषय न पूछना। तुम मेरे साथ सलाह करके फिर दूसरे मन्त्रियोंकी हिंसा न करना, और मेरे आत्मीयगणोंके ऊपर क्रुध होकर तुम दण्डविधान न करना। "ऐसा ही होवे"—मृगेन्द्रने ऐसा वचन कहके जम्बुकका सम्मान किया ; जम्बुक भी सम्मानित होकर व्याघ्रके मन्त्री पदपर प्रतिष्ठित हुआ। बाघके पूर्व्व-स्थित सेवक लोग सियारको निज कार्य्यमें सत्कृत और पूजित देखकर सब कोई दलबद्ध होकर बारम्बार उसके ऊपर द्वेष करने लगे। दुष्टबुद्धि मन्त्रियोंने मित्र ज्ञानसे गोमायुको शान्त और प्रसन्न करके अपनी तरह उसे भी दोषी करनेकी इच्छा की। ऐसा न करनेसे पहिले जिन्होंने पराये धनको हरण किये थे, इस समय वे वहां रहने न पाते ; और गोमायुसे निमन्त्रित होके कोई वस्तु ग्रहण करनेमें समर्थ न होते थे। वे सब अपनी उन्नतिकी इच्छा करते हुए अनेक प्रकारके वचन और वित्तसे गोमायुकी बुद्धि लोभयुक्त करने लगे ; परन्तु वह महाबुद्धिमान जम्बुक किसी प्रकार धीरजसे विचलित नहीं हुआ। अनन्तर सबने षड्यन्त्र करके सियारके नाशके वास्ते व्याघ्रका अभिलषित मांस जो उसके घरमें रखा था ;

उन लोगोंने स्वयं उस मांसको वहांसे लाकर सियारके घरमें रखा। वह मांस जिस कारण जिसके जरिये लाया गया था, और जिसने इस विषयको सलाह की थी; वह सब हाल सियारको मालूम था, उसने केवल अपने बन्धु विच्छेदके निमित्त चमा की थी। वह जब मन्त्री कार्य्यपर नियुक्त हुआ, उस समय यह नियम किया था, कि इस लोकमें सब जीवोंके हितके निमित्त किसीके ऊपर आघात करना उचित नहीं है।

भीष्म बोले, भूखा व्याघ्र भोजन करनेके वास्ते उठने पर भोजनके योग्य उस मांसको न देखा; तब उसने आज्ञा दी, कि किसने मांस चुराया है, उस चोरका पता लगाओ। कपट आचारी सेवकोंने मृगेन्द्रके समीप उस मांसका विषय वर्णन किया, कि तुम्हारे प्राज्ञमानी पण्डित मन्त्रीने उस मांसको हरण किया है। अनन्तर शार्दूलराज सियारकी चपलता सुनने पर कोपित होकर अत्यन्त क्रुद्ध हुआ और उसका बध करनेकी इच्छा करी। पूर्वस्थित मन्त्रियोंने उसका वह छिद्र देखके, वह सियार हम सब लोगोंकी वृत्ति भङ्ग करनेमें प्रवृत्त हुआ है। उन लोगोंने ऐसा निश्चय करके फिर उसके सब कर्मोंको वर्णन करने लगे, उसका जब ऐसा कर्म है, तब वह क्या नहीं कर सकता? आपने पहिले उसे जिस प्रकार सुना था, वह वैसा नहीं है; वह वचन मात्रका ही धर्मिष्ठ है; परन्तु उसका स्वभाव अत्यन्त दारुण है। इस पापीने कपट धर्म अवलम्बन कर वृथा आचरण परिग्रह किया है, कार्य्य सिद्धिके कारण भोजनके वास्ते व्रत विषयमें श्रम किया है। यदि इस विषयमें आपको अविश्वास होवे, तो इस समय आपको दिखा देता हूं—वह मांस सियारके घरमें प्रवेशित हुआ है मांसको चोरी और उसके वृत्तान्तको सुनकर व्याघ्रने उस समय "गोमायुका बध करो," ऐसी आज्ञा की। अनन्तर शार्दूलकी माता उनका वचन सुनके हितकर वाक्यसे उसे प्रबोध करनेके वास्ते आई। वह बोली, हे पुत्र! कपट कार्य्य संयुक्त वाक्य ग्रहण करने तुम्हें उचित नहीं है। ईर्षाके कारण उग्रतायुक्त अपवित्र पुरुषोंको संसर्ग जनित दोषके जरिये निर्दोषी पुरुष भी दोषी होता है, कोई पुरुष वैरकारक समुन्नत प्रकृष्ट कर्म नहीं सह सकता, निर्दोषी पुरुषके अभियुक्त होनेपर वह दूषित हुआ करता है; निज कर्म साधन करनेवाले वनवासी मुनियोंके विषयमें भी शत्रु, मित्र और उदासीन ये तीनों पक्ष उत्पन्न होते हैं। लोभियोंके शुद्ध स्वभाव वाले लोभ द्वेषी होते, कादरोंके बलवान, मूर्खोंके पण्डित और दरिद्रोंके महाधनवान मनुष्य द्वेषी हुआ करते हैं, अधार्म्मियोंके धर्मात्मा और कुरूपोंके स्वरूपवान मनुष्य द्वेषभाजन होते हैं। बहुतेरे पण्डित मूर्ख, लोभी और मायाजीवी लोग बृहस्पतिके समान बुद्धिमान् निर्दोषी मनुष्योंके दोष स्थापित किया करते हैं। यद्यपि तुम्हारे सूने घरसे मांस चुराया गया है, परन्तु जो पुरुष देने पर भी लेने की इच्छा नहीं करता; उस विषयमें वैसा समझना उचित नहीं है। असभ्य लोग सभ्य और सभ्य लोग असभ्यके समान दीख पड़ते हैं। लोगोंके भाव अनेक तरहके देखे जाते हैं; इससे उनके विषयमें परीक्षा करना युक्तियुक्त है। आकाशका तल कड़ाहीके पेट समान दीखता और जुगुनू अग्निकी चिनगारी सदृश दीख पड़ता है; परन्तु आकाशका तल नहीं है और जुगुनू भी अग्नि नहीं है, इससे अप्रत्यक्ष दृष्ट विषयोंकी भी परीक्षा करनी उचित है। परीक्षा करके विषय जाहिर करने पर पीछे दुःखित नहीं होना पड़ता।

हे पुत्र! प्रभु होके दूसरेको नष्ट करना, कुछ कठिन नहीं है; परन्तु इस लोकमें प्रभावयुक्त पुरुषोंमें क्षमागुण ही बड़ाईके योग्य तथा यशदायक है। हे पुत्र! तुमने इसे समझकर

राज्यके बीच स्थापित किया है ? इससे ही यह विख्यात हुआ है; मनुष्य पात्र अत्यन्त कष्टसे प्राप्त होता है; यह तुम्हारा सुहृद है, इससे इसकी रक्षा करो। पराए दोषसे दूषित पवित्र पुरुषको जो दूसरी भांति समझता है, वह स्वयं अमात्योंको दूषित करते हुए शीघ्र ही नष्ट होता है। जम्बुकके उन शत्रु समूहके बीचसे कोई धर्म्मात्मा आया, उसने जिस प्रकार यह छल हुआ था, वह सब प्रकाशित करके कह दिया। अनन्तर जम्बुकका चरित्र मालूम होनेपर व्याघ्रने उसका सत्कार करके उसे मुक्त किया और बारम्बार प्रीतिके सहित उसे आलिङ्गन किया। नीतिशास्त्रको जाननेवाला वह सियार मृगेन्द्रकी आज्ञा लेके उस ही अमर्षसे दुःखित होकर प्रायोग पवेशन व्रतकी इच्छा की। शार्दूलने प्रीतिके कारण दृष्टिक नत्रसे सम्मान करके उस धर्म्मात्मा सियारको आदरके सहित अनशन व्रत अवलम्बन करनेसे निवारण किया। सियार बाघको स्नेहवशके कारण संभ्रान्त चितवनसे प्रणत होके गद्गद वचनसे कहने लगा कि तुमने पहिले मुझे पूजित करके पीछे अपमानित किया और मेरे शत्रुओंके आश्रय हुए; इससे मैं तुम्हारे समीप निवास नहीं कर सकता। जो सेवक स्थानभ्रष्ट मानसे हीन हैं, वे स्वयं आगत वा दूसरेसे अर्पित होवें; जो क्षीण, लोभी, क्रोधी, डराहुक, प्रतारित और हृत सर्व्वस्व होवें और जो मानी तथा महा अर्थ लाभके अभिलाषी होकर आदान हीन हुआ करते हैं; जो दुःखित वा व्यसनोंकी प्रतीक्षा करते हैं, वे सब ही प्रीतिरहित और निर्द्धन होकर नष्ट होते हैं। मैं स्थानभ्रष्ट और अपमानयुक्त हुआ हूं, इससे किस प्रकार तुम्हारा विश्वास पात्र होऊंगा; और कैसे तुम्हारे समीप स्थित होऊंगा ? मुझे समर्थ समझके तुमने सची पद प्रदान करके परीक्षा की और अपने किये हुए नियमको उल्लङ्घन करके मुझे अपमानित किया है। सभाके बीच शीलवान कहके जिसे विख्यात किया था; प्रतिज्ञा रक्षा करनेवालेके पक्षमें उसका औगुण कहना उचित नहीं है। मैं जब इस प्रकारसे मालूम हुआ हूं, तब तुम मेरा विश्वास अब न करोगे, तुम्हारे विश्वास न करनेसे मेरा भी चित्त व्याकुल होगा। तुम शङ्कित और मैं भयभीत हूं; दूसरे छिद्र खोजनेवाले अस्निग्ध और असन्तुष्ट रहेंगे; इससे ऐसे स्थलमें वास करनेसे बहुतसा छल होसकता है। जिस स्थानमें पहिले सम्मान पीछे अपमान होता है, उस सम्मानित होके फिर अपमानित होनेवालेको धीर लोग प्रशंसा नहीं करते। पृथक् हुई वस्तु बहुत कष्टसे जुड़ती है और जुड़ी हुई वस्तु अत्यन्त कष्टसे अलग हुआ करती है; जो प्रीति पृथक् होके फिर जुड़ती है, वह स्नेहसे मिश्रित नहीं रहती। कोई पुरुषको अपना पराया दोनोंके अतिरिक्त केवल स्वामीके हितकर कार्य्योंमें रत नहीं देखा जाता सब ही कार्य्यके अनुसार अभिप्राय करते हैं; इससे स्निग्धबन्धु अत्यन्त दुर्लभ है। राजाओंका चित्त अत्यन्त चञ्चल होता है; उत्तम पुरुषको समझना बहुत कठिन है; समर्थ वा शङ्कारहित पुरुष सैकड़ेमें एक पाया जाता है। मनुष्योंको उन्नति अवनति स्वयं हुआ करती; शुभाशुभ घटना ही महत्व और तुच्छत्व मालूम करानेमें समर्थ हैं।

भीष्म बोले, जम्बुकने इसी प्रकार धर्म्म, काम और अर्थसे पूरित युक्तियुक्त शान्त वचन कह बाघको प्रसन्न करके बनको गया। बुद्धिमान सियार उस शार्दूलकी बिनतीको न मान कर व्रत अवलम्बन करके देहत्यागनेके अनन्तर स्वर्गमें गया।

१११ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे सब धर्म्मोंके जाननेवाले पितामह! राजाको क्या कर्त्तव्य है, और कैसा

कार्य्य करनेसे राजा सुखी होता है इसे आप यथार्थ रूपसे वर्णन कीजिये।

भीष्म बोले, अच्छा,—मैं तुम्हारे समीप कहता हूं; इस लोकमें राजाको जो कुछ कर्त्तव्य है और जिसके करनेसे वह सुखी होते हैं, उस कार्य्यके विषयमें एकमात्र निश्चय है, उसे सुनो। हे युधिष्ठिर! हमने जिस प्रकार एक ऊंटका महत वृत्तान्त सुना है, वैसा करना उचित नहीं, इससे उसे सुनो। प्राजापत्य युगमें एक जातिस्मर ऊंट था, उसने जङ्गलके बीच व्रत करके महत् तपस्या की थी। उसकी तपस्या पूरी होने पर सर्व्व-शक्तिमान पितामह प्रसन्न हुए; अनन्तर उन्होंने उसे वर मांगनेको कहा।

ऊंट बोला, हे भगवन्! आपकी कृपासे मेरी गर्द्दन लम्बी होवे, हे विभु! जिससे मैं उस लम्बी गर्द्दनके जरिये एक सौ योजनसे भी आगेके कण्टक पत्रादिकोंको हरण कर सकूं। वरदाता महात्मा पितामहने कहा "ऐसा ही होवे"। ऊंट भी उत्तम वर पाके निज वनमें गया। अत्यन्त नीचबुद्धि ऊंटने उस समय वरके प्रभावसे आलस्य किया। वह दुष्टात्मा कालसे मोहित होकर चरनेके वास्ते नहीं जाता था; किसी समय उस एक सौ योजन लम्बी ग्रीवाको पसार कर निश्चङ्क चित्तसे रहा था; उस ही समयमें प्रबल हवा बहने लगी, तब ऊटने अपने शिर और गर्द्दनको कन्दराके बीच डाल दिया।

अनन्तर जगत्को परिपूरित करती हुई महत् वर्षा आरम्भ हुई। उस ही समय कोई शियार जलसे भीगके शीतसे आरत हुआ; इससे कष्टमें पड़के भार्य्याके सहित शीघ्र ही उस गुफाके बीच प्रवेश किया। हे भरतश्रेष्ठ! वह मांसजीवी अत्यन्त परिश्रम और क्षुधासे युक्त होकर ऊटकी गर्द्दन देखके उसे भक्षण करने लगा। ऊंटने जब अपनेको भक्ष्यमान समझा तब वह अत्यन्त दुःखित होकर ग्रीवा समेटनेके वास्ते यत्नवान हुआ। वह गर्द्दनको ऊपर नीचेको समेटते समेटते भार्य्याके सहित शियारने उसे भक्षण किया। शियार ऊंटको भक्षण करके वर्षा और वायुके शान्त होने पर गुफासे बाहर हुआ। नीचबुद्धि ऊंट उस समय इसी भांति मृत्युको प्राप्त हुआ था। देखिये, आलसके कारण महत् दोष उपस्थित हुआ, इससे तुम उपाय अवलम्बन करके ऐसे आलस छोड़के सावधान होकर बुद्धिमूलक विषयोंमें वर्त्तमान रहो। हे भारत! मनुने कहा है, बुद्धिमूलक कर्म्म ही उत्तम है; बाहु-बल जनित कर्म्म मध्यम, और पांवसे चलना तथा बोझा ढोना आदि निकृष्ट है। जो लोग दक्ष और क्रमसे इन्द्रियोंको निग्रहीत किये हैं, उन्हीं राजाओंका राज्य वर्त्तमान रहता है; और बुद्धिबलसे ही आर्त्त पुरुषोंकी विजय होती है; यह मनुने कहा है।

हे पापरहित युधिष्ठिर! जिन्होंने गुप्त मन्त्रणा सुनी है, जो सहाय युक्त और परीक्षा करके कार्य्य करते हैं; इस लोकमें उनके ही पास सब अर्थ उपस्थित रहते हैं; सहाय युक्त राजा समस्त पृथ्वी शासन करनेमें समर्थ हैं। हे महेन्द्र सदृश स्वभाववाले युक्त महाराज! विधि जाननेवाले साधुओंके जरिये पहिले समयमें यह कथा कही गई थी; मैंने भी तुम्हारे समीप शास्त्रदृष्टिके अनुसार इसे वर्णन किया; इससे जैसा कहा है, उस ही भांति बुद्धिसे विचार करके आचरण करो।

११२ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे भरतर्षभ! राजा दुर्लभ राज्य पाके सहाय रहित होके अत्यन्त बलवान शत्रुके निकट किस प्रकार निवास करे?

भीष्म बोले, हे भारत! पुराने लोग इस विषयमें सरित्पति सागर और नदियोंके सम्वाद

युक्त इस प्राचीन इतिहासको कहा करते हैं, जो संशय उत्पन्न हुआ था, उस विषयमें सुरा-रिनिलय सरित्पति समुद्र नदियोंसे प्रश्न किया।

समुद्र बोला, हे उत्तमोत्तम नदियो! तुम सब जिस समय मेरे निकट आती हो; उस समय जड़ और शाखाके सहित बड़े बड़े वृक्षोंको नष्ट होते देखता हूं; परन्तु उनके बीच बेतके वृक्षको टूटते हुए नहीं देखता। बेतका वृक्ष छोटा शरीर और अल्प शक्तिवाला तुम्हारे किनारे पर उत्पन्न होता है; इससे तुम लोग उसे अवज्ञाके कारण नहीं लाती हो; वा उसने तुम लोगोंका कुछ उपकार किया है? बेत जो तुम लोगोंके तटको छोड़के नहीं आता, उस विषयमें मैं तुम सब लोगोंके मतको सुननेकी इच्छा करता हूं। इस विषयमें नदियोंमें श्रेष्ठ गङ्गा सरित्पति समुद्रसे अर्थ और युक्ति-युक्त हृदय-ग्राहक उत्तर देने लगीं।

गङ्गा बोलीं, ये सब वृक्ष यथा स्थानमें रहनेसे नष्ट होते हैं, ये सब हम लोगोंके विरुद्ध आचरण करके अन्तमें निज स्थानसे भ्रष्ट हुआ करते हैं; बेतवृक्ष ऐसा न करनेसे निज स्थानमें ही निवास करता है। वेगको आता देखके बेत नत होता है, दूसरे नत नहीं होते; नदीका वेग घटनेपर बेत निज स्थानमें स्थित रहता है। बेत कालज्ञ, समयज्ञ और सदा वशीभूत, अनुलोम तथा रूखा है; इस ही निमित्त इस स्थानमें नहीं आता। जो सब ओषधी, वृक्ष, और लता वायु तथा जल वेगके कारण नीचे और ऊंचे होती हैं, वे अपने पराभवको नहीं प्राप्त होतीं।

भीष्म बोले, जो पुरुष पहिले वध और नाश करनेमें समर्थ प्रबल वैरीके वेगको नहीं सहता, वह शीघ्र ही नष्ट होता है। जो अपना और शत्रुके सार असार तथा बलवीर्य्यको मालूम करके घूमते हैं, उन बुद्धिमान पुरुषोंको पराभव नहीं होती। इसी भांति जो शत्रुओंको प्रबल पराक्रमी जानके बेतसीवृत्ति अवलम्बन करते हैं, उनको पराभव नहीं होती; यही प्रकृष्ट ज्ञानका लक्षण है।

११३ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे शत्रुनाशन भारत! विद्वान पुरुष मूर्ख वा प्रगल्भके जरिये कोमल तथा कठोर भावसे निन्दित होकर सभाके बीच कैसा व्यवहार करे?

भीष्म बोले, हे पृथ्वीनाथ! यह विषय जिस प्रकार वर्णित होता है, अर्थात् बुद्धिमान पुरुष अल्पबुद्धि मनुष्योंके अत्याचारको जिस प्रकार सदा सहते हैं, उसे सुनो। जो निन्दक पुरुषोंके ऊपर क्रोध नहीं करते, वे सुकृत फल लाभ किया करते हैं, और जो क्रोधी पुरुषके विषयमें क्षमा करते हैं, वे अपने किये हुए दुष्कृत कर्म्मोंसे छूट जाते हैं। टिट्टिभ-पक्षीके शब्दको भांति कानोंमें कड़वे मालूम होनेवाले क्रोधसे आतुर पुरुषोंके वचनमें उपेक्षा करे। लोक समाजमें जो पुरुष द्वेषभाजन होता है, उसका सब ही निष्फल है; वह उसही पाप कर्म्मके जरिये सदा बड़ाई करता है,—"मैंने जनसमाजके बीच अत्यन्त विख्यात किसी पुरुषको ऐसा वचन कहा था, वह सभामें ऐसा सुनके मुर्देके समान स्थित था।" जो निर्लज्ज पुरुष बड़ाई न करने योग्य कर्म्मोंके जरिये बड़ाई करते हैं, वैसे अधम पुरुषोंके विषयमें यत्नपूर्व्वक उपेक्षा करनी योग्य है। अल्पबुद्धि मनुष्य जो कुछ कहे, बुद्धिमान पुरुष उसे सहन करे, वनके बीच कौवेकी तरह निरर्थक चिल्लाते हुए बुद्धिहीन साधारण पुरुष प्रशंसा वा निन्दा करके क्या कर सकता है? पाप कर्म्मोंका करना यदि वचनसे कहा जावे, अर्थात् इस पुरुषने यह कर्म्म किया है, ऐसा कहने पर वचनमात्रसे दूसरेका दोषसिद्ध अल्प करता है; क्रोधी पुरुषका प्रयोजन सिद्ध

नहीं होता, इसही वचनके जरिये दूषित पुरुष कभी दोषी नहीं होसकता। दुष्ट पुरुष यदि कड़वे वाक्यसे कोई विपरीत वचन कहें, अर्थात् जनसमाजमें यदि कोई पुरुष कड़वे वचनसे गाली देवे, तो जैसे मोर अपना गुह्य दिखाके नाचते नाचते अपनी बड़ाई समझता है, अर्थात् मैं उत्तम नृत्य करता हूं, ऐसे ही अभिमानसे मतवाला होता है, वैसे ही खल तथा नष्ट लोग मैंने सभाके बीच अमुक महत् पुरुषको कड़वे वचन कहा है, ऐसी ही बड़ाई किया करते हैं, उसके वास्ते लज्जित नहीं होते। जगत्में जिसे कुछ भी न करने योग्य अथवा अकार्य्य नहीं है, उन दूषित चित्तवाले मनुष्योंके साथ पवित्र स्वभाव युक्त पुरुषोंको वार्त्तालाप करना उचित नहीं है। जो पुरुष सम्मुखमें प्रशंसा और परोक्षमें निन्दा किया करता है, कुत्तेकी तरह वैसे मनुष्यका मान और धर्म्म नष्ट होता है। परोक्षमें निन्दा करनेवाला मनुष्य यदि सैकड़ों पुरुषोंको दान करे, तथा होम करे, तो उस ही समय वह सब निष्फल होजाता है; इसही बुद्धिमान पुरुष सदा वैसे पापी साधुताहीन पुरुषोंको कुत्तेके मांसको तरह त्याग करें। जो दुष्टात्मा महाजनोंके निकट दूसरेकी निन्दा करते हैं, वे सर्पकी तरह ऊंचा फन दिखाके अपने दोषोंको प्रकाशित किया करते हैं। जो बुद्धिहीन पुरुष निज कर्म्मको करनेवाले खलके प्रतिकार करनेकी इच्छा करते हैं, वह इस प्रकार दुःखमें पड़ते हैं, जैसे गधा अग्निपुञ्जमें प्रवेश करता है। जो पुरुष दूसरेकी निन्दा करनेमें सदा रत रहता है, वह मनुष्यके आकारमें कुत्तास्वरूप है। चिल्लानेवाले उन्मत्त हाथी और अत्यन्त भयङ्कर कुत्तेकी तरह उस नीच पुरुषको परित्याग करना चाहिये। जो पुरुष अधीर सेवित मार्गमें वर्त्तमान और इन्द्रिय दमन तथा विनयसे विरत होता है, उस अरिजसी सदा अनैश्वर्य्यगामी पापबुद्धि पापी मनुष्यको धिक्कार है। नीच लोगोंके क्षुद्र वचन बोलनेपर यदि साधु पुरुष उसका उत्तर देवें, तो उन्हें उत्तर देनेसे निवारण करना उचित है; क्योंकि उसके उत्तर देनेसे आर्त्त होना पड़ता है। स्थिर बुद्धिवाले पुरुष ऊंचे पदवाले पुरुषोंसे नीचोंके सहित वार्त्तालाप करनेकी भी निन्दा किया करते हैं। मूढ़ पुरुष क्रुद्ध होनेपर चपेटाघात करता धूलि वा तृण फेंकता अथवा दांत निकालके विभीषिका प्रदर्शित किया करता है; नृशंस तथा मूर्खके कोपित होनेपर ये ही सब कार्य्य प्रसिद्ध हैं। जो मनुष्य सभाके बीच अत्यन्त दुष्टचित्तवाले दुर्जनोंकी की हुई निन्दा सहन करते और इस दृष्टान्तका सदा पाठ करते हैं; उन्हें कोई अप्रिय वचन नहीं प्राप्त होता।

११४ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे महाबुद्धिमान् पितामह! आपको मेरा यह महत् संशय दूर करना होगा। आप हमारे कुलकी स्थित करनेवाले हैं। हे तात! आपने नीचकर्म्म करनेवाले दुष्टात्मा पुरुषोंके विषयमें ऐसे वचन कहे। इस ही वास्ते जाहिर करता हूं, कि जो राजतन्त्रके हितकारी और जिससे वंशको सुख प्राप्त होता तथा जो वर्त्तमान और भविष्यकालमें कुशलकी वृद्धि करनेवाला कृपा करता है; जो पुत्र पौत्र आदि क्रमसे चले आते हों, जो राज्यकी बढ़ती करनेवाला हो खानेपीने और शरीरके विषयमें जो हितकर होवे, उसे आप मेरे समीप वर्णन कीजिये। जो राजा अभिषिक्त होकर राज्यके बीच मित्रोंसे घिरके सुहृदोंसे युक्त होवे वह किस प्रकार प्रजाको प्रसन्न करे? जिसे असत् विषयोंमें अनुराग, प्रीति और प्रबल आसक्ति, तथा इन्द्रियोंको वशमें न करनेवाले असज्जनोंमें अभिलाष होती है; उसके सङ्गमें उत्पन्न हुए सेवक लोग

गुणरहित होजाते हैं और वह राजा सेवकोंके बलसे प्राप्त हुए धनके जरिये गौरवयुक्त नहीं होता। मैं इस ही सन्देहसे युक्त होरहा हूं, आप बुद्धिमें बृहस्पतिके समान हैं, इससे इस दुःखसे जानने योग्य सब राज्य-धर्म्मको मेरे समीप कहनेमें आप ही उपयुक्त हैं। हे पुरुष-श्रेष्ठ! आप हमारे वंशके हित करनेमें रत हैं, आप ही सब विषयोंको कहते हैं, और महा-बुद्धिमान विदुर भी हम लोगोंसे सदाथा कहा करते हैं। आपके समीप वंश और राज्यके हितकर बचन सुनके मैं अमृत पानकी तरह तृप्त होकर सुखसे शयन किया करता हूं। सन्निकृष्ट सेवक कैसे गुणोंसे युक्त होवें और किस प्रकारके सेवकोंके जरिये संसारयात्रा विहित होगी। सेवकोंसे रहित राजा अकेले कभी राज्यकी रक्षा नहीं कर सकते, सत्वंशमें उत्पन्न हुए सब लोग इस राज्यकी इच्छा किया करते हैं।

भीष्म बोले, हे राजन्! अकेले राज्यको शासन करनेमें कोई भी समर्थ नहीं है। हे तात! सहायहीन राजा धन प्राप्त करने वा प्राप्त हुए धनकी सदा रक्षा करनेमे समर्थ नहीं होते। जिसके सब सेवक ज्ञान विज्ञानके जान-नेवाले, हितैषी सत्कुलमें उत्पन्न हुए और कोम-लता-युक्त हैं, वही राज्य फलभोग करता है। जिसके मन्त्री उत्तम कुलवाले और घूस आदिसे अभेद, सहवास निष्ट राजाके प्रति दिखानेवाले साधु, सम्बन्ध युक्त ज्ञानके जाननेवाले, अनागत विधाता, कालज्ञानके जाननेवाले होते हैं; और जो बीते हुए विषयोंके वास्ते शोक नहीं करते, वेही राज्यफल भोग करते हैं। जिसकी प्रजा आर्त्त नहीं होती, सदा प्रसन्न चूद्रता हीन और सत्मार्गको अवलम्बन करती है, वह राजा ही राज्यभागी होता है। कोषको बढ़ानेवाले आप्त और सन्तुष्ट पुरुषोंसे जिसके खजानेकी सदा बढ़ती होती है, वही राजा उत्तम है। पहिले कहे हुए उसके अनन्तर घूस आदिसे अभेद लोभरहित और विश्वासी मन्त्रियोंसे जिसकी धान्य आदि सामग्रीके जरिये सब लोग प्रतिपालित होते हैं, वह राजा अनेक गुणोंसे युक्त होता है। जिसके नगरमें व्यवहार कार्य्य अर्थात् वादी प्रतिवादियोंके विवादोंका निर्णय हुआ करता है और उन लोगोंको अपराधके मुताबिक दण्ड दिया जाता है मस्तकमें लिखे हुए निदर्शनके अनुसार वह राजा ही धर्म्म फलभागी होता है। राजधर्म्मको जाननेवाला जो राजा विचारके मनुष्योंको संग्रह करता है और सन्धि, विग्रह, यान, आसन द्वैध और समाश्रय इन षड्वर्गोंको प्रतिग्रह करता है, वही धर्म्म फल भोग किया करता है।

११५ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, इस विषयमें पुराने लोग इस प्राचीन इतिहासको कहा करते हैं; यह सज्ज-नोंसे आचरित लोक समाजमे सदा परम प्रमाण स्वरूप है। तपोवनमें जामदग्न्य परशु-रामके समीप ऋषियोंने जैसा कहा था, उसे इस वक्ष्माण विषयके सदृश मैंने सुना था। मनुष्य-सञ्चारसे रहित किसी जङ्गलके बीच फल मूल आहार करनेवाले नियममें निष्ठावान जितेन्द्रिय एक ऋषि-वास करते थे। वह दीक्षा दमसे युक्त, शान्त, स्वाध्याय रत, पवित्र, उप-वासके कारण शुद्धचित्त और सदा सतोगुण अवलम्बन करके रहते थे। उस बुद्धिमानके बैठे रहनेपर सब प्राणी उनका सद्भाव देखके उनके समीप जाते थे। सिंह, बाघ मतवाले हाथी, द्वीप नाम बाघ, गैंडा भालू और इसके अतिरिक्त जो सब भयानक रूपवाले जन्तु थे, वे रुधिर पीनेवाले सब जीव उनसे कुशल प्रश्न करते और सब कोई शिष्यकी तरह नम्रभावसे उस ऋषिके प्रियकार्य्योंके करनेमें प्रवृत्त होते

थे। अपर कहे हुए जानवर ऋषिके साथ सुख-प्रश्न करके यथा योग्य स्थानों पर गमन करते थे, उनके बीच एक पशुधा कुत्ता उस महामुनिको छोड़के नहीं जाता था। हे महा बुद्धिमान! वह भक्त सदा अनुरक्त, उपवाससे कृषित दुर्बल फल-मूल जलाहारी, शान्त शिष्टाकृतिके समान कुत्ता उस बैठे हुए महर्षिके चरण पर मनुष्यकी तरह गिरा और अत्यन्त स्नेहवद्ध होने लगा। अनन्तर मांसभक्षी महाबली स्वार्थ लाभके वास्ते अत्यन्त सन्तुष्ट क्रूर स्वभाववाला शार्दूल वहां पर उपस्थित हुआ। वह प्यासा बाघ जीभ निकालके और पूंछ खड़ी करके क्षुधासे पीड़ित होकर उस कुत्तेके मांसको भक्षण करनेकी इच्छा कर मुख बाके उसकी ओर आने लगा। हे राजन्! जीनेकी इच्छासे उस कुत्तेने मुनिसे जैसा वचन कहा था, उसे सुनो। महाराज! कुत्ता बोला,—हे भगवन्! यह कुत्तोंका शत्रु तेंदुआ मुझे भक्षण करनेकी इच्छा करता है। हे महामुनि! आपकी कृपासे जिस प्रकार इससे मुझे भय न होवे, हे महाबाहो! आप वैसा ही करिये; आप सर्व्वज्ञ हैं, इसमें सन्देह नहीं है। ऐश्वर्य्य युक्त सब जीवोंकी बोली और भावके जाननेवाले वह मुनि उसके भयका कारण मालूम करके कहने लगे।

मुनि बोले, हे बच्चा! तुम बाघसे मृत्युके वास्ते कुछ मत डरो; तुम निज रूपको त्यागके बाघ बनो। अनन्तर वह कुत्ता सुवर्णके समान आकृतिसे युक्त विचित्र अङ्गवाला शार्दूल हुआ उसके सब दांत बड़े बड़े होगये; तब वह निर्भय होकर बनके बीच स्थित हुआ। अनन्तर बाघ उसे अपने समान पशु देखके उसके साथ कुछ विरुद्ध आचरण न करके क्षणभरमें वहांसे चला गया। अनन्तर महाभयङ्कर विकराल शरीरसे युक्त, रुधिर लालसासे मुख बाये हुए भूखा शेर उस द्वीपीके समीप आने लगा। वह द्वीपी बनवासी दंष्ट्री भूखे शेरको देखके जीवन रक्षाकी इच्छासे ऋषिके शरणमें गया, ऋषि सहवासके कारण उसपर प्रीति करते थे; इस ही कारण उस द्वीपीको उसके शत्रुओंसे भी बलवान शेर बना दिया। महाराज! अनन्तर शेरने उसे निज जाति देखके नहीं मारा। कुत्ता उस समय व्याघ्रत्वको प्राप्त होके बलवान हुआ और मांस भोजन करने लगा, तब उसे फल मूल भोजन करनेमें साध न रही। महाराज! मृगराज जैसे सदा बनवासी जीवोंको भक्षण करनेकी इच्छा करता है, वह शेर भी उस समय वैसा ही हुआ।

११६ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, वह शेर कुटीके समीप निवास करते हुए मृगोंको मारके उनके मांससे तृप्त होकर शयन कर रहा था, उसही समय उदय हुए बादलके समान एक मतवाला हाथी उस स्थान पर उपस्थित हुआ। उस हाथीका गण्ड-स्थल प्रभिन्न होके मद झर रहा था दोनों कुम्भ बहुत बड़े थे और उसके शरीरमें पद्मचिन्ह विद्यमान था। उस दोनों विशाल दांतोंसे युक्त, अत्यन्त ऊंचा बड़ा शरीर और बादलके समान गम्भीर शब्द करनेवाला बलगर्व्वित मतवाले हाथीको आते देखके वह बाघ हाथीके भयसे डरके उस ऋषिके शरणमें गया। अनन्तर ऋषि सत्तमने उस बाघको हाथी बनाया। असल हाथी उस बाघको महामेघक समान हाथी होते देखके भयभीत हुआ। अनन्तर वह बाघ शलकी तथा कमल बनमें पद्मरेणु विभूषित और मदयुक्त होकर घूमने लगा। ऋषिकी कुटीके समीप रहके हाथीको इधर उधर घूमते हुए बहुत समय बीत गया। अनन्तर पहाड़की कन्दरामें रहनेवाले लालवर्णवाले केशरसे युक्त हाथियोंके कुलको नाश करनेवाला एक सिंह

उस स्थान पर आया। हाथी उस सिंहको आते देख उसके भयसे डरके ऋषिकी शरणमें गया। अनन्तर मुनिने उसे सिंह बनाया। तब उसने समान जातिके सम्बन्धके कारण वनके सिंहकी पर्व्वाह न की, उसे सिंह होते देखकर वनका सिंह भयभीत होकर चला गया। नकली सिंह उस महावनके बीच मुनिके आश्रमके समीप वास करनेलगा। उसके भयसे दूसरे पशु भयभीत होके जीवनकी इच्छासे तपोवनके निकट भी नहीं आते थे। किसी समय सब प्राणियोंका नाशक, रुधिर पीनेवाला अनेक प्राणियोंसे भयङ्कर आठ पांव, उर्द्ध नेत्रवाला वनवासी बलवान शरभ उस सिंहको संहार करनेके वास्ते मुनिके आश्रममें उपस्थित हुआ। हे शत्रुनाशन! मुनिने उस समय सिंहको अत्यन्त बलवान शरभ बनाया। जङ्गली शरभ मुनिके प्रचण्ड बलसे युक्त शरभको अपने अगाड़ी देख, शीघ्रताके सहित वनसे भाग गया। वह कुत्ता उस समय मुनिके जरिये शरभल प्राप्त करके उनके निकट सुखपूर्व्वक समय बिताने लगा। हे राजन्! अनन्तर सब पशु उस शरभके भयसे डरके और जीवन रक्षाके लिये यत्नवान होकर दशों दिशाओंकी ओर दौड़ने लगे। शरभ भी प्रतिदिन प्राणियोंके बधमें रत हुआ, इससे मांसको स्वादसे मोहित होकर फल मूल भोजन करनेकी इच्छा नहीं करता था। कुछ दिनोंके अनन्तर अकृतज्ञ स्वयोनिज शरभ लोहू पीनेकी इच्छासे अत्यन्त मुग्ध होकर मुनिको मारनेकी अभिलाष की। तब वह महाबुद्धिमान मुनि तप बल और ज्ञाननेत्रसे उसकी दुष्ट अभिलाषा जान गये और विदित होने पर उस कुत्तेसे कहने लगे।

मुनि बोले, तू पहिले कुत्ता था, मेरे तपोबलसे तेंदुआ हुआ, तेंदुएसे घोर बाघ बना; बाघसे मद चूनेवाला मतवाला हाथी हुआ। हाथीसे सिंह हुआ, अन्तमें सिंहसे फिर बल युक्त शरभल प्राप्त किया। मैंने तुझ पर प्रीति करके क्रमसे तुझे अनेक तरहसे सज्जन किया, परन्तु तेरा उन कुलोंके साथ सम्बन्ध नहीं हुआ; तू अपने कुलके सम्बन्धको त्याग न सका। रे पापी! तूं जब मुझे पापरहित जानके भी मारनेकी इच्छा करता है, तब तू आत्मयोनिको प्राप्त होकर कुत्ता हो होवेगा। अनन्तर मुनि-द्वेषी दुष्टचित्त अकृत मूर्ख शरभ ऋषिके शापसे फिर पहिले रूपको प्राप्त हुआ था।

११७ अध्याय समाप्त।

वह कुत्ता प्रकृतिस्थ होकर परम दीनदशासे ग्रस्त हुआ और ऋषिने उस पापात्माको हुङ्कारके जरिये उस तपोवनसे बाहर किया। इसी तरह बुद्धिमान राजा सत्य, पवित्रता सरलता, प्रकृति सत्य, श्रुतचरित्र कुल, इन्द्रियनिग्रह, दया, बलवीर्य्य प्रश्रय और क्षमा मालूम करके जो सेवक जिस कार्य्यके योग्य हो, उसे उस ही कार्य्यपर नियुक्त करे। बिना परीक्षा किये मन्त्री नियुक्त करना राजाको उचित नहीं है। जो राजा अकुलीन मनुष्योंसे घिरता है, वह कभी सुखी नहीं होसकता। सत्कुलोंमें उत्पन्न हुए मनुष्य राजासे निरपराधमें ही विद्यमान होनपर भी कभी पाप कार्य्यमें प्रवृत्त नहीं होते; और कुलहीन साधारण पुरुष साधुसंसर्गसे दुर्लभ ऐश्वर्य्य लाभ करके यदि निन्दित होवे, तो उस ही समय शत्रु होजाता है। कुलीन शिक्षित, बुद्धिमान्, ज्ञानविज्ञानके जाननेवाले सब शास्त्रोंके अर्थ और तत्वके जाननेवाले सहनशील स्वदेशीय, कृतज्ञ, बलवान, क्षमाशील, दानशील, जितेन्द्रिय, लोभरहित, जो कुछ मिले उसहीमें सन्तुष्ट रहनेवाले, स्वामीके मित्रोंके ऐश्वर्य्य लिप्सु, मन्त्रणाकार्य्यको जाननेवाले, जिस देश वा जिस समयमें जैसा कार्य्य करना होता है, उस विषयके जान-

नेवाले प्राणी मात्रके चित्तको प्रसन्न करनेमें अनुरक्त, सदाचारयुक्त, सदायुक्त चित्त, हितैषी आलसरहित, आचार युक्त, अपने विषयमें सन्धि-विग्रहके जाननेवाले, राजाके धर्म्म-अर्थ और कामके जाननेवाले पुर और जनपदवासी लोगोंके प्यारे, जो पर सेनाको भेद कर सकते हैं; उन लोगोंके सब व्यूहोंके तत्त्वज्ञ, सब सेनाको हर्षित करनेमें निपुण, इङ्गिताकार तत्वज्ञ, यात्रा स्थान विशारद, हाथियोंकी शिक्षामें निपुण, प्रगल्भ दानी, धर्म्मात्मा, बलवान, यथाउचित कार्य्य करनेवाले, पवित्र और पवित्र लोगोंसे घिरे हुए प्रसन्नमुख, सुखदर्शन, नायक, नीतिकुशल, गुण और चेष्टासे युक्त, सावधान, सूक्ष्म अर्थोंके जाननेवाले, मधुर और कोमल भाषासे युक्त धीर, शूर, महा ऐश्वर्य्यसे युक्त, और देशकालके अनुसार कार्य्य करनेवाले पुरुषको जो मन्त्री करता हैं, और उसकी अवज्ञा नहीं करता, चन्द्रमाकी चन्द्रिका समान उस राजाका राज्य बढ़ता है। इन सब गुणोंसे युक्त शास्त्र जाननेवाले, प्रजापालनमें तत्पर, धर्म्ममें निष्ठावान राजाको सभी चाहते हैं। धीर, क्षमावान पवित्र, समयके अनुसार तीक्ष्ण पुरुषके प्रयत्नके जाननेवाले, सेना युक्त श्रुतवान, श्रोता, तर्कवितर्कके जाननेवाले, मेधावी, धारणायुक्त यथारीतिसे कार्य्योंको करनेवाले, धर्म्मात्मा सदा प्रिय वचन कहनेवाले, अपकारमें क्षमावान्, दानमें विघ्न न करनेवाले, श्रद्धालु सुखदर्शक, आर्त्तोंके अवलम्ब, सदा सेवक लोग जिसके हितमें रत रहते, अहङ्काररहित, सुख दुःख सहनेवाले, तुच्छ कार्य्योंसे रहित, सेवकोंसे कोई कार्य्य सिद्ध होनेपर उनके उपकार करनेवाले, भक्तोंके प्यारे, लोगोंको संग्रह करनेवाले, सावधानतायुक्त, सदा सेवकोंकी उपेक्षा करनेवाले क्रोधरहित, ऊंचे चित्तवाले, उचित दण्ड देनेवाले, निरपराधीको दण्ड न देनेवाले, धर्म्मकार्य्यके प्रचारक, दूतनेत्र, प्रजाकी रक्षामें तत्पर और सदा धर्म्म-अर्थमें कुशल; ऐसे गुणोंसे युक्त राजा सबके ही अभिलषित होते हैं। हे नरनाथ! राज्य धारणके सहायस्वरूप उत्तम पुरुष-गुणोंसे परिपूरित योद्धाओंकी भी खोजना होता है, जो राजा समृद्धिकी इच्छा करे, उसे योद्धाओंकी अवमानना करनी उचित नहीं है। जिस राजाके युद्धमें निपुण, कृतज्ञ, शास्त्र जाननेवाले, धर्म्मशास्त्रमें रत, पदातियोंसे घिरे हुए निर्भय गजसवार, रथी, घुड़सवार अस्त्रविद्यामें निपुण योद्धा लोग वशमें रहते, हैं यह भूमण्डल उसके हाथके नीचे विलास करता है। जो राजा सब वस्तुओंके संग्रह करनेमें सदा आग्रह युक्त, उद्योगी और मित्रोंसे परिपूरित रहता है, वही राजसत्तम हैं। हे भारत! संग्रहीत मनुष्य और सहस्र घुड़सवार वीरोंके जरिये इस समस्त पृथ्वीको जय किया जा सकता है।

११८ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, जो राजा इसी भांति कुत्ते के समान सेवकोंको निज निज स्थानों तथा कार्य्य विशेषमें नियुक्त करता है, वही राज्य फल भोग किया करता है। कुत्ते का सम्मान करके उसे निज स्थानसे ऊंचे स्थान पर नियुक्त करना उचित नहीं; कुत्ता निज स्थानसे उच्च पद पाके प्रमत्त होता है। स्वजाति गणयुक्त सेवकोंको निज कार्य्योंमें लगाना उचित नहीं है। जो राजा सेवकोंको उचित कार्य्य सौंपता है, वह सेवक गुणसे युक्त राजा श्रेष्ठ फलोंका भोग किया करता है। शरभको जगह शरभ, सिंहकी जगह बलवान सिंह, बाघकी जगह बाघ और तेंदुएको ही स्थानमें नियुक्त करना उचित है। जो सेवक जिस कर्म्मके योग्य हो, उसे उस ही कार्य्य पर नियुक्त करना उचित है; कर्म्म फलकी इच्छा करनेवाले सेवकोंको विपरीत रीतिसे नियुक्त करना उचित नहीं है।

जो बुद्धिहीन राजा प्रमाणको अतिक्रम करके उलटी रीतिसे सेवकोंको स्थापित करता है, वह प्रजाको प्रसन्न नहीं कर सकता । मूर्ख, क्षुद्र, बुद्धिहीन, इन्द्रियोंके वशमें रहनेवाले और अकुलीन मनुष्योंको नियुक्त करना गुणवान राजाका कर्त्तव्य नहीं है । साधु सद्वंशमें उत्पन्न हुए, ज्ञानवान निन्दारहित, अक्षुद्र, पवित्र और दक्ष पुरुष पारिपार्श्विक हुआ करते हैं । जो नम्र, कार्य्योंमें तत्पर, शुद्ध, शान्त, स्वाभाविक गुणोंसे रमणीय और पद पर रहके निन्दित नहीं होते, वेही राजाके बहिश्चर प्राणस्वरूप हैं । सिंहके समीप सिंह ही सदा अनुगत होगा, जो सिंह नहीं है, वह सिंहके साथ मिलनेसे सिंहके समान फल लाभ करता है । जो सिंह होकर कुत्तोंसे घिरा रहता है, और सिंह कर्म्म फलमें रत होता है, वह कुत्तोंसे उपासित होकर सिंहके फलको भाग करनेमें समर्थ नहीं होता । हे नरनाथ ! शूर, बुद्धिमान, बहुश्रुत और कुलीनोंके जरिये सब पृथ्वीको जय किया जासकता है । हे भृत्यवत्सल प्रबल ! विद्याहीन, कोमलता रहित बुद्धिहीन असहाधन सेवकोंको संग्रह करना राजाको उचित नहीं है । स्वामीका कार्य्यसिद्ध करनेमें तत्पर पुरुष बाणकी तरह कार्य्यके भीतर प्रवेश करते हैं जो सब सेवक राजाके हितकारी हों, उनके विषयमें प्रिय वचन प्रयोग करना उचित है । राजाओंको प्रयत्नके सहित सदा कोषकी रक्षाकरनी उचित है, कोष ही राजाओंका मूल और बढ़ती करनेवाला हुआ करता है । तुम्हारा धान्यगृह बहुतसे अन्नकी राशिसे सदा परिपूरित और उत्तम सेवकोंसे सदा रक्षित रहे ; तुम धन धान्यसे युक्त रहो । तुम्हारे सेवक सदा उद्योगी और युद्धके जाननेवाले होवें घोड़ोंके हांकनेके विषयकी निपुणता इस समय तुम्हें अभिलषित होवे है । हे कौरव नन्दन ! तुम स्वजन और बान्धवोंके विषयोंको विचारते हुए मित्र तथा सम्बन्धियोंसे युक्त होके परकार्य्यके हितका अन्वेषण करो । हे तात ! यही कुत्तेकी उपमासे युक्त प्रजाके विषयमें तुम्हें जैसी नैष्ठिक बुद्धि स्थापित करनी होगी, उसे मैंने वर्णन किया ; फिर अब क्या सुननेकी इच्छा करते हो ?

११९ अध्याय समाप्त ।

युधिष्ठिर बोले, हे भारत ! आपने राजधर्म्मार्थोंके जाननेवाले पहिले राजाओंके आचरित बहुतसे राजवृत्तका वर्णन किया है, वह सब पूर्व्वदृष्ट साधुसम्मत राजधर्म्म जिसे आपने विस्तार पूर्व्वक कहा है,—हे भरतश्रेष्ठ ! उसे संक्षिप्त करके जो धारण किया जा सके, उसे ही वर्णन करिये ।

भीष्म बोले, महाराज ! सब जीवोंकी रक्षा करनी ही क्षत्रियधर्म्म है, यही सबसे श्रेष्ठ है जिस प्रकार उनकी रक्षा करनी होती है, उसे सुनो । सांपोंको खानेवाला मोर जैसे विचित्र रूपको धारण करता है, वैसे ही धर्म्मज्ञ राजा अनेक तरहके रूप धारण करे । क्रूरता, कुटिलता, अभयदान, सत्य और सरलता इन सबके मध्यवर्त्ती होकर जो सतोगुणको अवलम्बन करता है, और वही राजा सुखी होता है जिस विषयमें जो हितकर होता हैं, वही उस समयका रूप है अर्थात् दण्डके समय क्रूरता और अनुग्रहके समय शान्त्वना दिखावे, क्यों कि अनेक रूपधारी राजाके सूक्ष्म विषय भी नष्ट नहीं होते । जैसे शरदकालमें मोर मूक हुआ करता है, वैसे ही राजा मौनावलम्बन करके सदा मन्त्रणा गोपन करे ; श्रीमान मधुर वचन बोलनेवाला और शास्त्र विशारद होवे जलके झरनेके समान मन्त्रभेद आदि आपदोंके द्वारपर सदा सावधान रहे ; पर्व्वतके समीप वर्षाके जलसे उत्पन्न हुई नदीके जल समान

किस ब्राह्मणोंके निकट पूर्ण रीतिसे शास्त्र ग्रहण करे; अर्थ कामसे युक्त राजा धर्मध्वजीके समान शिखा धारण करे अर्थात् योग्यता चिन्ह क्रूरता आदि प्रदर्शित करे। राजा सदा दण्ड उद्यत करके प्रजा-पालनमें रत रहे; जैसे लोग ऊखको काटके पेरकर रस ग्रहण करते हैं, वैसा न करके जैसे बड़ेवृक्ष ताड़ और खजूर आदिकी रक्षा करके उनके रसको ग्रहण किया जाता है, राजा वैसे ही प्रजासमूहके आय व्ययको देखकर उनकी रक्षा करके उनसे धन ग्रहण करे।

राजा अपने पक्षके लोगोंके साथ शुद्ध व्यवहार करे और विरोधियोंके भूमिमें उत्पन्न हुए शस्य आदिकोंको घोड़े आदिकोंको चराके नष्ट करावे, सहायोंसे युक्त होकर युद्धके लिये यात्रा करे और अपनी विकलता देखके स्थिर रहे। वनमें फूल ग्रहण करनेको तरह धन हरते हुए शत्रुओंके दोषोंको विस्तारित करे और मृगया आदिके छलसे दूसरेके राज्यमें जाके पराये पक्षका विवासित किया करे। दूसरेके किलेके स्वामीके साथ सन्धि करके देवता दर्शन आदि छलसे दूसरेके किलेमें अकस्मात् प्रवेश करके पर्वतके समान बड़े और उन्नत विरुद्ध राजाओंका विनाश करे; और आवश्यक छायाका आशा करके गुप्त रीतिसे रणकार्य्यका निबाहे। रात्रिमें भौरकी तरह प्रावृट्कालमें निर्जन स्थानमें निवास करे; मयूरके गुणको अवलम्बन करके अदृश्य होकर अन्तःपुरमें भ्रमण करे, कभी तलत्राण परित्याग न करे, आप ही अपनी रक्षा करे; दूतोंके मालूम हुए स्थानोंमें धावो, कञ्चको और रसोइयें आदि शत्रुओंसे भेदित होनेपर अपनी और आते हुए विषादि रूप पाशको रोके। विष आदिके मालूम होनेमें कठिनता होने पर उस कपट-स्थानमें स्वयं जाके उसे नष्ट करे; विष देनेवाले कुटिल क्रूर पुरुषोंका वध करे।

स्थूल पक्ष अर्थात् सब सेनाके पक्ष-स्थानीय शिविर सम्बन्धीय वार-वनिता अर्थात् नट-नर्तक आदिको नष्ट वा मोरकी तरह दूर कर देवे, दृढ़ मूल सेवक और शूरपुरुषोंको स्थापित करे। सदा मयूरकी तरह निज इच्छानुसार बड़े कार्य्योंका आचरण किया करे। भ्रमरसमूह जैसे घने वनमें प्रविष्ट होके वनको पत्तोंसे रक्षित करते हैं, वैसे ही राजा सेनाके सहित मिलकर शत्रुराज्यको आक्रमण करनेमें प्रवृत्त होवे,। इसी भांति बुद्धिमान राजा मोरकी तरह निज राज्य पालन करे। बुद्धिसे आत्मसंयम अर्थात् इस प्रकार कार्य्य करना उचित है, ऐसा ही नियम करे; और दूसरेको बुद्धिके अनुसार उस विषयका निश्चय करना योग्य है; शास्त्रमें कही हुई बुद्धि-शक्तिके जरिये आत्मगुणकी प्राप्ति होती है यही शास्त्रोंका प्रयोजन है। शान्त वचनसे दूसरेको विश्वास उत्पन्न करे और अपनी शक्ति दिखाता रहे, सब तरहसे बीते और अनागत विषयोंके विचारके जरिये ऊहापोह कौशलरूपी बुद्धि शक्तिसे कर्त्तव्य विषयोंके निश्चयका विचार करे। बुद्धिमान पुरुष सान्त्व-याग अवलम्बन करके कार्य्याकार्य्यके प्रयोजक होवे और निगूढ़ बुद्धि और पुरुषके विषयमें उपदेशको अपेक्षा न करे। जलमें डालनेसे जैसे गर्म लोहा उस ही समय शीतल होजाता है, वैसे ही बुद्धिमान पुरुष बुद्धिशक्तिके जरिये वृहस्पतिके समान होके भी यदि निकृष्ट बात कहें अर्थात् अपनी निर्बुद्धि-प्रमादसे युक्त होवें, तब वे सदा शान्ति अवलम्बन करके निज भावके स्वास्थ्यकी इच्छा किया करें। राजा अपने वा दूसरेके आगमनके जरिये सब उपदिष्ट कार्य्योंकी जिज्ञासा करे। अर्थ विधानके जाननेवाले राजा कोमल स्वभाव और बुद्धिमान तथा शूरपुरुष अथवा दूसरे जो बलशाली होवें, उन्हें निज कार्य्योंमें नियुक्त करे। अनन्तर आयतातन्त्रो जैसे सब स्वरोंको

अनुवर्त्तिनी होती है, वैसे ही वह उन लोगोंको निज निज योग्यतानुसार कार्य्योंमें नियुक्त देखकर सबका ही अनुवर्त्तन करे, धर्म्मके अनुसार विषयमें प्रिय आचरण करे। जिस राजाको प्रजासमूह 'ये हमारे हैं' ऐसा समझती है, वह पर्व्वतकी तरह अचल हुआ करता है। सूर्य्य जैसे बड़ी किरण मण्डलको प्रकाशित करता है, राजा वैसे ही कार्य्योंको सिद्ध करते हुए प्रिय और अप्रियको विषयके समान समझे सब प्रकारसे केवल धर्म्मकी रक्षा करे। जो लोग कुलके स्वभाव, देश विशेष करके धर्म्मज्ञ, मीठे वचन बोलनेवाले, मध्य अवस्था, निर्दोष, हित विषयमें रत, सावधान, लोभरहित, शिक्षित, जितेन्द्रिय, धर्म्ममें निष्ठावान, धर्म्मज्ञ और अर्थ रक्षा करनेमें समर्थ हैं, उन्हीं पुरुषोंको राजा सब कार्य्योंमें नियोजित करे। राजा इसी प्रकार दूतोंके जरिये सब वृत्तान्त मालूम करे और सन्तुष्ट होकर इसी भांति आगम तथा जातिके विषयोंके जाननेमें नियुक्त होके भलीभांति सब कार्य्योंका अनुष्ठान करे। जिसके क्रोध और हर्ष निष्फल नहीं होते और जो स्वयं सब कार्य्योंको देखा करते हैं, तथा आत्मप्रत्ययही जिसका खजाना है, उस राजाके पक्षमें पृथ्वी ही वसुदात्री हुआ करती है। जिसकी कृपा स्पष्टरीतिसे मालूम होती है, और जो यथार्थ जानके निग्रह करते हैं, और जो राजा आत्मरक्षा करते हुए राज्यकी रक्षा किया करते हैं, वेही राजधर्म्मके जाननेवाले हैं। उदय होते हुए सूर्य्य जैसे किरण मण्डलके जरिये मालूम होता है, वैसे ही राजा सदा निज राज्यको देखता रहे, और राज्य तथा पर राज्य विषयके समाचारोंको मालूम करे और आप निज बुद्धिके प्रभावसे सब कार्य्योंका अनुष्ठान करे। राजा धन प्राप्त करनेके समय धन संग्रह करे और अर्थवत्ताके विषयको किसीके समीप प्रकाशित न करे; बुद्धिमान राजा प्रति दिन गऊ दुहनेकी तरह पृथिवीसे अन्न दुहा करे। जैसे भौंरा यथा क्रम फूलोंसे मधु ग्रहण करता है; वैसे ही राजा धीरे धीरे द्रव्य ग्रहण करके सञ्चय करे। शास्त्र जाननेवाला बुद्धिमान राजा सञ्चय करनेसे जो धन बाकी रहे, उसे ही धर्म्मार्थ और कामार्थमें व्यय करे। सञ्चित अर्थको कभी व्यय न करे, धन थोड़ा होनेपर भी उसे अग्राह्य न करे और शत्रुओंको भी अवज्ञा करनी उचित नहीं है। बुद्धिसे अपनेको समझावे और निर्बुद्धि पुरुषोंका विश्वास न करे। सन्तोष, दक्षता, सत्य, बुद्धि, देह, धीरज, वीरता, देश और समयमें अप्रमाद, थोड़े वा बहुत धनके विशेष रूपसे वृद्धि विषयमें ये आठ विषय उद्दीपक हुआ करते हैं। अग्नि थोड़ी होनेपर भी घृतसे युक्त होनेपर बढ़ती है, एक बीजसे सहस्र अंकुरे उत्पन्न हुआ करते हैं, इससे बहुतसे आय व्ययके विषयको पूरी रीतिसे सुनकर थोड़े धनकी कभी अवज्ञा न करे। प्राचीन शत्रुके बालक होनेपर भी उसे बालक समझना उचित नहीं है, क्यों कि वह विपक्षियोंको अत्यन्त प्रमत्त देखनेसे ही नष्ट करता है। समय पर अन्य पुरुष उसके मूलको हरण न करें; इससे समयके जाननेवाले पुरुष ही राजाओंके बीच वरिष्ट हैं। शत्रुकी कीर्त्ति हरण करे और उसके धर्म्ममें बाधा देवे और धन विषयक उसके कार्य्योंमें अत्यन्त ही विघ्न किया करे। वैर करनेवाला शत्रु निर्बल हो, वा बलवान ही होवे, ऊंचे चित्तवाले मनुष्य शत्रुसे किसी प्रकार हीन न होवें। क्षय, वृद्धि, पालन और सञ्चयका विचार करके बुद्धिमान राजा ऐश्वर्य्य काम और विजयकी इच्छावाले राजाके एकत्र मिलते देखके उसके साथ सन्धि करे; इससे बुद्धिमान पुरुषका आश्रय करना राजाको अवश्य उचित है। तीक्ष्ण बुद्धिवाला पुरुष बलवान पुरुषको नष्ट कर सकता है, बढ़ा हुआ बल बुद्धिके जरियेसे ही प्रतिपालित हुआ करता है। बढ़े हुए

वैरीको बुद्धिबलसे नष्ट किया जाता है, इससे बुद्धिके अनुसार जो कार्य्य किया जाता है वह श्रेष्ठ है; दोष रहित और पुरुष सब काम्य विषयोंकी अभिलाष करके थोड़े बलसे ही उसे प्राप्त करते हैं; और जो अपनेको याचमान मनुष्योंसे युक्त होनेकी इच्छा करते हैं, वे अल्पमात्र कल्याण पात्रको पूर्ण नहीं कर सकते, इससे राजा प्रजाके विषयमें प्रीतियुक्त होकर सबके निकटसे लक्ष्मीके मूल धनको ग्रहण करे प्रजाको बहुत समय तक पीड़ित करके बिजली गिरनेकी तरह उसके ऊपर पतित न होवे। उद्योगसे ही विद्या, तपस्या और बहुतसा धन हो सकता है, वह उद्योग बुद्धिके वशमें होकर देहधारी पुरुषोंमें निवास करता है, इससे सदा उद्योग करनेमें यत्नवान होना उचित है। जिसमें बुद्धिमान मनस्वी लोग, सुरराज विष्णु और सरस्वती सदा वास करती हैं, और सब प्राणी सदा जिसमें स्थित रहते हैं। विद्वान् पुरुष उस शरीरको कभी अवज्ञा न करे। लोभी पुरुषको सदा दानसे वशमें करे, लोभी पराया धन पाके कभी तृप्त नहीं होता। सुख भोगनेमें सभी लोभी हुआ करते हैं; जो पुरुष धनहीन होता है, वह धर्म्म और कामको त्याग करता है। लोभी मनुष्य दूसरेके धन, भाग, पुत्र, स्त्री और समृद्धि सबकी ही इच्छा करता है। इस संसारमें लोभी पुरुषके विषयमें सब दोष ही सम्भव हो सकते हैं; इससे राजा कभी लोभी पुरुषके विषयमें स्नेह प्रकाशित न करे; नीच पुरुषको देखते ही दूर करे; बुद्धिमान पुरुष शत्रुओंके सब कार्य्यों तथा समस्त विषयोंको नष्ट करे। हे पाण्डुपुत्र! ब्राह्मण मण्डलीमें विज्ञान युक्त मन्त्रीकी रक्षा करनी होगी, जो राजा विश्वासी और कुलीन है, वह सबको वश करनेमें समर्थ होता है। हे नरनाथ! यही सब मैंने विधिपूर्व्वक राजधर्म्मको संक्षेपरीतिसे वर्णन किया तुम इसे बुद्धिशक्तिके जरिये धारण करो। जो पुरुष गुरुका अनुसरण करते हुए यह सब धर्म्म हृदयमें धारण करते हैं, वेही पृथ्वीको पालन करनेमें समर्थ होते हैं। जिसे राजाके अनीतिके कारण हठ प्रणीत दैवसे प्राप्त हुआ सुख विधिपूर्व्वक दीखता है, उसकी गति तथा उसे श्रेष्ठ राज्य सुख प्राप्त नहीं होता। सन्धि-विग्रह आदि विषयोंमें सावधान राजा धन युक्त बुद्धि तथा शील सम्पन्न युद्धमें दुष्ट पराक्रमी शत्रुओंको देखकर शीघ्रताके सहित उनका बध करे। अनेक क्रियासे मार्गके सहारे उपायको देखे, अनुपायमें बुद्धि न लगावे; निर्दोष पुरुषोंमें भी जो पुरुष दोष देखता है, वह योग्य स्त्री बहुतसे धन-यशको भोग नहीं कर सकता, सुहृदोंको जानके प्रीतिको प्रवृत्ति होने पर जब दो मित्र एक कार्य्यमें लगते हैं, उन दोनोंके बीच जो पुरुष बड़े भारको उठाता है, विद्वान् पुरुष उसही श्रेष्ठ मित्रकी प्रशंसा करते है। हे राजन्! मेरे कहे हुए इन सब राज-धर्म्मोंका आचरण करो, मनुष्योंका पालन करनेमें बुद्धि लगाओ; इससे अनायास ही पुण्यफल पाओगे, क्योंकि धर्म्म ही सब लोकोंकी जड़ है।

१२० अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, पितामहके जरिये यह सनातन राजधर्म्म वर्णित हुआ; अत्यन्त बृहत् दण्ड ही सबका नियन्ता है, क्यों कि दण्डसे ही सब विषय प्रतिष्ठित हो रहे हैं। देव, ऋषि, महानुभाव पितर, यक्ष, राक्षस और पिशाच लोग विशेष करके साध्य तथा तिर्य्यग् योनि आदि सब प्राणियोंके विषयमें सर्व्वव्यापी महातेजस्वी दण्ड श्रेष्ठ है, यह आपने कहा है। देवता असुर और मनुष्योंके सहित चराचर सब लोक ही दण्डमें आसक्त होरहे हैं। हे भरत प्रवर! इससे मैं इसे यथार्थ रूपसे जाननेकी इच्छा करता हूं, दण्ड किसे कहते हैं और वह कैसा है? उसका

कैसा आकार है तथा उसका परम आश्रय क्या है? दण्डका कैसा स्वरूप है? रीति कैसी है? किस तरहकी मूर्त्ति है? कैसा तेज है और दण्ड प्रजाके विषयमें सावधान होके किस प्रकार जाग्रत रहता है? पहिले क्या जाना जाता है, और दण्ड नाम श्रेष्ठ वस्तु ही किस तरहकी है, दण्डका आकार किस तरहका है; और उसकी गति किसे कहते हैं?

भीष्म बोले, हे कुरुवंशावतंस! दण्ड और उसका व्यवहार जिस तरहका है, उसे सुनो। इस लोकमें जिसमें सब अधिकार रहे, उसे ही केवल दण्ड कहा जाता है। महाराज! पूरी रीतिसे धर्म्मका प्रकाश "व्यवहार" नामसे कहा जाता है। लोकके बीच सावधान स्वरूप राजाके विषयमें उस धर्म्मका लोप नहीं होता। इसी भांतिसे व्यवहारका व्यवहारत्व दृष्ट हुआ करता है, अवहार अर्थात् नीच मार्गोंके जरिये दूसरेका धन नहीं हरण किया जाता उसे ही व्यवहार कहते हैं। हे राजन्! इसके अतिरिक्त पहिले समयमें मनुने यही वचन कहा, कि प्रिय और अप्रिय समान रूपसे उत्तम प्रणीत दण्डके जरिये जो पूर्ण रीतिसे प्रजा पालन करते हैं, वही केवल धर्म्म है। हे नरेन्द्र! मैंने जो ब्रह्माके कहे हुए महत् वचनको कहा है, पहिले समयमें प्रथम मनुने इस वचनको कहा था; पहिलेसे ही यह वचन कहा गया था, इस ही कारण पण्डित लोग इसे प्राग्-वचन कहा करते है। जिस धर्म्मसे परस्वापहरण दोष निवारित होता है, वही धर्म्म कभी हेतु व्यवहार' नामसे कहा जाता है। सुप्रणीत दण्डमें धर्म्म अर्थ, काम ये तीनों सदा विद्यमान रहते हैं; दैव दण्ड सबसे श्रेष्ठ है; उसका रूप जलती हुई अग्निके समान है दण्डका आन्तरिक रूप दुष्टोंको सन्तापित करनेवाला है, इसीसे क्रूरताके कारण अग्निको समानता धारण करता है। दण्डका बाह्य रूप नीलोत्पल दलके समान श्याम वर्ण है, अर्थात् राजदण्डमें द्वेष और धन लोभ आदि रहनेसे उसमें मलिनता है; उस हीसे यह श्यामवर्ण है। कोई मानभङ्गके कारण दण्डित होते हैं, कोई धन हरणके कारण दण्डित हुआ करते हैं; कोई अङ्ग विकलताके सबब दण्ड पाते हैं, कोई प्राणनाशके निमित्त दण्डभागी होते हैं; इस ही कारण चारों निमन्त्रणसे प्राणियोंका वध हुआ करता है; इससे दण्डको चतुर्द्दंष्ट कहा जाता है। प्रजा समूहसे धन वसूल, राज्यसे कर लेना वादी प्रतिवादीसे दूना धन ग्रहण करना और कायर ब्राह्मणोंसे सर्व्वस्व वसूल करना,— दण्डसे ये चार प्रकारके अर्थ संग्रह होते हैं, इसी कारण दण्डको चतुर्भुज रूपी कहा जाता है। वादी प्रतिवादीके निवेदन और उत्तर दान आदिक आठ प्रकारके कारणोंसे दण्ड भ्रमण करता है, इसीसे अष्टपाद कहाता है। राजा, सेवक, पुरोहित आदि बहुतोंके देखते रहनेसे अनेक नेत्रवाला है। अवश्य सुनने योग्य हैं, इस ही निमित्त शङ्कु कर्ण अर्थात् तीक्ष्ण श्रवणवाला है; अत्यन्त उत्फुलित है, इसहीसे खड़े हुए रोएंवाला है; अनेक सन्देहोंसे जटित है, इसीसे जटी कहाता है। वादी प्रतिवादोके वाक्यसे भिन्न मतके सबब दो जोभवाला है। आहवनीय अग्निही दण्डका नेत्र है, इस ही कारण ताम्रास्य कहाता है। काले हरिणके चमड़ेके जरिये दण्डको देह ढकी रहती है, इस ही कारण मृगराज तनुच्छद नाम हुआ है। दुर्द्धर्ष दण्ड सदा यह प्रचण्डरूप धारण किया करता है। तलवार, धनुष, गदा, शक्ति, त्रिशूल, मुद्गर, बाण, मूषल, फरसा, चक्र, पाश, दण्ड, ऋष्टि और तोमर 'आदिक इस लोकमें जो कुछ प्रहार करनेकी वस्तु हैं, दण्ड ही उन सर्व्वात्मा स्वरूपसे मूर्त्तिमान रूपी होकर घूमता है। छिद, भेद, रुज करना, कृन्तन, विदारण, विपाटन, घातन और सम्मुख दौड़ते

हुए दण्ड ही भ्रमण किया करता है। अक्षि, विश्वप्रन, धर्म्म, तीक्ष्ण, वर्म्मा, दुराधर, श्रीगर्भ, विजय, शान्ता, व्यवहार, सनातन शास्त्र, ब्राह्मण, मन्त्र, शास्ता, प्राग्वहद्दर, धर्म्मपाल, अक्षर, देव, सत्यग, नित्यग, अग्रज, असङ्ग, रुद्रतनय, मनु, ज्येष्ठ और शिवस्कर है। हे युधिष्ठिर! दण्डके ये सब नाम वर्णित हुए। दण्ड ही भगवान विष्णु और दण्ड ही प्रभु नारायण है, सदा महत् रूप धारण किया करता है, इस ही निमित्त महत् पुरुष शब्दसे पुकारा जाता है। ब्रह्मकन्या लक्ष्मी, वृत्ति, सरस्वती, जगद्धात्री दण्डनीति अर्थात् दण्डके सहित नीति ये सभी दण्ड स्वरूप हैं; इससे दण्डका विग्रह अनेक प्रकारका है! हे भारत! अर्थ, अनर्थ, सुख, दुःख, धर्म्माधर्म्म, बलाबल, दौर्भाग्य, भागधेय पुण्यापुण्य, गुणागुण, काम अकाम, ऋतु मास, दिन, रात्रि, क्षण, अप्रमाद, हर्ष, क्रोध, शम, दैव, पुरुषार्थ मोक्ष, भय, अभय, हिंसा, अहिंसा, तपस्या, यज्ञ, संयम, विष, अविष, अन्त, आदि, मध्य, कृत्य, सबका प्रवञ्चन, मद, प्रमाद, दर्प, दम्भ धीरज, नीति, अनीति, शक्ति, अशक्ति, मान, स्तम्भ, व्यय, अव्यय, विनय विसर्ग, काल, अकाल, मिथ्या, ज्ञान, सत्य, श्रद्धा अश्रद्धा, क्लीवता, व्यवसाय, लाभ, हानि, जय, पराजय, तीक्ष्णता, मृदुता, मृत्यु, आगम, अनागम, विरोध अविरोध, कार्य्य, अकार्य्य, बलाबल, निन्दा, अनिन्दा, धर्म्म, अधर्म्म, अपत्रपा, अनत्रपा, श्री, सम्पद, विपद, पद, तेज सब कर्म्म, पाण्डित्य, वाक्यशक्ति और तत्त्व बुद्धिता; हे कौरव्य! इसी प्रकारकी इस लोकमें धर्म्मकी बहुरूपता हुआ करती है। लोकके बीच यदि दण्ड न रहे, तो लोग आपसमें एक दूसरेको प्रमथित करें। हे युधिष्ठिर! दण्डभयसे ही लोग आपसमें प्रहार नहीं करते। हे राजन्! दण्डसे वध्यमान प्रजा सदा राजाको वर्द्धित करती है इससे दण्ड ही परम आश्रय है। हे नरेश्वर! सत्यसे युक्त धर्म्म शीघ्र ही उन सब लोगोंको अवस्थापित करता है; सत्यका पक्षपाती धर्म्म ब्राह्मणमूर्त्ति स्वरूप है। धर्म्मयुक्त सब ब्राह्मण वेदज्ञ हुआ करते हैं। वेदोंसे ही यज्ञ उत्पन्न हुआ है, यज्ञ देवताओंको प्रीतियुक्त किया करता है; देवता लोग प्रसन्न होकर सदा इन्द्रकी स्तुति करते हैं, इन्द्र भी उन सब प्रजा समूहके ऊपर कृपा करके अन्नदान किया करते हैं, सब प्राणियोंका प्राण सदा अन्नसे ही प्रतिष्ठित है, इससे प्रजासमूह भी अन्नमें प्रतिष्ठित हैं और दण्ड इन प्रजासमूहके विषयमें जाग्रत रहता है, इस ही भांति प्रयोजनके अनुसार दण्ड क्षत्रियत्वको प्राप्त हुआ और दण्ड सदा सावधान अक्षय होके प्रजाको रक्षा करते हुए जाग्रत रहता है। ईश्वर, पुरुष, प्राण सत्व, चित्त, प्रजापति, भूतात्मा और जीव इन आठ नामोंसे दण्ड उक्त हुआ करता है। जो राजा बलसे युक्त, और धर्म्म व्यवहार, धर्म्म ईश्वर तथा जीव रूपसे पञ्चविध है; ईश्वरने उसे दण्ड और ऐश्वर्य्यदान किया है। हे युधिष्ठिर! सत्वंशमें उत्पन्न हुए धनशाली अमात्य, बुद्धि, ओजस्विता, तेज और देह इन्द्रिय, बुद्धि-सामर्थ वा अनन्तर स्थानमें वध्यमान हाथी आदि आठायें सब बल और राजाके कोष-वृद्धिका कारण है। हाथी, घोड़े, रथ, पदाति, नौका, अवैतनिक बोझा ढोनेवाले, देश विशेषमें उत्पन्न हुई वस्तु और भेड़के रोम आदिकोंसे बने हुए आसन आदि राजाओंके अष्टाङ्ग बलरूपसे वर्णित हुए हैं; अथवा रथी, गजपति, गजारोही, घुड़सवार, पैदल सेना, मन्त्री, चिकित्सक, भिक्षुक प्राड्विवाक, ज्योतिषी, दैवचिन्तक, कोष मित्र, धान्य सब सामग्री और सप्त-प्रकृति राज्यके अष्टाङ्गयुक्त शरीर रूपसे समझे जाते हैं; परन्तु दण्ड ही राज्यकी आदि और दण्ड ही राज्यका कारण है। ईश्वरके जरिये प्रयत्नसे क्षत्रियोंके

निर्मित दण्ड प्रदत्त हुआ है, वह सब प्रिय अप्रिय सम, स्वरूप दण्डके ही आधीन है। प्रजापतिके जरिये लोक रक्षाके वास्ते और स्वधर्म स्थापनके लिये, जिस प्रकार धर्म प्रदर्शित हुआ है, उस धर्मस्वरूप दण्डसे बढ़के राजाओंके वास्ते दूसरा कुछ भी पूजनीय नहीं है। स्वामीके विश्वाससे उत्पन्न और वादी, प्रतिवादीके जरिये प्रवर्त्तित व्यवहार, इस अन्यतरका अभ्युपगम जिसका लक्षण हित युक्त दीखता है, वह दण्डका भर्त्‍-प्रत्यय लक्षण कहाता है। हे राजन्! परस्त्री गमन आदि दोषकी निवृत्तिके वास्ते प्रायश्चित्त आदि महा दण्ड वेदात्मा वा वेद-प्रत्यय नामसे कहा जाता है; और कुलाचार युक्त व्यवहारमें मौल तथा अपर-दण्ड शास्त्रोक्त नामसे कहा जाता है। उन तीन प्रकारके दण्डके बीच पहिला दण्ड क्षत्रियके आधीन है; क्षत्रियोंमें दण्ड स्थान रहना अवश्य उचित है। हे नरेन्द्र-निष्ठ प्रत्यय लक्षणयुक्त दण्ड क्षत्रियोंको अवश्य जानना चाहिये। और परपक्ष क्षेपण तथा निज पक्ष साधनरूप व्यवहार दण्ड प्रत्यय दृष्ट और मनु आदि महर्षियोंसे स्मृत होनेपर भी वह वेदार्थ गोचर हुआ है। इसरे दो व्यवहार धर्ममूलक हैं। वेदसे उत्पन्न हुए धर्मको गुण-दर्शी, कृतात्मा मुनियोंके जरिये धर्मके अनुसार धर्म्म प्रत्यय कहके वर्णित हुआ है। हे युधिष्ठिर! ब्रह्मोपदिष्ट व्यवहार प्रजासमूहकी रक्षा करता है, सत्य स्वरूप भूतिवर्द्धन व्यवहार ही तीनों लोकोंको धारण किये हैं। जो दण्ड, नामसे कहलाता है, उसे ही सनातन व्यवहार रूपसे देखा जाता है; व्यवहारसे जो दीखता है, वही वेद है; ऐसा निश्चय है, कि जो वेद है, और जो धर्म है, उसे ही सत्मार्ग जाने। पहिले समयमें पितामह ब्रह्मा प्रजापति हुए थे, वह देवता, असुर, राक्षस, मनुष्य और सर्पोंके सहित सब लोकोंकी सृष्टि करनेवाले हैं, इस ही कारण उनका भूलकर्त्ता नाम हुआ है। उस प्रजापतिसे ही यह भर्त्‍-प्रत्यय लक्षण व्यवहार प्रवर्त्तित होता है; उन्होंने इस व्यवहारका निदर्शन किया है, कि जो राजा निज धर्मके अनुसार प्रजा पालन करते हैं; उनके समीप माता, पिता, भाई भार्य्या और पुरोहित इन सबके बीच कोई भी अदण्ड नहीं हैं।

१२१ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, पुराने लोग इस दण्डकी उत्पत्तिके विषयमें इस प्राचीन इतिहासका प्रमाण दिया करते हैं। अङ्ग देशमें वसुहोम नामक एक विख्यात् राजा थे, वह महातपस्वी निज धर्मके जाननेवाले राजा भार्य्याके सहित पितरों और देवर्षियोंसे पूजित होकर मुञ्ज-पृष्ठमें गये थे सुवर्णमय सुमरुके निकट उस हिमालयके शिखर पर जहां मुञ्ज वटके नीचे रामने जटा धारण की थी। हे राजन्द्र! तभीसे व्रत करनेवाले, ऋषि लोग उस रुद्रसेवित प्रदेशको मुञ्जपृष्ठ कहा करते हैं। वह उस समय श्रुतिमय अनेक गुणोंसे युक्त होकर ब्राह्मणोंको अनुहार तथा देवर्षि समान हुए थे। किसी समय इन्द्रके सम्मानित सखा निर्भय चित्तवाले राजा मान्धाता उनके निकट उपस्थित हुए। मान्धाता वसुहोमको प्रकृष्ट तपसे युक्त देखकर विनीत भावसे उनके सम्मुख स्थित हुए। वसुहोमने भी राजा मान्धाताको पाद्य, अर्घ दिया और सप्ताङ्ग राज्यका मङ्गल अमङ्गल पूछने लगे। पहिले समयमें साधुओंके आचरणके यथावत् अनुयायी उस मान्धातासे वसुहोमने पूछा। हे राजन्! मैं आपका क्या कार्य करूं? हे कुरुनन्दन! राजसत्तम मान्धाता परम प्रसन्न होकर बैठे हुए महाबुद्धिमान वसुहोमसे कहने लगे।

मान्धाता बोले, हे नरसत्तम महाराज! आपने बृहस्पतिका सब मत अध्ययन किया है

और शुक्राचार्यके सब शास्त्रोंको भी आप जानते हैं; इससे दण्ड किस प्रकार उत्पन्न हुआ है, मैं इसे जाननेकी अभिलाषा करता हूं। इस दण्डके पहिले क्या जाग्रत रहता है और क्या श्रेष्ठ कहके वर्णित होता है? सम्प्रति दण्ड किस प्रकार क्षत्रियोंमें युक्त होकर स्थित होरहा है? हे महाबुद्धिमान्! आप मुझसे यही कहिये, मैं आचार्य्यका वेतन प्रदान करूंगा।

वसुहोम बोले, हे राजन्! प्रजासमूहके विनय रक्षाके निमित्त धर्म्म स्वरूप सनातन लोक संग्रहमें समर्थ दण्ड जिस प्रकार उत्पन्न हुआ है, उसे सुनो। सब लोगोंके पितामह भगवान ब्रह्माने यज्ञ करनेकी इच्छा करके अपने समान ऋत्विक किसीको न देखा! मैंने ऐसा सुना है, कि उस देव प्रजापतिने मस्तकके जरिये कई वर्ष पर्य्यन्त गर्भ धारण किया था; सहस्र वर्ष पूरा होनेपर उसके च्युत होनेके समय वह गर्भ गिरा। हे शत्रुनाशन! उस ही गर्भसे उत्पन्न हुआ बालक क्षुप नाम प्रजापति हुआ। हे महाराज! महानुभाव ब्रह्माके यज्ञमें वही ऋत्विक हुए थे। हे राजन्! प्रजापतिके उस यज्ञके आरम्भ होने पर दृष्टरूपका मुख्य कारण वह दण्ड अन्तर्द्धान हुआ। दण्डके अन्तर्द्धान होने पर प्रजा वर्णसङ्कर होने लगी, कार्य्य, अकार्य्य, भोज्य, अभोज्यका कुछ भी विचार न रहा। तब पेय और अपेय विषयोंमें विचार क्यों रहेगा? उस समय गम्य वा अगम्य कुछ भी न रहा, अपना धन और पराया धन समान हुआ; जैसे सारमेय मांसको हरण करते हैं, वैसे ही सब कोई आपसमें एक दूसरेके धनको हरनेमें प्रवृत्त हुए; बलवान लोग निर्ब्बलोंको मारने लगे; सब ही मर्य्यादा रहित होगये।

अनन्तर पितामह ब्रह्मा सनातन देव वरदाता महादेव विष्णुको पूर्ण रीतिसे पूजा करके बोले, हे केशव! इस विषयमें आपको कृपा करनी उचित है, जिससे प्रजा वर्णसङ्कर न होवे, आप वैसा ही उपाय करिये। अनन्तर देवसत्तम वह शूलधारी भगवान बहुत समय-तक विचार करके आपने ही आपनेको दण्ड रूपसे उत्पन्न किया; उससे धर्म्माचरणके कारण नीतिरूपी सरस्वती देवीने तीनों लोकमें विख्यात दण्डनीतिको उत्पन्न किया। शूलधारी भगवानने फिर कुछ देर ध्यान करके उसही दण्डकालके वास्ते एक एक पुरुषको अधीश्वर कर दिया। और सहस्र नेत्रवाले देवराजको देवताओंका ईश्वर किया; वैवस्वत यमको पितरोंकी प्रभुता दी; धन और राक्षसोंको अपने वशमें रखनेके वास्ते कुवेरके ऊपर भार अर्पण किया, सुमेरुको शैलपति और समुद्रको सरित्पति किया। जल और असुरोंके राज्यपर वरुणको प्रभुत्व करनेका भार दिया। मृत्युको प्राण और हुताशनको तेजका स्वामी बनाया। महानुभाव विशालाक्ष महादेव ईशानको रुद्र-गणका रक्षक और प्रभु कर दिया। वशिष्ठको ब्राह्मणों और अग्निको वसुओंका स्वामी बनाया सूर्य्यको तेज और चन्द्रमाको नक्षत्रोंको प्रभुता दी। अंशुमानको लता समूहका ईश्वर किया और द्वादश राहु कुमार स्कन्दको भूतोंके ऊपर राजत्व करनेकी आज्ञा दी। हे नरनाथ! संहार करनेवाले कालको सबका ईश्वर किया; शस्त्र, शत्रु, रोग और भोजन मृत्युके ये चार विभाग सुख और दुःख सर्व्वदेवमय राजोंका राजा दाता ही सबका ईश्वर है। शूलपाणि सब रुद्रगणोंके स्वामी हैं, ऐसे ही जन श्रुति है। महादेवने प्रजासमूहके स्वामी सब धर्म्मात्माओंमें श्रेष्ठ उस ब्रह्माके पुत्र क्षुपको पहिले इस दण्डका रक्षक किया था। अनन्तर उस यज्ञके विधिपूर्व्वक पूर्ण होनेपर महादेवने उस दण्डका सत्कार करके धर्म्म रक्षक विष्णुके ऊपर उसका भार अर्पित किया, विष्णुने उसे अङ्गिराको प्रदान किया, मुनिसत्तम अङ्गिराने इन्द्र और मरीचिको,

क्योंकि शिवने मनुको और मनुने ऋषियोंको इस धर्म्मयुक्त दण्डदान किया। ऋषियोंने लोक पालोंको और लोकपालोंने उसे क्षुपको दिया, अनन्तर क्षुपने आदित्य पुत्र मनुको उसे अर्पण किया श्राद्धदेवने सूक्ष्म धर्म्म-अर्थके कारणसे पुत्रोंको समर्पण किया। न्याय अन्यायको विचारके धर्म्मके अनुसार दण्ड विधान करना चाहिये; इच्छानुसार दण्ड देना उचित नहीं है। दुष्ट पुरुषोंके निग्रह करनेको दण्ड कहते हैं, सुवर्ण आदि दण्ड लोगोंका विभीषिका दिखाने मात्रके लिये होता है; शरीरको अङ्ग हीनता और वधका दण्ड अल्प कारणसे नहीं होता। शारीरिक दण्ड ऊंचे स्थान परसे गिरना रूपी देह त्याग तथा निजदेशसे निकाल देना ये विशेष दोषके दण्ड हैं। सूर्य्य पुत्र मनुने प्रजासमूहको रक्षाके वास्ते उस दण्डको यथा रीतिसे दान किया था; यह दण्ड ही प्रजाको पालन करते हुए जाग्रत रहता है। भगवान इन्द्र सदा जाग्रत रहते हैं, इन्द्रसे विभावसु अग्नि जाग्रत हैं, अग्निसे वरुण जाग्रत हैं; प्रजापतिसे विनयात्मक धर्म्म निरन्तर जाग्रत रहता है; धर्म्मसे ब्रह्मपुत्र व्यवसाय, व्यवसायसे तेज प्रजा पालन करते हुए जाग्रत है; तेजसे औषधी, ओषधियोंसे पर्व्वत, पर्वतोंसे रस और रस गुण जाग्रत रहते हैं; उससे निर्ऋतिदेवी जागरित होती है, निर्ऋतिसे ज्योतिर्गणसे जाग्रत हुआ करते हैं; ज्योतिर्गण वेद प्रतिष्ठित होता है, उससे प्रभु हयशिरा जाग्रत होते हैं, उनसे अव्यय प्रभु पितामह ब्रह्मा जाग्रत हुआ करते हैं; पितामह भगवान शिवस्वरूप महादेव जागरित होते है, शिवसे विश्वदेव और विश्वदेवोंसे ऋषि लोग; ऋषियोंसे भगवान चन्द्रमा, चन्द्रमासे सनातन देवता लोग और देवताओंसे जगत्के बीच ब्राह्मण लोग जाग्रत रहते हैं; इसे धारण करो, ब्राह्मणोंसे क्षत्रिय लोग धर्म्मके अनुसार सब लोगोंकी रक्षा करते हैं; क्षत्रियोंसे स्थावर जङ्गम आदि सब प्रजा इस लोकमें, जाग्रत हो रही है; और दण्ड उन प्रजा समूहके ऊपर जागरित होके निवास करता है। पितामहके समान प्रभावसे युक्त दण्ड सबको ही संयत करता है; हे भारत! पहिले, मध्य और अन्तमें जाग्रत रहता है। सब लोकोंके ईश्वर महादेव प्रजापति देवोंके देव सर्व्वमय कपर्द्दी शङ्कर रुद्र भव स्थाणु उमापति प्रभु शिव सदा जागरित रहते हैं, आदि, मध्य और अन्तमें इसी भांति दण्ड विख्यात है। धर्म्म जाननेवाला राजा यथारीतिसे इस दण्डको धारण करते हुए वर्त्तमान रहे।

भीष्म बोले, हे भारत! जो मनुष्य इस वसुहोमके मतको सुनते और सुनकर पूर्णरीतिसे अनुष्ठान करते हैं, वे समस्त काम्य विषयोंको प्राप्त करते हैं। हे राजन्! यही तो दण्डका सब विषय मैंने तुम्हारे समीप वर्णन किया; दण्ड ही धर्म्मसे आक्रान्त सब लोकोंका नियन्ता है।

१२२ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे तात! धर्म्म, अर्थ और कामके निश्चयको सुननेकी इच्छा करता हूं, लोकयात्रा पूर्णरीतिसे किससे प्रतिष्ठित हुआ करती है? धर्म्म, अर्थ और कामका मूल क्या है और इस त्रिवर्गकी उत्पत्तिका कारण ही क्या है? ये सब परस्पर मिलित और पृथक् पृथक् होकर किस निमित्त स्थित करते हैं?

भीष्म बोले, मनुष्य लोग जब जगत्के बीच धर्म्मपूर्व्वक अर्थ निश्चय करनेके वास्ते सुचित्त होते अर्थात् मैं गर्भाधानमें कही हुई विधिके अनुसार ऋतुकालमें निज स्त्रीका सङ्ग करके पुत्र लाभ करूंगा; मनुष्यके मनमें जब ऐसी प्रवृत्ति उत्पन्न होती है, उस समय धर्म्म-अर्थ और काम यह त्रिवर्ग काल प्रभव होके प्रकट मिलता है, धर्म्म ही अर्थका मूल है और काम अर्थका

फल है; यह उसे उत्तम ज्ञान करता है; और कामका मूल इन्द्रिय प्रीति है, धर्म, अर्थ, काम ये तीनों ही सङ्कल्प मूलक तथा सङ्कल्प रूप आदि विषयात्मक हैं। रूप आदि सब विषय योग-प्रयोजक त्रिवर्गके मूल हैं और निवृत्तिको ही मोक्ष कहते हैं। धर्मके निमित्त शरीरकी रक्षा अर्थात् आरोग्यताके वास्ते धर्मको सेवा करनी उचित है और धर्मके लिये ही धन उपार्जन न करना योग्य है और कामका फल रति है, इससे धर्म, अर्थ, काम, ये तीनों रजोगुण प्रधान हैं। आत्मज्ञान फलरूप सन्निकृष्ट धर्म, अर्थ, काम भी उस आत्मज्ञानके प्रयोजकके कारण उस समय सन्निकृष्ट होते हैं, उस समय उनकी सेवा करनी चाहिये; मनसे भी इन्हें परित्याग न करे। चित्तशुद्धिके वास्ते धर्म, निष्काम कर्म्मोंके वास्ते अर्थ और देह धारण मात्रके कारण कामको सेवा करनी उचित है, तपसे रहित मनुष्य कामके अनन्तर धर्म्म आदिकोंको मनसे भी परित्याग न करे; इससे स्वरूपसे परित्याग और सुदूर पराहत होवे। धर्म, अर्थ, काम इस त्रिवर्गकी निष्ठा सबसे श्रेष्ठ मोक्ष ही विद्यमान है। यदि मनुष्य उस मोक्षके पानेका अभिलाषी हो, तो पहिले उसे निष्काम होना होगा, बिना निष्काम हुए मोक्ष लाभ नहीं होता। धर्म्मके वास्ते अर्थ और अर्थके लिये धर्म इस विषयमें अज्ञानताके कारण निकृष्ट बुद्धि अर्थात् निर्बुद्धि मूढ़ मनुष्य ऊपर कहे हुए धर्म और अर्थके फलको नहीं पाते, इससे धर्म और अर्थका फल मोक्ष ही अव्यभिचारी है, इसे निश्चय जाने। धर्मको फलाभिसन्धि ही मलस्वरूप है; अर्थका दान और भोग न करना ही मलस्वरूप हैं; केवल प्रीतिके वास्ते काम सेवन कामका मलस्वरूप है; इससे वह त्रिवर्ग अर्थात् धर्म, अर्थ, काम, फलाभिसन्धान दान भोग और प्रीतिसे रहित होनेपर फिर बहुत फल अर्थात् चित्तशुद्धिके अरिये ब्रह्मानन्द फल प्रदान किया करता है। इस विषयमें कामन्दक और आङ्गरिष्ठ इन दोनोंके सम्वादयुक्त इस प्राचीन इतिहासको पण्डितलोग आचार्य्य लोग प्रमाण दिया करते हैं। राजा आङ्गरिष्ठने सुखसे बैठे हुए कामन्द ऋषिको प्रणाम करके मर्य्यादा भङ्ग विषयका प्रश्न किया। हे ऋषि! जो राजा काम और मोहके वशमें होकर पापाचरण करता है, उस पश्चात्ताप युक्त राजाका पाप किस प्रकार नष्ट होता है? जो मनुष्य अज्ञानके कारण अधर्मका धर्म समझके आचरण करता है, लोकमें विख्यात उस अधर्मको राजा किस उपायसे निवारित करे?

कामन्द बोले, जो पुरुष धर्म और अर्थको त्यागके केवल कामका अनुवर्त्ती होता है, वह धर्म, अर्थ परिहार निबन्धनसे इस लोकमें बुद्धिसे हीन हुआ करता है। बुद्धिनाश करनेवाला मोह धर्म, अर्थका नाशक हो जाता है, उससे नास्तिकता और दुराचारकी उत्पत्ति होती है। राजा यदि एकबारगी दुष्ट दुराचारोंको निवारण न कर सके, तो प्रजा घरमें स्थित सर्पके समान उन दुराचारोंसे व्याकुल हुआ करती है। प्रजासमूह, ब्राह्मण और साधु लोग वैसे राजाके अनुवर्त्ती नहीं होते। अनन्तर वह संशय युक्त होकर वध्य होता अथवा अपमानित वा अवनत होकर अत्यन्त दुःखसे जीवित रहता है, अपमान युक्त होके जीवित रहना, वह केवल मृत्युके समान है। पण्डितोंके आचार्य्योंने इस विषयमें सब प्रकार पापको निन्दा किये हैं; इससे त्रयी विद्या सेवन और ब्राह्मणोंका सत्कार करना अवश्य उचित है। धर्म्म विषयमें बड़े चित्तवाला होवे और महत् वंशमें विवाह करे। क्षमाशील मनस्वी ब्राह्मणोंकी सेवा करे, जपशील होके जप करे और सदा सुखसे स्थित रहे। दुष्कर्मी मनुष्योंको दूर करके धर्म्मात्मा पुरुषोंके समीप गमन करे, मीठे वचन अथवा कर्म्मसे सबका प्रसन्न रक्खे,

कुबेरके सुखको वर्णन करते हुए मैं आपको भी उनके समीप यह कथा कहूंगा। जिस भाव मनुष्य ऐसा आचरण कर करनेसे शीघ्र ही सबके आदरका पात्र होता है और सब पापोंका नाश करता है, इसमें संशय नहीं है। गुरु लोग जो परम धर्मका विषय कहा करते हैं, तुम उस धर्मका वैसा ही आचरण करो; गुरुओंकी कृपासे तुम परम कल्याणको प्राप्त होगे।

१२३ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पुरुषश्रेष्ठ! भूमण्डलमें ये सब मनुष्य लोग सदा शीलको ही धर्मका कारण कहके उसकी प्रशंसा किया करते हैं; इस विषयमें एकबारगी मुझे महान् संशय होरहा है। हे धार्मिक प्रवर! यदि उसे जाननेकी मुझमें सामर्थ्य हो, तो वह जिस प्रकार प्राप्त होता है, वह सब सुननेकी इच्छा करता हूं। हे वक्तावर भारत! जिस प्रकार वह शीलता प्राप्त हो सकती है और उसका कैसा लक्षण है, आप उसे मेरे समीप वर्णन करिये।

भीष्म बोले, हे मानद महाराज! पहिले दुर्योधनने भाइयोंके सहित इन्द्रप्रस्थमें तुम्हारा वह अतुल ऐश्वर्य देखकर सन्तापित और सभामें उपहसित होकर पिताके समीप वह सब वर्णन किया था। तब धृतराष्ट्रने दुर्योधनका वचन सुनके कर्णके साथ बैठे हुए उससे यह वक्ष्यमाण वचन कहा था।

धृतराष्ट्र बोले, हे पुत्र! तुम किस कारण सन्तापित होते हो, मैं उसे यथार्थ रूपसे सुननेकी इच्छा करता हूं, सुनने पर यदि मुझे उपयुक्त बोध होगा, तो तुम्हें उपदेश करूंगा। हे पर पुरञ्जय! तुमने परम ऐश्वर्य प्राप्त किया है, भ्राता, मित्र और सम्बन्धी लोग सदा तुम्हारी आज्ञामें रत हैं; बड़े मन्दिर, वस्त्र, गात्रभरण और उत्तम भोजन भोग करते हो, उत्तम घोड़े तुम्हें ले चलते हैं; तो भी तुम किस कारणसे पाण्डुवर्ण और कृश होरहे हो?

दुर्योधन बोले, हे भारत! युधिष्ठिरके गृहमें दस हजार महानुभाव स्नातक ब्राह्मण लोग नित्य सुवर्णपात्रमें भोजन करते हैं, पाण्डवोंकी दिव्य फल फूलोंसे शोभित वह दिव्य सभा और तीतर पक्षीके समान विचित्र रूपके घोड़े, अनेक तरहके वस्त्र और राज राजके समान बड़ी और शुभकरी समृद्धि देखनेके समयसे ही चिन्ता कर रहा हूं।

धृतराष्ट्र बोले, हे तात नरवर! युधिष्ठिरकी जैसी समृद्धि है, तुम यदि वैसी वा उससे अधिक ऐश्वर्यकी इच्छा करते हो, तो तुम शीलवान बनो, हे पुत्र! सद् व्यवहारके जरिये तीनों लोक जय किया जा सकता है, इसमें सन्देह नहीं है, इस लोकमें शीलवान मनुष्योंसे कोई कार्य भी असाध्य नहीं है। मान्धाताने एक रात्रि, जनमेजयने तीन रात्रि और नाभाग राजाने सात रात्रिमें पृथ्वी लाभ की थी; ये सब राजा शीलवान और दयायुक्त थे; इससे वसुन्धरा गुण क्रीता होकर स्वयं उनके निकट उपस्थित हुई थी।

दुर्योधन बोले, हे भारत! जिस शीलके सहारे उन लोगोंने शीघ्र ही पृथ्वीको प्राप्त किया था; किस प्रकारसे वह शील प्राप्त होता है, उसे मैं सुननेकी इच्छा करता हूं।

धृतराष्ट्र बोले, हे भरतवंश-प्रसूत पुत्र! महर्षि नारदने शीलका आश्रय करके पहिले जो प्राचीन इतिहास कहा था, पुराने लोग इस विषयमें उसका प्रमाण दिया करते हैं। प्रह्लादने दैत्य होके भी शील अवलम्बन करके इन्द्रके राज्यको हरण और तीनों लोकोंको अपने वशमें किया था। हे कुरुवंश धुरन्धर! अनन्तर महाबुद्धिमान् महत्वान् हाथ जोड़के बृहस्पतिके समीप उपस्थित हुए और बोले, मैं श्रेय जाननेकी अभिलाष करता हूं। तब भग-

तब बृहस्पति उस देवेन्द्रसे परम कल्याण सम्बन्धीय अर्थात् मोक्षके उपयोगी ज्ञानका विषय कहने लगे। बृहस्पतिने मोक्षके उपयोगी ज्ञानकी कथा कहके "यही श्रेय है" ऐसा ही कहा। देवराजने फिर पूछा, कि निःश्रेयससे भी कुछ कल्याणदायक है वा नहीं उसे विशेष रूपसे वर्णन करिये।

बृहस्पति बोले, हे तात सुरराज! इस विषयमें जो कुछ विशेष है, वह महानुभाव भार्गवसे छिपा नहीं है; इससे तुम उनके समीप जाके इस विषयको पूछो; तुम्हारा मङ्गल होगा। महातपस्वी परम तेजस्वी देवराज अपने कल्याण लाभके लिये प्रीतिपूर्व्वक भार्गवके समीप गये और उस महानुभाव दैत्यगुरुसे अनुज्ञात होकर इन्द्रने उनसे पूछा, कि श्रेय क्या है? सर्व्वज्ञ शुक्राचार्य्य बोले, महानुभाव प्रह्लादको इस विषयका विशेष ज्ञान है; इन्द्र ऐसा सुनकर हर्षित हुए। अनन्तर मेधावी पाकशासन ब्राह्मणका वेष धरके प्रह्लादके निकट जाकर बोले, मैं श्रेय जाननेकी अभिलाष करता हूं।

प्रह्लाद बोले, हे द्विजवर! मैं तीनों लोकके राज्यको शासन करनेमें सदा तत्पर रहता हूं, इससे मुझे एक क्षणभर भी फुर्सत नहीं है, इसीसे तुम्हें उपदेश देनेमें समर्थ नहीं हूं।

ब्राह्मण बोला, हे राजन्! जब आपको अवसर मिलेगा, तभी मैं उत्तम आचरणीय विषयके उपदेशको ग्रहण करनेकी अभिलाष करता हूं। अनन्तर राजा प्रह्लाद प्रसन्न हुए और "ऐसा ही होगा"—ब्राह्मणसे यह वचन कहके उस शुभक्षणमें उसे ज्ञानतत्त्व प्रदान किया। ब्राह्मण भी यथा न्यायसे जिस प्रकार गुरुके साथ व्यवहार करना होता है और उनके अन्तःकरणमें जैसी अभिलाष थी, उस तरह उसे प्रदर्शित करने लगा, और बारम्बार पूछा, हे अरिन्दम! आपने किस प्रकार तीनों लोकके राज्यको प्राप्त किया है? हे धर्म्मज्ञ! उसका कारण मेरे समीप कहिये। हे महाराज! प्रह्लादने उस समय उस ब्राह्मणके प्रश्नका यह उत्तर दिया।

प्रह्लाद बोले, हे विप्र! मैं अपनेको राजा समझके कदापि ब्राह्मणोंकी निन्दा नहीं करता, इन लोगोंके शुक्राचार्य्यके बनाये हुए नीतिशास्त्रकी व्याख्या करनेके समय मैं उसे सुनकर धारण किया करता हूं, वे लोग विश्वासी होकर उसे कहते हुए मुझे नियमित करते हैं। मैं शुक्राचार्य्यके कहे हुए नीतिमार्गमें सदा वर्त्तमान रहता हूं, ब्राह्मणोंकी सेवा करता हूं, कभी उन लोगोंकी निन्दा नहीं करता। जैसे मधु मक्खियां सदा क्षौद्र पटल (छत्ते) मे मधु इकट्ठा करती हैं, वैसे ही वे शासन करनेवाले ब्राह्मण लोग मुझे धर्म्मात्मा, जितेन्द्रिय और सदा जित क्रोध जानके शास्त्र वचनसे सेचन किया करते हैं। मैं वाङ्मय शास्त्रोंके मुख्य विद्यारसको ग्रहण करते हुए नक्षत्रमण्डलीके बीच स्थित चन्द्रमाकी तरह निज जातिके बीच निवास करता हूं। गुरुके कहे हुए शास्त्रको सुनकर उसके अनुसार कार्य्यमें प्रवृत्त होना ही पृथ्वीके बीच अमृतरूपी और यही उत्तम नेत्रस्वरूप है। प्रह्लादने उस ब्राह्मणसे यही श्रेय है, ऐसा ही कहा, और उस समय दैत्यराज्य उस ब्राह्मणसे पूजित होकर बोले, हे द्विजसत्तम! तुमने मेरे साथ गुरुकी तरह व्यवहार किया है, उससे मैं प्रसन्न हुआ हूं; इससे तुम जो वर मांगोगे, तुम्हें वही दान करूंगा, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है; तुम्हारा मङ्गल होगा। ब्राह्मणने उस समय दैत्येन्द्रसे कहा, मैंने वर मांगा; प्रह्लाद प्रसन्न होकर वर ग्रहण करो; ऐसा ही बोले।

ब्राह्मण बोला, हे राजन्! आप यदि प्रसन्न होकर मेरी प्रिय कामना करते हैं, तो मैं आपका शील प्राप्त करनेकी इच्छा करता हूं;

यही मेरी प्रार्थना है। अनन्तर दैत्यराज प्रसन्न हुए परन्तु उन्हें अत्यन्त भय उत्पन्न हुआ; ब्राह्मणके वर मांगनेपर "ये अल्प तेजस्वी नहीं हैं,"—ऐसा ही निश्चय किया। अन्तमें प्रह्लाद विस्मित होकर "ऐसा ही होवे" यह वचन कहा और उस ब्राह्मणको वरदान करके दुःखित हुए। हे महाराज! वरदानके अनन्तर ब्राह्मणके जानेपर प्रह्लादको बहुत चिन्ता उत्पन्न हुई; वह उस समय कुछ भी निश्चय न कर सके। हे तात! जब वह चिन्ता कर रहे थे, तब तेजोमय विग्रहयुक्त छायाभूत महातेजस्वी शीलने उनके शरीरको परित्याग किया। प्रह्लादने उस समय उस महाकायसे कहा, आप कौन हैं? वह बोला, हे राजन्! मैं शील हूं, तुमने मुझे परित्याग किया, इससे जाता हूं, जो शिष्य होकर सदा तुम्हारे निकट स्थित थे, मैं उस ही अनिन्दित द्विजवरके शरीरमें वास करूंगा। तेजोमय शील ऐसा कहके अन्तर्द्धान हुआ और इन्द्रके शरीरमें प्रवेश किया। शीलस्वरूप तेजके जानेपर वैसे ही रूपसे युक्त दूसरा एक पुरुष प्रह्लादके शरीरसे निकला, तब उन्होंने उससे कहा आप कौन हैं? वह बोला हे प्रह्लाद! मैं धर्म हूं, जिस स्थानमें वह द्विज सत्तम है, मैं वहां ही जाऊंगा। हे दैत्यराज! शील जिस स्थानमें जाता है, मैं भी वहां ही गमन किया करता हूं।

महाराज! अनन्तर और एक पुरुष मानो तेजसे प्रज्वलित होकर प्रह्लादके शरीरसे बाहर हुआ। उन्होंने पूछा आप कौन हैं? प्रह्लादके ऐसा पूछनेपर वह महातेजस्वी बोला, हे असुरेन्द्र! मैं सत्य हूं। इस समय धर्मका अनुगमन करूंगा। सत्यने ऐसा कहके धर्मके पीछे गमन किया। फिर दूसरा एक महान पुरुष प्रह्लादके शरीरसे निकला और वह महाबलवान पूछनेपर बोला, हे प्रह्लाद! मैं वृत्त हूं, सत्य जहां रहता है मैं भी वहां ही गमन किया करता हूं। वृत्तके जानेपर प्रह्लादके शरीरसे महाशब्द बाहर हुआ और पूछनेपर बोला, मैं बल हूं। वृत्त जहां जाता है, मैं भी वहां ही गमन किया करता हूं। हे नरनाथ! बल ऐसा कहके जहां वृत्त गया था, वहां ही चला गया। अनन्तर उनके शरीरसे एक प्रभामयी देवी बाहर हुई। दैत्यराज प्रह्लादके पूछनेपर श्रीने उनसे कहा, हे सत्यपराक्रमी वीरवर! मैं स्वयं तुम्हारे शरीरमें निवास करती थी, इस समय तुमसे परित्यक्त होनेसे जाती हूं; मैं बलकी अनुगामिनी हुआ करती हूं। अनन्तर महानुभाव प्रह्लादके अन्तःकरणमें भय उत्पन्न हुआ। वह फिर बोले, हे कमलालये! तुम कहां जाती हो? तुम्ही सत्यव्रत धारिणी लोककी परमेश्वरी देवी हो। वह द्विजवर कौन थे? इसे मैं यथार्थ रूपसे जाननेकी इच्छा करता हूं।

लक्ष्मी बोली, हे राजन्! जो ब्रह्मचारी होकर तुम्हारे निकट शिक्षित हुए थे, वह देवराज इन्द्र हैं; तीनों लोकमें तुम्हारा जो कुछ ऐश्वर्य्य था, वह उन्होंके जरिये हरण हुआ है। हे धर्मज्ञ! तुमने शीलके सहारे तीनों लोक जय किया था; सुरराजने उसे मालूम करके तुम्हारे उस शीलको हरण किया है। हे महाबुद्धिमान्! धर्म, सत्य, वृत्त, बल और मैं शील ही हम सब लोगोंका मूल है; इस विषयमें सन्देह नहीं है।

भीष्म बोले, हे युधिष्ठिर! ऐसा ही कहके लक्ष्मी और सत्य आदि सबने गमन किया था। इधर दुर्योधन फिर पितासे बोले, हे कौरव नन्दन! मैं शीलके वृतान्तके विदित होनेकी इच्छा करता हूं। जिसके जरिये शीलता प्राप्त की जा सकती है, आप वह उपाय कहिये।

धृतराष्ट्र बोले, वह उपाय पहिले ही महानुभाव प्रह्लादने हारा वर्णित हुई है। हे नरेश्वर! इस समय शील प्राप्तिके विषयका

संक्षेपमें कहता हूं सुनो वचन, मन और कर्म्मसे सब प्राणियोंके विषयमें अनिष्ट आचरण न करना, कृपा प्रकाश करनी और दान, ये ही शीलके बीच श्रेष्ठ होते हैं। अपना कर्म्म वा पौरुष जो दूसरेको हितकर न हो और जिससे दूसरेके समीप लज्जित होना पड़े, किसी प्रकार भी उसका अनुष्ठान करना उचित नहीं है। जिसके जरिये सभामें बड़ाई प्राप्त हो सकती है, सदा वैसा कार्य्य करना चाहिये। हे कुरुसत्तम! यही तो मैंने तुमसे संक्षेपमें शीलका विषय कहा। हे राजन्! शीलहीन मनुष्य जो कदापि श्रीसे युक्त हो, तौभी वह बहुत समयतक उस श्रीको भोग करनेमें समर्थ वा बद्धमूल नहीं होता है।

धृतराष्ट्र बोले, हे पुत्र! हे तात! यदि युधिष्ठिरसे भी अधिक ऐश्वर्य्य लाभ करनेकी इच्छा करते हो, तो इसे यथार्थ रूपसे जानके शीलवान बनो।

भीष्म बोले, राजा धृतराष्ट्रने निज पुत्र दुर्य्योधनसे यह कथा कही थी। हे कुन्तीनन्दन! तुम ऐसा ही आचरण करो, अवश्य ही इसका फल पाओगे।

१२४ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! पुरुषके विषयमें शील ही मुख्य है, यह ता आपने वर्णन किया, परन्तु आशा किस प्रकार उत्पन्न हुई है और वह आशा क्या है? उसे आप मेरे समीप कहिये। हे पितामह! इस विषयमें मुझे बहुत ही संशय उत्पन्न हुआ है; हे पर पुरञ्जय! आपके अतिरिक्त दूसरा कोई भी इस संशयको छुड़ानेवाला नहीं है। हे पितामह! युद्ध उपस्थित होने और बिना युद्धके भी दुर्य्योधन अद्धराज्य प्रदान करेगा, उसके विषयमें मुझे यह बड़ी आशा थी; पुरुष मात्रको ही महती आशा उत्पन्न होती है; उस आशाके नष्ट होनेपर दुःखकारी मृत्यु होती है, इसमें सन्देह नहीं है। हे राजेन्द्र! उस दुष्टात्मा धार्त्तराष्ट्रने मुझे दुर्बुद्धि और हताश किया है; मेरी मन्दात्मता देखिये। मैं वृक्षोंसे युक्त पहाड़से भी आशाको बृहत् समझता हूं; हे राजन्! आशा आकाशसे भी अप्रमेय है। हे कुरुश्रेष्ठ! यह आशा अचिन्तनीय और एकबारगी दुर्लभ है; दुर्लभत्व निबन्धनयुक्त दूसरे किसी विषयको भी इससे अधिक दुर्लभ नहीं देखता हूं।

भीष्म बोले, हे युधिष्ठिर! इस विषयमें मैं तुम्हारे समीप सुमित्र और ऋषभके सम्वाद युक्त इतिहासको वर्णन करता हूं, सुनो।

हैहयवंशीय सुमित्र नाम राजऋषि मृगयाके वास्ते जाके नतपर्व्व बाणसे एक मृगको विद्ध करके वनमें भ्रमण कर रहे थे। अत्यन्त विक्रमसे युक्त वह मृग बाणसे विद्ध होकर गमन करने लगा; राजाने भी शीघ्रताके सहित बलपूर्व्वक उस मृगयूथपतिका अनुसरण किया। हे राजेन्द्र! अनन्तर वह शीघ्रगामी कुरङ्ग मुहूर्त्त भरमें निम्न स्थल और समतल मार्गमें दौड़ने लगा। अन्तमें वह तनुत्राणसे युक्त राजा धनुष और तलवार ग्रहण करके यौवन बलसे भ्रमण करते हुए अकेलेही नद, नदी, पल्वल और वन अतिक्रम करते हुए वनचारी होकर घूमने लगे। शत्रुनाशन राजा उसके मर्म्मको छेदनेवाला तीक्ष्ण बाण ग्रहण करके धनुषपर चढ़ाया। अनन्तर मृगयूथपति मानो हंसी करते हुए बाणके मार्गका परित्याग करके दो कोसको दूरीपर स्थित हुआ। जलता हुआ तेजसे युक्त बाण पृथ्वीपर गिरा; मृगने महावनके बीच प्रवेश किया; राजा भी दौड़े।

१२५ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, अनन्तर राजा महावनमें प्रवेश करके तपस्वियोंके आश्रम पर उपस्थित हुए

और थकके उस समय वहां बैठ गये। ऋषियोंने उस धनुर्धारी राजाको थका और भूखा देखके सबने उस स्थानपर इकट्ठे होकर यथारीति उनका सत्कार किया। राजाने उन ऋषियोंसे प्राप्त हुए सत्कारको ग्रहण करके सब तपस्वियोंसे तप वृद्धिका विषय पूछा। तपोधन ऋषि लोग राजाके वचनको सुनके उनके आगमनका प्रयोजन जाननेके वास्ते बोले, हे राजन्! आप धनुष बाण और तलवार धारण करके पैदल हो कौनसे सुखके वास्ते इस तपोवनमें आये हैं? हे मानद! आपने किस स्थानसे आगमन किया है? उसे हम लोग सुननेकी इच्छा करते हैं। आप किस वंशमें उत्पन्न हुए हैं और आपका क्या नाम है, वह हम लोगोंके निकट वर्णन करिये। हे पुरुषप्रवर भरतवंशावतंस! वह राजा सब ब्राह्मणोंका यथारीतिसे निज परिचय देनेके वास्ते बोला, मैं हैहयवंशमें उत्पन्न हुआ हूं; मित्रोंके आनन्दको बढ़ानेवाला सुमित्र नामसे प्रसिद्ध हूं; मैं विपुल बलसे रक्षित और सेवक तथा अन्तःपुरवासिनी स्त्रियोंमें घिरकर बाणोंसे सहस्रों मृगोंको मारते हुए विचरता था; कोई मृग मेरे बाणसे विद्ध होकर शल्यके सहित दौड़ रहा है, मैं उस ही दौड़ते हुए मृगका पीछा करते हुए दैव इच्छासे इस बनमें उपस्थित हुआ हूं। इस समय श्रीरहित निराश और परिश्रमसे थक कर आप लोगोंके समीप आया हूं। मैं परिश्रमसे कातर, निराश और भ्रष्ट लक्षण होकर आप लोगोंके समीप आया, इससे बढ़के मुझे दूसरा दुःख क्या होगा? हे तपस्वी लोगो! मेरे मृग-विषयक आशा नष्ट होनेसे जैसा तीव्र दुःख हुआ है, राज चिह्न त्यागना और नगरको छोड़ना वैसा दुःखदायक नहीं है। अत्यन्त ऊंचा महा पर्व्वत हिमालय, बहुत बड़े महोदधि समुद्र और आकाशकी अन्तराल मण्डलके अनुसार आशाके समान नहीं हो सकते। हे तापस बृन्द! इसके मैं आशाका अन्त भी नहीं देखता हूं आप लोग सर्व्वज्ञ और तपस्यासे भरे हैं; सब आप लोगोंको विदित है; आप महा ऐश्वर्य्ययुक्त हैं, इसही कारण आप लोगोंसे संशयका विषय पूछता हूं। आशावान पुरुष और आकाश इन दोनोंके बीच महत्वमें आप लोगोंको कौन श्रेष्ठ मालूम होता है; मैं यही सुननेकी अभिलाष करता हूं; इस लोकमें सुननेमें क्या दुर्लभ है? यह विषय यदि आप लोगोंके समीप गोपनीय न हो, तो शीघ्र ही मुझसे कहिये। हे द्विजसत्तम बृन्द! आप लोगोंके गोपनीय विषयको सुननेकी इच्छा नहीं करता, मैंने जो प्रश्न किया है, कथाके प्रसङ्गसे यदि इसका उत्तर होवे, तो वर्णन कीजिये। आशाके कारण और सामर्थ्यकी रीतिसे सुननेकी इच्छा करता हूं, आप लोग भी तपस्यामें रत हैं, इससे सब कोई मिलकर इस विषयको वर्णन कीजिये।

१२६ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, अनन्तर उन सब ऋषियोंके बीच ऋषि सत्तम ऋषभ नाम विप्रर्षि विस्मित होकर यह वचन बोले, हे प्रभु नृपवर! पहिले समयमें मैं सब तीर्थोंमें घूमता हुआ नर नारायणके दिव्य आश्रममें उपस्थित हुआ था, जिस स्थानमें उस रमणीय बदरी और आकाश गङ्गाका वैहाय सहृद विद्यमान है, और अश्व-नित्य वेद पाठ करते हैं। पहिले समय मैं उस ही तालाबमें पितर और देवताओंका विधिपूर्व्वक तर्पण करके उस ही समय आश्रममें उपस्थित हुआ। जिस स्थानमें वह नारायण ऋषि सदा निवास करते हैं उनके निकटमें ही वास करनेके लिये किसी आश्रममें गमन किया। वहां सदा मृगछालाको धारण करनेवाले तनु नाम ऋषिको आते देखा। हे महाबाहो राजऋषि! उनका शरीर दूसरे मनुष्योंसे अठगुना

ऊंचा था ; परन्तु उनकी जैसी कृशता थी, वैसी कृशता कहीं भी नहीं देखी गई है। हे राजेन्द्र! उनका शरीर कनिष्ठा अंगुलीके समान था, गर्हन, दोनों भुजा, दोनों पैर और सब केश देखनेमें अद्भुत थे ; सिर शरीरके अनुरूप ही था ; दोनों कान और दोनों नेत्र भी उसके समान ही थे। हे राजसत्तम! उनका वचन और चेष्टा सामान्य थे ; मैं उस कृश विप्रको देखके अत्यन्त डरा और दुःखित हुआ। अनन्तर उनके दोनों चरणोंमें प्रणाम करके हाथ जोड़के उनके सम्मुख खड़ा रहा।

हे राजन्! नाम, गोत्र और पिताका नाम कहके उनके दिये हुए आसन पर जाके धीरे धीरे बैठ गया। हे महाराज! अनन्तर उस धर्मात्मा महर्षि तनुने ऋषियोंके बीच धर्म अर्थ युक्त कथा कहनी आरम्भ की। वह जब धर्म-युक्त कथा कहने लगे, तब राजीवलोचन कोई राजा सेना और अन्तःपुरवासिनी स्त्रियोंके सहित वेगवान घोड़ोंके जरिये वहां पर उप-स्थित हुआ। बनके बीच पुत्र खोया गया है, उसे स्मरण करते हुए अत्यन्त दुःखित होकर पहिले समयमें भूरिद्युम्नके पिता महायशस्वी श्रीमान महा वीर द्युम्न राजाने उस ही स्थानमें उस पुत्रको देखूंगा, ऐसी ही आशासे युक्त होकर उस बनमें घूमते हुए मेरे उस परम धार्म्मिक पुत्रका दर्शन होना दुर्लभ है, अकेला पुत्र महाबनके बीच खोया गया, उस समय बारम्बार ऐसा ही बचन कहने लगे। "मुझे उसका दर्शन होना दुर्लभ है, परन्तु देखनेके वास्ते मुझे बड़ी ही आशा हुई है ; उस ही आशासे मेरा सब शरीर परिपूरित होनेसे मैं मुमुर्षु हुआ हूं ; इसमें सन्देह नहीं है।" मुनिश्रेष्ठ भगवान तनुने राजाका ऐसा बचन सुनके अवाक्शिरा और चिन्तापरायण होके मुहूर्त्त भर स्थित रहे। राजा उन्हें चिन्ता करते देख, अत्यन्त दुःखित हुआ और दीन-ताके सहित बार बार मन्द स्वरसे बोला, हे देवऋषि! दुर्लभ क्या है और आशासे बहुत् क्या है? यदि यह मेरे समीप गोपनीय न हो, तो, हे भगवन्! इसे वर्णन कीजिये।

मुनि बोले, पहिले महर्षि भगवान् तुम्हारे उस पुत्रके जरिये बालिश बुद्धि और निज मन्द-भाग्यताके कारण मानसे रहित हुए थे। हे राजन्! महर्षिने एक सोनेका कलश और बल्कल मांगा था, उन्होंने अवज्ञापूर्वक उसे सम्पादन नहीं किया, वह राजर्षि निर्व्विन्न और निराश हुए थे। हे नरसत्तम! वह धर्म्मात्मा इसी प्रकार उन्द्र होकर उस लोकपूजित ऋषिको प्रणाम करके तुम्हारी भांति श्रान्त और अवसन्न हुए थे। अनन्तर महर्षिने पाद्य और अर्घ लेकर अरण्य विधिके अनुसार राजाको वह सब निवेदन किया।

हे नरश्रेष्ठ! अनन्तर जैसे सप्तऋषि लोग ध्रुवको घेरते हैं, वैसे ही सब मुनि लोग उस राजाको घेरकर बैठ गये और उन लोगोंने उस राजाके आश्रममें आनेका प्रयोजन पूछा।

१२७ अध्याय समाप्त।

राजा बोला, मैं वीरद्युम्न नामसे विख्यात राजा चारों ओर प्रसिद्ध हूं, मेरा पुत्र भूरिद्युम्न अनुद्दिष्ट हुआ है, उसे खोजनेके वास्ते मैं इस बनमें आया हूं। हे पापरहित विप्रवर! मेरे वही एक मात्र पुत्र है, तिसपर भी वह बालक है, उसे इस बनमें न देखके घूम रहा हूं।

ऋषभ बोले, जब राजाने ऐसा कहा, तब उस समय मुनि अधोवदन होकर चुप होरहे ; राजाको कुछ भी उत्तर न दिया। वह ब्राह्मण पहिले राजाके जरिये सम्मानित नहीं हुए। हे राजेन्द्र! उन्होंने आशाको नष्ट करनेके निमित्त बहुत तपस्या की थी, मैं किसी प्रका-रसे राजाके निकट प्रतिग्रह तथा दूसरे किसी

अर्थका नाम नहीं ग्रहण करूंगा; उस समय ऐसी ही बुद्धि अवलम्बन करके स्थित थे। आशा ही स्थिर होकर पुरुषको तथा बालककी भी उद्योगशाली करती है; इससे "मैं उस आशाको दूर करूंगा," मन ही मन ऐसा ही स्थिर करके मुनि मौन हुए थे। वीरद्युम्न राजाने फिर उस मुनिसत्तमसे पूछा।

राजा बोला, आशाकी कृशता क्या है? इस पृथ्वीमण्डलके बीच दुर्लभ क्या है? आप इसे ही वर्णन करिये; क्यों कि आपने धर्म, अर्थका दर्शन किया है।

ऋषभ बोले, अनन्तर भगवान ब्राह्मणश्रेष्ठ कृशतनु पहिलेके वृतान्तको स्मरण करके उसे मानो राजाको स्मरण करानेके लिये कहने लगे।

ऋषि बोले, हे राजन्! आशायुक्त पुरुषके समान दूसरा कोई कृश नहीं है, आशाग्रस्त विषयका दुर्लभत्व निबन्धन मैंने राजाओंके निकट प्रार्थना की थी।

राजा बोला, हे ब्रह्मन्! आपके वचनके अनुसार कृश अकृशका बोध हुआ और आशा गृहीत विषयका दुर्लभत्व वेद वचनके समान विदित हुआ। हे महाबुद्धिमान मुनिश्रेष्ठ! मेरे मनमें संशय उत्पन्न हुआ है, इससे मैं उस संशयके विषयको पूछता हूं, आप विधिपूर्वक कहिये। हे मुनिसत्तम! यदि गोपनीय न हो, तो अपनेसे दुबलापन क्या है? हे भगवन्! इसे ही मेरे निकटमें प्रकट करिये।

कृश बोले, हे तात। याचक होके सन्तुष्ट हुआ करे, ऐसा पुरुष दुर्लभ है, अथवा नहीं है, ऐसा भी कहा जा सकता है, और अर्थकी अवज्ञा न करे, ऐसा पुरुष अत्यन्त दुर्लभ है। शक्ति रहते भी सत्कार करके दूसरेका उपकार न करनेवाला और जो आशा सब प्राणियोंमें आसक्त होरही है, मैंने उस आशाको बहुत कृश किया है। एक मात्र पुत्रका पिता पुत्र अनुद्दिष्ट वा प्रोषित होनेपर उसका हाल जो नहीं जानता मैंने उस आशाको दुःखदायी कृश किया है, हे नरनाथ! स्त्रियोंकी प्रसवके समय, वृद्धोंकी पुत्र उत्पत्तिके समयमें और धनियोंके मनमें भी आशा रहती है, मैंने उसे अत्यन्त कृश किया है। प्रदानकांक्षिणी कन्याओंके यौवन-काल उपस्थित होनेपर उनके विषयकी कथा सुनके जो आशा उत्पन्न होती है, मैंने उस आशाको अत्यन्त कृश किया है। हे राजन्! अनन्तर वीरद्युम्न राजाने यह सब कथा सुनके पत्नीके सहित उस द्विजवरके चरणकी मस्तकसे स्पर्श करके उन्हें प्रणाम किया।

राजा बोला, हे भगवन् मैं आपके अनुग्रहकी इच्छा करता हूं, मैं निज पुत्रके साथ मिलनेकी अभिलाष करता हूं। हे द्विजसत्तम! इस समय आपने जो कुछ कहा, वह सब सत्य है इसमें सन्देह नहीं है।

ऋषि बोले, धार्म्मिकप्रवर! भगवान् तनुने हंसकर तप और विद्याबलके जरिये उस अनुद्दिष्ट राजपुत्रको लाके उपस्थित किया। उन्होंने राजपुत्रको लाके राजाका तिरस्कार करके आप ही जो धर्मस्वरूप थे, उसे दिखाया; अद्भुत दर्शनने दिव्य-आत्म दिखाकर पापरहित और क्रोधहीन होके निकटके वनमें गमन किया। हे राजन्! मैंने ऐसा ही देखा था, और यही सब वचन सुना था, आशाको शीघ्र दूर करो; ऐसा होनेसे यह अत्यन्त दुर्व्वल होगी।

भीष्म बोले, हे राजन्! उस समय राजा सुमित्रने महात्मा ऋषभका ऐसा वचन सुनके शीघ्र ही दुबली आशाको परित्याग किया। हे कुन्तीपुत्र महाराज! तुम भी मेरा यह वचन सुनके हिमवान पर्व्वतकी तरह स्थिर होओ। हे महाराज! तुम प्रष्टा और श्रोता हो, इससे मेरा मत सुनके आपदकाल उपस्थित होनेपर सन्ताप भाजन न होना।

१२८ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे भारत! आप जब धर्म-कथा कहते हैं तब मैं आत्मतुष्टिस्थ होकर जिस प्रकार तृप्त होता हूं, अमृतसे भी वैसी तृप्ति नहीं होती। हे पितामह! इससे आप फिर धर्म कथा कहिये। मैं आपके कहे हुए धर्मामृतको पीते हुए किसी प्रकारसे भी तृप्ति लाभ नहीं कर सकता हूं।

भीष्म बोले, इस विषयमें पुराने लोग महानुभाव यम और गौतमके सम्वाद युक्त इस प्राचीन इतिहासको कहा करते हैं। पारियात्र पर्वतके समीप गौतमका अत्यन्त बड़ा आश्रम था, गौतमने उस आश्रममें जबतक वास किया था, वह भी मुझसे सुनो। गौतमने उस आश्रममें साठ हजार वर्ष तक तपस्या की थी। हे राजन्! उस महामुनिकी उग्र तपस्या देखकर लोकपाल यमने उनके निकट गमन किया और उस समय गौतम ऋषिको अत्यन्त कठोर तपस्या करनेमें रत देखा। ब्रह्मर्षि तपस्वी गौतम तेज प्रभावशाली यमको आया हुआ देखके हाथ जोड़के उठ खड़े हुए। धर्मराजने उस द्विजवरको देखते ही धर्मके अनुसार सत्कार करके उनसे पूछा, "मैं तुम्हारा क्या करूं?"

गौतम बोले, क्या करनेसे पुरुष माता पितासे अऋण होता है और किस प्रकार पवित्र तथा दुर्लभ लोकोंको प्राप्त करता है?

यम बोले, तपस्या और पवित्र आचार युक्त तथा नियम और सत्य धर्ममें रत पुरुष सदा पिता-माताकी पूजा और बहुतसी दक्षिणासे युक्त अश्वमेध यज्ञ करनेसे अद्भुत दर्शन निबन्धनसे दुर्लभ लोकोंको प्राप्त किया करते हैं।

१२८ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे भारत! जो राजा मित्रोंसे परित्यक्त हुए हैं; जिनके बहुतसे शत्रु हुए हैं, और जो कोषहीन तथा बलहीन हुए हैं; उनके वास्ते क्या उपाय है? दुष्ट सेवक जिसके सहायक हुए हैं, जिसकी मन्त्रणा सब तरहसे निष्फल हुई है, राज्यसे जो भ्रष्ट होते हैं और उत्तम उपायको देखनेमें असमर्थ हैं; जो दूसरे राज्यकी ओर जानेके वास्ते उद्यत और पर राज्यको मर्द्दन करनेमें तैय्यार हुए हैं, जो स्वयं निबल होकर भी बलवानके साथ विरोध करनेमें वर्त्तमान रहते हैं; जो राजा पूर्व्वरीतिसे राज्यकी रक्षा नहीं कर सकते; जो देश और कालके अनुसार कार्य्य करनेमें अवज्ञा करते हैं। अत्यन्त पीड़न निबन्धनसे दूसरोंके सेवक आदिकोंका भेद और सामवाद जिसे अप्राप्य होता है; उनको उपाय क्या है? अर्थ साध्य जीवन सुकृत उत्तम होगा, अर्थात् असत् मार्गके जरिये अर्थ ग्रहण करना होगा अथवा अर्थके बिना मरना कल्याणकारी है?

भीष्म बोले, हे भरत श्रेष्ठ धर्मज्ञ युधिष्ठिर! तुमने अत्यन्त गुप्त विषय पूछा है, न पूछने पर मैं इस विषयके कहनेका उत्साह न करता। हे भरतप्रवर! धर्म अत्यन्त सूक्ष्म पदार्थ है, शास्त्र सुननेके कारण उस सूक्ष्म धर्मका ज्ञान हुआ करता है; धर्म सुनने और आचार निबन्धनसे कदाचित कोई पुरुष सदाचारके जरिये साधु होते हैं। आपदकालमें धनके निमित्त प्रजापीड़न करते हुए धनलाभ हो, वा न हो, आपदसे पार होके प्रजासमूहके ऊपर कृपा करनी उचित है। यदि धन लाभ न हो, तो अपना और प्रजाका नाश हुआ करता है, उसे विचारके तुम निज प्रश्नके विषयको अपनी बुद्धिके सहारे विवेचनीय जानो। हे भारत! राजाओंको व्यवहार निबाहनेके वास्ते बहुतसे धर्मयुक्त उपाय हैं, सुनो। मैं धर्मके निमित्त इस प्रकार धर्म प्राप्त होनेकी इच्छा नहीं करता। प्रजाको दुःख देके जो प्राप्त किया जाता है, वह पीछे मृत्युके समान

हुआ करता है, अर्थात् प्रजापीड़नके दुःखसे कारणसे उत्पन्न हुई अग्नि राजाके प्राण बल और अलङ्कारको बिना जलाये निवृत्त नहीं होती; पण्डित बुद्धिमान् मनुष्यों वा प्रजासमूहका ऐसा ही निश्चय है। पुरुष प्रति दिन जैसे शास्त्रोंको देखता है, वैसा ही विज्ञान लाभ करके उसमें अनुरक्त हुआ करता है; अविज्ञानके कारण अनुपाय होता है, उपायज्ञान ही अत्यन्त विभूति उत्पन्न करता है। तुम अशङ्कित और असूयारहित होकर यह वचन सुनो। राजाका कोष नष्ट होनेसे ही बलका नाश हुआ करता है; निर्ज्जल स्थलमें जल उत्पन्न करनेकी तरह राजा लोग कोष सञ्चय किया करते हैं। प्राचीन पुरुषोंके आचरित इस उप धर्म्मको जानकर समयके अनुसार राजा पूर्व्व पीड़ित प्रजाके ऊपर कृपा करे। हे भारत! समर्थ मनुष्योंका धर्म्म स्वतन्त्र है और आपद्कालका धर्म्म स्वतन्त्र होता है। कोष सञ्चयके पहिले राजा तपस्या आदिके जरिये धर्म्म सञ्चय करनेमें समर्थ होते हैं; धर्म्मसे भी जीवन गुरुतर है। निर्व्वल पुरुष धन लाभ करके न्याययुक्त जीविका अवलम्बन नहीं करता, क्योंकि यत्न करनेपर भी अवश्य बलकी सम्भावना होती है, ऐसा नियम नहीं है; इससे सुना गया है, आपद्कालमें अधर्म्म भी धर्म्म लक्षणयुक्त हुआ करता है इससे आपद्कालमें अधर्म्म भी कर्त्तव्य रूपसे सुना जाता है, उस समय जो धर्म्म है, वह अधर्म्म हुआ करता है; इससे शास्त्रकी मर्य्यादानुसार आपद्कालमें प्रजापीड़न आदि भी धर्म्मरूपसे गिने जाते हैं, वरन वैसा न करनेसे अधर्म्म होता है यह कवियोंको अविदित नहीं है। आपद्काल बीतनेपर क्षत्रियके वास्ते पहिले कहे हुए अधर्म्मके दोषोंको दूर करनेके वास्ते प्रायश्चित्तकी विधि है। क्षत्रियोंको जिसमें धर्म्म हानि न हो, और वह जिससे शत्रुके वशमें न होवे, वैसो ही उपाय करनी उचित है; ऐसा ही पुराने लोग कहा करते हैं। आत्माको अवसन्न करना उचित नहीं है, इस तरहके यत्नके जरिये, अपनी वा दूसरेके धर्म्म उद्धारकी इच्छा न करे, जिस किसी उपायसे होसके, आत्माका उद्धार करना चाहिये ऐसा ही निश्चय जाने।

हे तात! उस आपद्कालके अनन्तर धर्म्म जाननेवाले पुरुषोंके लिये धर्म्म विषयमें निपुणता ही निश्चित है और क्षत्रियोंके वास्ते बाहुबलके सहारे उद्यम ही निपुणता है, इसी प्रकार जनश्रुति है। हे भारत! पूरी रीतिसे वृत्तिरोध होनेपर श्रेष्ठ क्षत्रिय तापसस्व और ब्राह्मणस्वको छोड़के और सबके धनको ले सकते हैं। जैसे ब्राह्मण अवसन्न होनेपर न जांचने योग्य पुरुषके निकट जांचते तथा भोजन न करने योग्य अन्न भी भोजन करते हैं, वैसे ही क्षत्रियोंको भी ब्राह्मणस्व और तापसस्वके अतिरिक्त दूसरेके धनको ग्रहण करनेमें दोष नहीं होता, इसमें सन्देह नहीं है। पीड़ित पुरुषको अद्वार क्या है? और निरुद्ध पुरुषको ही कौनसा उत्पथ है? जब लोग पीड़ित होते हैं, तब अद्वारसे भी दौड़ा करते हैं। जो राजा धनागारसे रहित और सेनाके नष्ट होनेसे लोगोंके समीप पराभव युक्त होता है, उसे भिक्षा करके जीवन धारण तथा वैश्य और शूद्रकी वृत्ति अवलम्बन करनी योग्य नहीं है। क्षत्रियोंको स्वजातीय वृत्ति विजयके जरिये धन उपार्ज्जन की विधि है, जो उसके अनुसार जीवन व्यतीत न कर सकें, वे अयाचक होनेपर भी पहिले आपद्कालमें मुख्य कल्पके जरिये जीवन व्यतीत करें; उसमें असमर्थ होनेपर अनुकल्प अवलम्बन करना अनुचित नहीं है। आपद्काल उपस्थित होनेपर सब धर्म्मोंका विपर्य्यय अर्थात् पराक्रमके जरिये भी जीवन धारण करना योग्य है। जीविका नष्ट होनेपर ब्राह्मणोंका भी ऐसा ही व्यवहार दीख पड़ा है, तब

क्षत्रियोंके विषयमें क्यों सन्देह होगा? क्षत्रिय पुरुष आपद्कालमें अधिक धनशाली पुरुषोंसे बलपूर्व्वक धन ग्रहण करके जीवन धारण करें, किसी तरह अवसन्न न होवें, इसमें सन्देह करना उचित नहीं है, यह सदासे ही निश्चित है। पण्डित लोग क्षत्रियोंको ही प्रजापालक और हन्ता समझते हैं; इससे रक्षाकर्त्ता क्षत्रिय धनवान मनुष्योंके निकट धन ग्रहण करें। हे राजन्! वनमें रहके मुनिके अतिरिक्त दूसरे किसी पुरुषको हिंसाके बिना जीविका नहीं मिलती है।

हे कुरुश्रेष्ठ! माथेमें लिखी हुई वृत्ति अर्थात् अदृष्ट मात्रको अवलम्बन करके जीवन धारण करना क्षत्रियोंके विषयमें योग्य नहीं है विशेष करके जिसे प्रजापालनकी इच्छा है, उन्हें भी वैसी वृत्ति अत्यन्त निन्दनीय है। आपद्कालमें राजा और राज्य दोनोंकी ही सदा परस्पर रक्षा करनी चाहिये यही सनातन धर्म्म है। आपद्कालमें जैसे राजा धनके जरिये सब तरहसे राज्यकी रक्षा करता है, विपद उपस्थित होनेपर राज्यको उसी प्रकार राजाकी रक्षा करनी योग्य है। कोष, दण्ड, बल, मित्र और दूसरी जो कुछ वस्तु सञ्चित रहे, राजा क्षुधातुर होनेपर भी राज्यके वास्ते उसे दूर न करे। अन्नसे ही बीज सम्पादन करना होता है, धर्म्म जाननेवाले पुरुष ऐसा ही जानते हैं। अल्पधनवाला राजा यदि प्रजासमूहसे रक्षित न रहे, तो वह नष्ट होता है, राजाके नष्ट होनेपर सब प्रजा नष्ट हुआ करती हैं; इस विषयमें पण्डित लोग महामायावी शम्बरके इस शास्त्रको वर्णन किया करते हैं। जिस राजाके राज्यमें वास करनेवाली प्रजा अवसन्न होती है जो दूसरेका प्रेष्य हुआ करता है, अथवा वृत्तिसे रहित होनेपर अल्प परिवारको पालन करता है, और जो विदेशमें जीविका निर्वाहके वास्ते समय बिताता है; उसे धिक्कार है। कोषागार और सेना ही एकमात्र राजाका मूल है, उसके बीच खजाना ही सेनाका मूल है; सेना सब धर्म्मका मूल है और धर्म्म ही प्रजासमूहका मूल होता है, इससे सबको जड़ धनागारकी बढ़ती करनी उचित है। दूसरे पुरुषको पीड़ित न करनेसे कोष सञ्चय नहीं होता, तब सेनाका संग्रह किस प्रकार हो सकेगा? इससे कोष सञ्चके वास्ते लोगोंको पीड़ित करनेसे राजा दोषभागी नहीं होते। यज्ञकार्य्यको निबाहनेके निमित्त अकार्य्य करते भी देखा जाता है; इस ही कारण राजा कदापि दोषभागी नहीं होते, आपद्कालमें प्रजा पीड़न अर्थके लिये ही हुआ करता है, वह स्वतन्त्र है; और उस समय प्रजाको पीड़ित न करना अनर्थका कारण होजाता है। अर्थके अभावके वास्ते हाथी आदि पाले जाते हैं, और वे अर्थके उत्पादक भी हुआ करते हैं; इससे मेधावी पुरुष इस कर्म्म-निश्चयको बुद्धिके जरिये विचारे। पशु आदि जैसे यज्ञके कारण होते हैं, यज्ञ चित्त संस्कारका कारण हुआ करता है और पशु आदि यज्ञ तथा चित्त संस्कार ये तीनों जिस तरह मोक्षके कारण हुआ करते हैं, वैसे ही कोषका कारण दण्ड, बलका कारण कोष और शत्रु पराभवके कारण कोष, बल तथा नीति ये तीनों ही राज्य पुष्टिके निमित्त हुआ करते हैं। इस विषयमें धर्म्म-तत्व प्रकाश करनेवाली उपमा कहता हूं, यज्ञ विषयमें जो लोग परिपन्थी हैं, वे यूपच्छेदन करते हैं; प्रतिरक्षी स्वरूप सामन्त वृन्द वृक्ष रूपी उसे काटनेसे जब वह कटके गिरता है, तब दूसरे वनस्पतियोंको गिराता है। हे परन्तप! इसी प्रकार जो मनुष्य महत् कोषके बाधक होवें, उन्हें नष्ट न करनेसे उस विषयमें सिद्धि नहीं देखी जाती है। धनसे यह लोक और परलोक दोनों लोक ही प्राप्त होते हैं। निर्द्धन होनेसे जैसे धन और सत्य वचन नहीं रहता, वैसे ही निर्धन पुरुष जीते ही मरेके

समान समय बिताते हैं। यज्ञ कार्य्यके लिये धनको सब तरहकी उपायसे ग्रहण करे। हे भारत! यज्ञके वास्ते जो धन आवश्यक होता है, निषिद्ध उपायसे भी उसे जिस प्रकार ग्रहण करना उचित है, वैसे ही विहित और निषिद्ध कार्य्याकार्य्य विषयोंमें अर्थात् आपदकालमें प्रजा पीड़न करना योग्य है, और वही निरापदके समयमें निषिद्ध है; इससे उस प्रकारके विषयमें यह समान-दोष नहीं है। देश कालके अनुसार कार्य्य भी अकार्य्य होता है और अकार्य्य भी कार्य्य हुआ करता है। हे पृथ्वीपाल महाराज! धन-संग्रह और धन त्याग एक ही पुरुष में किसी तरह सम्भव नहीं होता, मैंने बनके बीच कभी धनवृद्ध मनुष्योंको नहीं देखा। इस पृथ्वीपर जो कुछ धन दीखता है, वह सब हमारा ही होवे, हमारा ही होवे; लोग ऐसी ही अभिलाषा किया करते हैं। हे शत्रुतापन! राज्य तुल्य धर्म्म और कुछ भी नहीं है, राजाओंको आपदकालमें बहुतसा कर ग्रहण करना पापमूलक नहीं है, निरापदके समयमें वही पापजनक हुआ करता है। इससे आपदके निमित्त अर्थ संग्रह करना पापयुक्त नहीं होता तब धन-मूलक राज्य भी हेय नहीं होसकता, कोई कोई दान और कर्म्मसे तपस्वी होते हैं, कोई तपस्या करके ही तपस्वी हुआ करते हैं; दूसरे बुद्धि कौशल और दक्षतासे धन सञ्चय लाभ करते हैं। पण्डित लोग धनहीन पुरुषको ही दुर्ब्बल कहते हैं, धनवान पुरुष ही बलवान होता है; धनवान मनुष्यको कुछ भी अप्राप्य नहीं है। कोष तथा कोषवाला राजा सब विपदसे पार होता है, कोषके जरिये धर्म्मकाम तथा इस लोक और परलोकमें सुख लाभ होता है; इससे धर्म्मपूर्व्वक उस धन लाभको इच्छा करे, कभी अधर्म्मसे धन सञ्चय करनेकी इच्छा न करे।

१३० अध्याय समाप्त।

आपद्धर्म्म-प्रकरण।

युधिष्ठिर बोले, हे भारत! जो राजा धान्य-कोष आदि संग्रहसे रहित दीर्घसूत्र, बन्धु बध भयके कारण किलेसे बाहर निकलके युद्ध करनेमें असमर्थ, सदा शङ्कित, जिसके विचारको दूसरे लोगोंने सुना है, शत्रुओंने जिसके राज्यको विभाग कर लिया है, जो विषय रहित है, और मित्रोंको सब तरहसे सम्मान पूर्व्वक अपने वश करनेमें समर्थ नहीं हैं, जिसके सेवक लोग शत्रुओंके वशमें हुए शत्रु लोग जिसके सम्मुख वर्त्ती होरहे हैं, स्वयं निर्ब्बल होनेसे प्रबल वैरीके जरिये जिसका चित्त व्याकुल हुआ है; उसे अन्तमें क्या करना उचित है, वह कहिये।

भीष्म बोले, विजयके निमित्त बाहर हुए विजगीषु राजा यदि धर्म्मपूर्व्वक धन प्राप्त करनेमें निपुण और पवित्र हो, तो शत्रुसे विजित पूर्व्वभुक्त राज्यको सान्त्ववादके सहारे उससे छुड़ाके शीघ्र सन्धि स्थापित करे। जो पुरुष बलवान और पाप बुद्धि होकर अधर्म्मके अनुसार विजयकी इच्छा करता है, कई एकगांव दान करके उसके साथमें भी सन्धि करनेमें सम्मत होवे, अथवा राजधानी परित्याग करके द्रव्य सञ्चय दानसे भी आपदसे पार होवे। यदि राजगुणसे युक्त होकर जीवित रहे, तो द्रव्य आदि फिर प्राप्त कर सकेगा; धन और सेना परित्याग करनेसे यदि सब आपद दूर हो, तो कौन धर्म्म अर्थको जाननेवाला राजा उस विषयमें आत्मदान किया करता है? अन्तःपुरमें रहनेवाली स्त्रियोंकी रक्षा करे, वे यदि शत्रुके अधिकारमें हुई हों, तो उस विषयमें दया करनेकी आवश्यकता नहीं है सामर्थ्य रहते किसी प्रकार भी आत्म समर्पण करना योग्य नहीं है।

युधिष्ठिर बोले, सेवक आदि कोपित, किले तथा राज्य आदि शत्रुसे आक्रान्त खजाना खाली, और मन्त्रणा प्रकाशित होनेपर अन्तमें क्या करना उचित है।

भीष्म बोले, शत्रु धर्म्मात्मा होनेपर शीघ्र ही उसके सङ्ग सन्धिकी इच्छा करे, ऐसा होनेसे शीघ्र ही शत्रुको दूर किया जा सकता है अथवा धर्म्म युद्धमें प्राणको त्याग करके परलोकमें गमन करना ही कल्याणकारी है। थोड़ी सेना होनेपर भी यदि वह अनुरक्त, अभिप्रेत और हर्षयुक्त हो, तो पृथ्वीपति राजा उस ही से महीमण्डल जय कर सकता है। जो युद्धमें प्राणत्यागते हैं, वे इन्द्रलोक पाते हैं। सब लोकोंमें प्रसिद्ध बुद्धिका आश्रय करके युद्ध पक्ष परित्याग करनेके लिये जिस प्रकार शत्रुको विश्वास होवे, उसही भाव विनय करे, स्वयं भी समयके अनुसार शत्रुका विश्वास करे; सेवक आदिकोंके प्रतिकूल रहनेपर युद्ध करनेमें असमर्थ होनेपर राजा शान्तिवादके सहारे शत्रुको शान्त करते हुए किलेसे बाहर होकर देश देशान्तरमें कुछ समय बिताके फिर अन्तमें मन्त्रणा अपने बलसे स्वयं राज्य जय करनेका उद्योग करे।

१३१ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! पृथ्वीपर जिन सब वस्तुओंको उपजीव्य करके जीवन, धारण किया जाता है, उन सबके चोरी होनेपर भी राजाओंको सब उपायसे ब्राह्मणोंकी रक्षा करनी उचित है,—यह सब लोक-सत्कृत धर्म्म नष्ट होनेपर इस आपदके समयमें जो ब्राह्मण दयाके वशमें होकर पुत्र पौत्रोंको परित्याग करनेमें असमर्थ हैं, वे कैसे उपायके जरिये जीवन धारण करेंगे?

भीष्म बोले, हे राजन्! विपदकाल उपस्थित होनेपर ब्राह्मण विज्ञान अवलम्बन करके जीवन व्यतीत करें, इस जगत्में जो कुछ भोग्य वस्तु हैं, वे साधुओंके निमित्त उत्पन्न हुई हैं; दुष्टोंके वास्ते कुछ भी नहीं उत्पन्न हुई हैं। जो अपनेको अन्तागमका उपाय करके दुष्टोंसे धन ग्रहण करके साधुओंको दान करते हैं, वे सब धर्म्मोंको जानते हैं; स्थान भ्रष्ट राजा किसी पुरुषको कोपित न करके अपनी प्रजा अलग धर्म्मको अभिलाषा करते हुए दूसरेके अदत्त धनको पालन कर्त्ताका धन समझके ग्रहण करें। जो विज्ञान-बलसे पवित्र रहके निन्दित कार्य्य किया करते हैं; उस वृत्तिविज्ञानवान धीर पुरुषको कौन निन्दा कर सकता है? हे युधिष्ठिर! जो लोग बलपूर्व्वक वृत्ति प्राप्त करते हैं, दूसरी रीतिसे प्राप्त करनेकी रुचि नहीं होती। बलवान पुरुष निज तेजोप्रभावसे ही जिविका निर्व्वाहमें प्रवृत्त होते हैं। आपदग्रस्त राजा निज राज्य और परराज्यसे धन संग्रह करे। इस आपद्धर्म्मके उपयोगी सामान्य शास्त्रका अभ्यास करे; मेधावी राजा उक्त शास्त्र और दोनों राज्यमें स्थित धनियोंमेंसे जो कदर्य्य और कार्य्यवशसे दण्डके योग्य हैं, उनसे निकटसे धन लेके कोष सञ्चय करे; इस विशेष शास्त्रको भी अविशेष भावसे वशमें करे। राजा अत्यन्त आपदग्रस्त होनेपर भी ऋत्विक, पुरोहित, आचार्य्य और ब्राह्मणोंको कदापि हिंसा न करे, उन लोगोंको हिंसा करनेसे दोषग्रस्त होना पड़ेगा। यही लोगोंको नेत्र स्वरूप सनातन प्रमाण है, इससे चाहे यह उत्तम हो अथवा बुरा ही होवे आपदयुक्त राजाको ऐसा ही आचरण करना उचित है। ग्रामवासी बहुतेरे पुरुष क्रोधके वशमें होकर राजाकी निन्दा किया करते हैं, परन्तु राजा उन लोगोंके वचन अनुसार किसीको भी पुरस्कार वा तिरस्कार न करे। पुरोहित आदिके प्रतिवादको किसी प्रकारसे कहना वा सुनना न चाहिये; यदि कोई सभामें उनकी निन्दा करे, तो दोनों कानोंको मूंद ले अथवा दूसरी जगह चला जावे, हे नरनाथ! दूसरेकी निन्दा वा खलता करना दुष्टोंका स्वभाव-सिद्ध धर्म्म है; साधुओंके बीच

कितने ही पुरुष केवल दूसरेके गुणोंको वर्णन किया करते हैं। जैसे दमनीय बछड़ेकी तरह ढोनेमें समर्थ दान्त और सुन्दर बैल बोझ धारण करके ढोते हैं, आपदयुक्त राजा वैसा ही व्यवहार करे; जैसे व्यवहारसे उसे बहुतसी सहायता प्राप्त होवे, राजा वैसे ही आचारका प्रचार करे। पण्डित लोग आचारको ही धर्मका श्रेष्ठ लक्षण समझते हैं। शंख और लिखितके मतको अवलम्बन करनेवाले ऋषियोंका ऐसा अभिप्राय नहीं है, मत्सरता और लोभके वशसे जो वे लोग आचारको धर्म नहीं समझते; वैसा नहीं है; ऋषि शासन ही उनका अनुमोदनीय है; कुकर्म करनेवाले पुरुषोंको शासन करना ही ऋषियोंने वर्णन किया है; परन्तु श्रेष्ठ पुरुष यदि असत् मार्गको करे अवलम्बन तो उसे भी शासन करना उचित है। ऐसा वचन यद्यपि ऋषियोंने कहा है, यह ठीक है, तो भी उसके समान प्रमाण कहीं भी नहीं दीखता, इससे राजाओंको वैसा करना योग्य नहीं है; देवता लोग ही कुकर्मी अधम पुरुषोंको शासन किया करते हैं। जो राजा छलसे धन सञ्चय करता है, वह धर्मसे भ्रष्ट होता है। वेदमें कहे हुए, मनु आदि स्मृतियोंमें वर्णित, देश और कालके अनुसार साधुओंसे आचरित तथा सज्जनोंके हृदयमें स्वयं जो धर्म उत्पन्न होता है, राजा उसे ही अवलम्बन करे। जो वेदविहित, तर्कसे निश्चित, वार्त्ताशास्त्र सम्मत और दण्डनीति प्रसिद्ध धर्मको जान सकते हैं, वे ही धर्म जाननेवाले हैं; सांपके पैरको अन्वेषण करनेकी तरह धर्मका मूल अन्वेषण करना अत्यन्त कठिन कर्म है। जैसे व्याधा बाण बिद्ध मृगके रुधिरसे भीगे हुए पांवके चिन्हको देखकर उसके गमन करनेके मार्गको मालूम करता है, धर्मके मार्गका अनुसन्धान करना वैसा ही है। हे युधिष्ठिर! इसी प्रकार साधुओंसे आचरित मार्गसे विचरण करना उचित है। महर्षियोंका इसी प्रकार चरित्र है तुम भी ऐसा ही करो।

१२२ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, हे कुन्तीनन्दन! राजा निज राज्य और परराज्यसे धन संग्रह करे, क्यों कि धनसे ही धर्म और मूल राज्यकी बढ़ती हुआ करती है इससे धन इकट्ठा करके यत्नके सहित उसकी रक्षा करनी उचित है; और रक्षा करके उसकी वृद्धि करनी चाहिये, यही सनातन धर्म है। केवल पवित्रता वा नृसंसताके जरिये धन सञ्चय कभी न करना चाहिये; पवित्रता और नृसंसताके मध्यवर्त्ती होकर कोष संग्रह करना उचित है। बलहीन राजासे धन संग्रह नहीं होता, धनहीनको बल कहां? बलहीन होनेसे राज्य स्थिर नहीं रहता, राजहीनको श्री कहांसे होगी? महत् पुरुषकी श्रीहानि मृत्युके समान है, इससे राजाको उचित है, कि जिस उपायसे धन, बल और मित्रोंकी बढ़ती हो, उसही विषयमें यत्नवान होवे। मनुष्य लोग धनहीनकी अवज्ञा किया करते हैं, वे लोग अल्प धन पाके उससे सन्तुष्ट नहीं होते, और उसके आज्ञा करनेके वास्ते उत्साह प्रकाशित नहीं करते। राजा कोष सम्पत्तिके कारणसे ही परम सम्मानको प्राप्त होते हैं। जैसे वस्त्र स्त्रियोंके गोपनीय स्थलको छिपाता है, उसी प्रकार धन सम्पत्ति भी राजाके पापोंको सम्बरण किया करती है। पहिले राजा जिसके साथ विरोध किये रहता है, वह उसकी समृद्धिके समयमें अनुतापित होता है और जैसे वानरोंने जिघांसु पुरुषोंके मारनेके वास्ते उनका अनुसरण किया था, उसी प्रकार उक्त पुरुष कपट आचारके जरिये राजाको नष्ट करनेकी इच्छासे उसका आश्रय करते हैं। हे भारत! जो राजा इस प्रकार है, उसे सुख

कैसे हो सकता है? इससे सब तरहसे उन्नतिके वास्ते चेष्टा करनी योग्य है; नीचा होना उचित नहीं है। क्योंकि उद्यम ही पुरुषार्थ कहाता है, असमयमें बल्कि भागना अच्छा है, तथापि किसीके समीप नीचा होना उचित नहीं है। बनका सहारा करके मृग समूहके साथ भ्रमण करना भी अच्छा है, परन्तु मर्य्यादा-रहित दस्युओंकी भांति सेवकोंका संसर्ग करना उचित नहीं है। हे भारत! भयङ्कर कार्य्योंमें डाकूके समान सेनाका संग्रह सहजमें ही सिद्ध होता है, अत्यन्त मर्य्यादारहित होनेपर सब लोग ही व्याकुल हुआ करते हैं, और डाकू लोग भी निर्द्दयी लोगोंसे अत्यन्त शङ्कित होते हैं; इससे जो मर्य्यादा लोगोंके चित्तको प्रसन्न करे, उसे ही स्थापित करनी उचित है, धन थोड़ा रहनेपर भी जनसमाजमें मर्य्यादा पूजित हुआ करती है। इस लोक वा परलोकमें पाप-पुण्यका फल भोग करना पड़ता है, साधारण लोग इसमें विश्वास नहीं करते हैं समझके भयसे शङ्कित नास्तिकके मतमें विश्वास करना उचित नहीं है। डाकुओंमें ऐसे पुरुष भी हैं, जो पराये धनको हरते हैं, परन्तु किसीकी हिंसा नहीं करते, इससे डाकू लोग मर्य्यादा-युक्त होनेपर अन्तमें सबकी रक्षा कर सकते हैं। जो पुरुष युद्ध करनेसे विरत हुआ है, उसका वध करना, स्त्री हरना, कृतघ्नता, ब्राह्म-णोंका वित्त ग्रहण करना, सर्व्वस्व हरन करना कन्या पोषण, ग्राम आदि आक्रमण करके प्रभुत्वभावसे निवास और सम्भोगके सहित पराई स्त्रीका पतिव्रत भङ्ग डाकुओंके विषयमें ये सब कार्य्य विशेषरूपसे निन्दनीय हैं, इस डाकुओंको इन सब कर्म्मोंको त्यागना उचित है। हे भारत! जो लोग दस्युओंके नाशके निमित्त अभिसन्धि करते हैं वे लोग उन्हें विश्वास उत्पन्न करके अशेष रूपसे उनके धन-सम्पत्तिको प्राप्त करके सन्धिबन्धन किया करते हैं; इससे उसका चित्त, स्त्री, पुत्र, विभव जो कुछ हो, वह सब राजाको अपने अधिकारमें करना उचित है। डाकुओंके साथ विरोध उपस्थित होनेपर अपनेको बलवान समझके उनके विषयमें नृशंस व्यवहार करना राजाको उचित नहीं है। जो राजा दस्युओंके स्त्री, पुत्र और धनसम्पत्तिकी रक्षा करते हैं, वे आप पर-हित होके राज्य भोग करनेमें समर्थ होते हैं, और जो दस्युओंको नष्ट करते हैं, उस ही कारणसे दूसरे डाकू लोग उन्हें सदा भय दिखाया करते हैं, इससे उन्हें आपदरहित होके राज्य पालन करना अत्यन्त कठिन होजाता है।

१३३ अध्याय समाप्त।

इस विषयमें इतिहासवेत्ता पण्डित लोग धर्म्म शासन वर्णन किया करते हैं, विशेषकर क्षत्रिय राजा धर्म्म और अर्थको प्रत्यक्ष करते हैं; प्रत्यक्ष धर्म्मका शास्त्रोक्त विचार रूप परोक्ष धर्म्मके जरिये आचरण करना उचित नहीं है, पृथ्वीपर भेड़ियेके पैरका चिन्ह देखकर "यह भेड़ियेका पैर है, वा नहीं," ऐसे विचारके अनुसार प्रत्यक्ष धर्म्मको अधर्म्म कहके सन्देह करना अनुचित है। इस लोकमें किसी पुरुषने धर्म्मके फलको कदाचित नहीं देखा है। धर्म्म फलको बलरूपसे जानना उचित है, क्योंकि सब विषय ही बलवान पुरुषके वशमें रहते हैं। बलवान पुरुष ही धन, बल और सेवकोंको प्राप्त करते हैं। जो निर्द्धन हैं, वेही पतित हैं; जो कुछ अल्प है, वही उच्छिष्ट करके गिना जाता है। बलवान पुरुषोंके अनेक निन्दित कर्म्म करने पर भी भयके कारण कोई उनका कुछ अनिष्ट नहीं कर सकता। धर्म्म और सत्य दोनों ही बलवान लोगोंको महत् भयसे परि-त्राण करते हैं। बल ही धर्म्मसे प्रबल बोध होता है, क्योंकि बलसे ही धर्म्म उत्पन्न हुआ करता

है; पृथ्वी पर जङ्गम जीवोंकी तरह बल धर्म्ममें प्रतिष्ठित हो रहा है। जैसे धुआं वायुके वशमें होकर आकाशमें उड़ जाता है उसही भांति धर्म्म बलका अनुसरण करता है; जैसे लता वृक्षका आसरा किया करती है, वैसे ही धर्म्म बलको अवलम्बन करके उसके ऊपर प्रभुता प्रकाशित नहीं कर सकता। जैसे सुख भोगवानके वशमें रहता है, वैसे ही धर्म्म बलवानके अधिकारमें है। बलवानोंको कुछ भी असाध्य नहीं है, उनके सब कार्य्य ही पवित्र हैं।

दुराचारी और बलहीन पुरुषके परित्राणका उपाय नहीं है, बल्कि सब लोगही भेड़िये की तरह उससे व्याकुल हुआ करते हैं। ऐश्वर्य्यरहित अवज्ञात पुरुष अत्यन्त दुःखसे जीवन बिताता है; घृणित जीवन और मरना दोनों ही समान हैं। पुराने लोग कहते हैं, कि पाप चरित्रोंके कारण जो पुरुष बान्धवोंसे परित्यक्त हुआ है, वह दूसरेके वचन रूपी शलाकासे घायल होके अत्यन्त ही दुःखित होता है। अधर्म्मसे धनको प्राप्त करनेमें जो पाप होता है, उसके छुड़ानेके विषयमें पण्डितोंके आचार्य्योंने ऐसा कहा है, कि पापी पुरुष वेद विद्याकी आलोचना, ब्राह्मणोंकी उपासना तथा मधुर वचन और कार्य्योंसे उन्हें प्रसन्न करे, उदार चित्तवाला होवे, महत् वंशमें विवाह करे, अपनी नम्रता प्रकाशित करके दूसरेका गुण कहे, स्नानशील होके जप करे, कोमल स्वभाव धारण करे, बहुत न बोले। बहुतेरे दुष्कर कार्य्योंको करके ब्राह्मण और क्षत्रियोंके समीप आश्रय ग्रहण करे; लोग यदि उसकी निन्दा करें, तो बहुतसे पापोंको करनेवाला पुरुष उसकी चिन्ता न करे। पापकरनेवाला पुरुष ऐसा आचार कर सके तो शीघ्र ही पापसे रहित और सबमें आदर युक्त होता है, इस लोक और परलोकमें महत् सम्मान लाभ करता है, और एकमात्र सुहृतसे सब पापोंको धोकर विचित्र महा सुख भोग करनेमें समर्थ होता है।

१३४ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, इस स्थलमें पुराने लोग एक प्राचीन इतिहास कहा करते हैं, कि डाकू होके भी मर्य्यादा युक्त होने पर मरनेके अनन्तर वह नरकगामी नहीं होता। एक निषाद-स्त्रीके गर्भमें क्षत्रियके वीर्य्यसे कायव्य नाम क्षत्रिय धर्म्म पालक एक निषाद उत्पन्न हुआ था। वह दस्यु होने पर भी बुद्धिमान्, शूर, शास्त्रज्ञ और अनृशंस होनेसे आश्रमवासी ऋषियोंके धर्म्मकी रक्षा, ब्राह्मणोंका हित साधन और गुरुजनोंका सम्मान करता था; इन्हीं सब कारणोंसे उसने सिद्धि लाभ की थी। वह प्रतिदिन सवेरे और सामके समय मृगोंको उत्तेजित करता था, निषादोंके बीच वह मृग विनाश विषयमें अत्यन्त पण्डित था; देश कालके विचारका विषय भी उससे छिपा नहीं था। वह सदा पारिपात्र पर्व्वत पर घूमते हुए सब जीवोंके धर्म्मको जानता था उसके सब बाण अमोघ और अस्त्र दृढ़ थे। वह अकेले ही कई सौ सेना जय करता था, महा वनके बीच बूढ़े, अन्धे और बहिरोंका सम्मान करता, सत्कार करके उन्हें मधु मांस फल तथा मूल भोजन कराता और माननीय लोगोंकी सेवा करता था, वनवासी सन्न्यासी ब्राह्मणोंकी पूजा करता, सदा मृगोंको मारके उन लोगोंको दान करता था। जो लोग लोक-भयसे उस दस्युसे मांस दान नहीं लेते थे, वह बड़े सवेरे उठके उनके घरमें मांस आदि रख जाता था। एक समय दयारहित और मर्य्यादा हीन कई हजार डाकुओंने उसके निकट आके उसे अपना अधिपति करनेकी प्रार्थना की। डाकू लोग बोले, आप देश, काल और मुहूर्त्तको विशेष रूपसे जानते हैं;

आप बुद्धिमान, प्रज्ञावान और दृढ़व्रती हैं, इससे हम सब लोगोंका यह अभिप्राय है, कि आप हमारे मुख्य ग्रामाध्यक्ष होवें। आप हमको जो आज्ञा देंगे, हम लोग वही करेंगे, इससे माता पिताकी तरह आप हम लोगोंको न्यायके अनुसार प्रतिपालन करिये।

कायव्य बोला, हे डाकूवृन्द! तुम लोग स्त्री, तपस्वी, डरपोक और बालकोंका वध न करना, जो पुरुष युद्ध करनेसे विरत हुआ है, उसका वध करना उचित नहीं है; बलपूर्व्वक स्त्रियोंको ग्रहण करना योग्य नहीं है; सब जीवोंके बीच कोई पुरुष ही स्त्रीवधकी विधि नहीं कहते। सदा ब्राह्मणोंका मङ्गल साधन और उन लोगोंको धन दान करनेके निमित्त दूसरोंसे युद्ध करना योग्य है, शस्य हरण करना उचित नहीं; विवाह आदि कार्य्योंमें विघ्न न करना सब जीवोंके बीच जिसके निकट देवता, पितर और अतिथि पूजित होते हैं, वेही ब्राह्मण वा मोक्षमार्गके अधिकारी है, सब वस्तुओंके दानसे जिस प्रकार उसकी उन्नति होवे, सब तरहसे वही करना योग्य है; ब्राह्मण लोग क्रुद्ध होके जिसके पराभव विषयकी मन्त्रणा करते है, तीनों लोकके बीच कोई भी उसका त्राता नहीं होता। जो पुरुष ब्राह्मणोंकी निन्दा करे, अथवा उनके नाशकी इच्छा करे; अन्धकारमें सूर्य्य उदय होनेकी तरह निश्चय ही उसकी पराजय होती है। तुम लोग इस ही स्थानमें वास करते हुए सब फल प्राप्तिकी अभिलाषा करना, जो बनिये हम लोगोंका दान न करेंगे। उनकी ओर सेना भेजी जावेगी। जो लोग शिष्टोंको शासन करते हैं, और उन लोगोंको बधरूपी दण्ड विहित है। जो लोग राजाके विषयमें उपद्रव करके जिस किसी उपायसे होवे, धनकी वृद्धि करते हैं, वे लोग दुःखप्रद कृमि समूहकी तरह थोड़े ही समयमें वध्य रूपसे गिने जाते हैं। जो सब डाकू लोग इस वनमें धर्मशास्त्रके अनुसार जीवन बिताते हैं, वे डाकू होनेपर भी मोक्षकी सिद्धि लाभ करनेमें समर्थ होंगे।

भीष्म बोले, उन सब डाकुओंने, कायव्यके शासनको प्रतिपालन किया था, उससे सब कोई उन्नति लाभ करके पापकर्म्मोंसे विरत हुए थे, कायव्यने साधुओंके विषयमें मङ्गल आचरण और डाकुओंको पापसे निवर्त्तन किया था, इससे उसने महती सिद्धि प्राप्त की थी, हे राजन्! जो लोग इस कायव्यके चरित्र विषयको सदा विचारते हैं, उन्हें बनवासी प्राणियोंसे कुछ भी भय नहीं होता। अधिक क्या कहें, सब दुष्ट प्राणियोंसे ही कुछ भय नहीं होता; वे वनके बीच राजा होकर निश्चित रूपसे निवास कर सकते हैं।

१३५ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, राजा लोग जिस उपायके जरिये कोष सञ्चय किया करते है इस विषयमें प्राचीन वृत्तान्तोंके जाननेवाले पण्डित लोग ब्रह्माकी कही हुई यह गाथा कहा करते हैं। कि यज्ञ करनेवाले ऋषियोंका धन और देवस्व हरण करना उचित नहीं है; क्षत्रिय राजा डाकू और क्रियाहीन लोगोंके धनको हरन कर सकते हैं। हे भारत! क्षत्रियोंको ही इन सब प्रजाओंको पालन करने और राज्य भोगनेका अधिकार है, इससे सब धन ही क्षत्रियोंके अधिकृत है दूसरेके नहीं। वह धन राजाके बल अथवा यज्ञका कारण हुआ करता है। जैसे लोग अभोग औषधियोंको काटके उनसे भोगार्थ वस्तुओंको पाक किया करते हैं, वैसे ही दुष्टोंकी हिंसा करके साधुओंको प्रतिपालन करो। जो पुरुष देवता, पितर और मनुष्योंको हविके जरिये अर्चना करता है, धर्म्म जाननेवाले पुरुष उसके अर्थको अनर्थक कहा करते हैं। हे राजन्! धार्म्मिक राजा वही प्रजा

रक्षा करे और उससे सब लोगोंको प्रसन्न करे, वैसे धनसे कोष सञ्चय न करे। जो अधर्मको धर्मगर्भका उपाय करके दुष्टोंसे धन लेके साधुओंको दान करते हैं, वेही सब धर्म्मोंके जाननेवाले हैं। जिसको जैसी शक्ति हो, वे उसहीके अनुसार परलोक जय करें। उद्भिज और वज्रकीट आदि जीव जैसे बिना कारणके ही उत्पन्न होके विस्तृत होते हैं; यज्ञ भी वैसे ही उत्पन्न होके क्रमसे प्रसारित हुआ करता है। जैसे गज आदिके शरीरसे दंस, मसक और चींटी आदिको पृथक् किया जाता है, अयाज्ञिक पुरुषके विषयमें वैसा ही व्यवहार करना उचित है; यह धर्म्मानुसार विहित होता है। जैसे भूमिपर पड़ा हुआ पांशु पत्थर आदिसे पिसकर अत्यन्त सूक्ष्म होजाता है; इस लोकमें धर्म्म भी उसी प्रकार सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म है।

१३६ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, हे राजन्! कार्य्य उपस्थित होनेके पहिले जो लोग उसके भावी फलको विचारते हैं, उनका नाम अनागत विधाता है; कार्य्य उपस्थित होनेपर जो लोग बुद्धि बलसे उसे सिद्ध करते हैं, उनका नाम प्रत्युत्पन्नमति है और उपस्थित कार्य्यमें आलसके वशमें होके जो लोग समय बिताकर विडम्बित होते हैं, उनका नाम दीर्घसूत्र है। इस भूमण्डलपर ऊपर कहे हुए तीन प्रकारके लोगोंके बीच अनागत विधाता और प्रत्युत्पन्नमति, ये दोनों पुरुष ही सुखलाभ किया करते हैं और दीर्घसूत्र पुरुष शीघ्र ही नष्ट होता है। इस समय दीर्घसूत्रको अवलम्बन करके कार्य्याकार्य्य विषय विषयमें एक उत्तम उपाख्यान कहता हूं, एकाग्रचित्त होकर सुनो। हे कुन्तीनन्दन! बहुत सी मछलियोंसे परिपूरित स्वल्प जलसे युक्त किसी एक तालाबमें मत्स्य नामकी तीन मछली सुहृदताके सहित आपसमें बड़ी होकर वास करती थीं। उन तीनों मछलियोंके बीच पहिली अनागत विधाता दूसरी प्रत्युत्पन्नमति और तीसरी दीर्घसूत्र थी। किसी समय मत्स्यजीवी मछुवाहोंने अनेक तरहसे जल निकलनेके मार्गके जरिये उस तालाबके जलको निम्न प्रदेशसे निकालनेका यत्न किया था। कार्य्य उपस्थित होनेपर क्रमसे उस तालाबका जल थोड़ा होने लगा। उसे देखकर दीर्घदर्शी अनागत विधाता भयके कारण दूसरे दोनों मित्रोंसे बोली कि "सब जलचारोंको यह आपद उपस्थित हुई है इससे जबतक जल निकलनेका मार्ग दूषित नहीं होता है, उतने ही समयमें जितनी जल्दी होसके, हम लोग दूसरी जगह गमन करें। जो अनागत अनर्थको उत्तम नीतिसे निवारण करते हैं, वे कभी संशययुक्त नहीं होते; इससे तुम लोगोंकी इस विषयमें अभिरुचि होवे, मैं जाती हूं।" ऐसा वचन सुनके दीर्घसूत्र बोली। हे भाई! तुम उत्तम कहती हो, परन्तु मेरा निश्चित विचार यह है, कि किसी विषयमें शीघ्रता करनी उचित नहीं है। अनन्तर प्रत्युत्पन्नमति दीर्घदर्शीसे बोली, समय उपस्थित होनेपर मैं न्यायके अनुसार किसी कर्त्तव्य विषयको परित्याग नहीं करती। महा बुद्धिमान दीर्घदर्शी ऐसा वचन सुनकर उस ही स्रोतके जलसे निकलकर किसी गहरे तालाबमें चली गई। अनन्तर मछुवाहोंने जब देखा, कि इस तालाबका सब जल निकल गया, तब अनेक उपायके जरिये सब मछलियोंको बांध लिया। उस जलाशयमें जल निकलने तथा विलोड़ित होनेके समय दीर्घसूत्र अन्य जलचरोंके सहित जालमें बंधा। मछुवाहोंने उस समय शनकी डोरीसे सब मछलियोंको गूंथना आरम्भ किया, प्रत्युत्पन्नमतिने उनके बीच प्रवेश करके मुखसे पहिले डोरी पकड़के स्थित हुआ। जालजीवियोंने सब मछलियोंको

गुंथी हुई समझा। अनन्तर जब बड़े तालाबमें सब मछलियें थोड़े जाने लगीं, तब पूर्व्वोक्त प्रत्युत्पन्नमति रस्सी छोड़के शीघ्र भाग गई और बुद्धिहीन ज्ञान रहित मन्दात्मा मूढ़ दीर्घसूत्र नष्टेन्द्रिय लोगोंकी तरह नष्ट हुई। इसी प्रकार जो पुरुष मृत्युकाल उपस्थित होनेपर उसी मोहके वशमें होकर नहीं जान सकते, वे दीर्घसूत्र मछलीकी तरह शीघ्र ही नष्ट होते हैं। "मैं अत्यन्त बुद्धिमान हूं,"—ऐसा समझके जो पुरुष पहिलेसे अपने कल्याणका मार्ग ठीक नहीं करता वह प्रत्युत्पन्नमतिकी तरह संशयसे युक्त हुआ करता है। अनागत विधाता और प्रत्युत्पन्न ये दोनों ही सुखलाभ करते हैं, और दीर्घसूत्र पुरुष नष्ट होता है। काष्ठा, कला, मुहूर्त दिन, रात्रि, लव, महीना, पक्ष, ऋतु कल्प, सम्वत्सर, पृथिवी और देश आदि काल नामसे वर्णित हुआ करते हैं; परन्तु वह दीख नहीं पड़ते। अभिलषित विषयकी सिद्धिके निमित्त जिसकी जैसी चिन्ता की जाती है; वह उस ही रीतिसे सिद्ध हुआ करता है। धर्म्म अर्थ और मोक्ष विषयक सब शास्त्रोंमें महर्षियोंके जरिये दीर्घदर्शी और प्रत्युत्पन्न मति प्रधान रूपसे वर्णित हुए और वे समय पर सब पुरुषोंके ही अभिमत हुआ करते हैं, जो परीक्षा पूर्व्वक कार्य्य सिद्ध करते हैं और जो लोग युक्तिके अनुसार सब कार्य्योंको पूरा करते हैं, वे देशकालके अनुसार सब लोगोंसे सम्मत होके दीर्घदर्शी और प्रत्युत्पन्नमतिसे भी अधिक फल पाते हैं।

१३७ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे भरत श्रेष्ठ! सब विषयोंमें ही आपकी बुद्धिश्रेष्ठ है, यह वर्णित हुई है; अनागत और उत्पन्न बुद्धि ही उत्तम है और दीर्घसूत्री बुद्धि नाश करनेवाली है। हे भरतकुलधुरन्धर! इससे इस समय आपकी परमबुद्धिके विषयको सुननेकी इच्छा करता हूं, जिसे अवलम्बन करनेसे राजा शत्रुओंमें घिरके भी मोहको नहीं प्राप्त होते। हे कुरुश्रेष्ठ! आप धर्म्मार्थ विषयकी व्याख्या करनेमें निपुण, धर्म्मशास्त्रके जाननेवाले और बुद्धिमान हैं, इससे मैं जो कुछ पूछता हूं, उसे मेरे समीप वर्णन करना आपको उचित है। राजा अनेक शत्रुओंसे घिर कर जिस प्रकार निवास करें, वह सब विधिपूर्व्वक सुननेकी इच्छा करता हूं। राजाके अत्यन्त विपद युक्त होने पर पहिलेके दुःखित हुए शत्रु लोग इकट्ठे होके उसकी पराजयके लिये यत्नवान होते हैं। महाबलसे युक्त राजा लोग जब सहाय रहित, अकेले निर्व्बल राजाको आक्रमण करनेका यत्न करें, तो वह किस प्रकार स्थिति करनेमें समर्थ होगा? हे भरतश्रेष्ठ! किस तरह वह शत्रु और मित्र लाभ करते और शत्रु तथा मित्रोंके बीच उन्हें कैसी चेष्टा करनी उचित है? मित्र लक्षण युक्त सुहृद यदि शत्रु बन जावे, तो उसके विषयमें कैसा व्यवहार करें और कैसा आचरण करके सुखी होते हैं? राजा किसके साथ विग्रह करे, और किसके सङ्ग सन्धि बन्धन करे तथा बलवान होने पर भी शत्रुओंके बीच किस प्रकार निवास करे। हे महाभाग शत्रुतापन! सब कर्त्तव्य विषयोंमें इसे ही आप कर्त्तव्य समझके मुझसे कहिये; सत्यसन्धि शान्तनुनन्दन भीष्मके अतिरिक्त इस विषयका वक्ता दूसरा कोई भी नहीं है, और इसका श्रोता भी अत्यन्त दुर्लभ है।

भीष्म बोले, हे भरतकुल तिलक तात युधिष्ठिर! तुमने जो प्रश्न किया वह युक्तियुक्त और उसके सुननेसे सुख उत्पन्न होता है; इससे आपदकालमें जैसा कार्य्य करना चाहिये वह सब गुप्त विषय कहता हूं, सुनो। कार्य्योंके सामर्थ्य निबन्धनसे शत्रु भी मित्र बन जाता है,

मित्र भी शत्रुभावसे दूषित होता है; इससे कार्य्यकी गति सदा ही अनित्य है; तब कर्त्तव्याकर्त्तव्य विषयको विशेषरूपसे निश्चय करना हो, तो देशकालका विचार करके किसीके विषयमें विश्वास करना और किसीके साथ विग्रह करना उचित है। हे भारत! हितैषी पण्डितोंके साथकी भिक्षा करके भी सन्धि करनी उचित है और प्राणरक्षाकेवास्ते शत्रुके साथ भी सन्धि करनी योग्य है। जो मूर्ख पुरुष शत्रुओंके साथ सन्धि स्थापित नहीं करते, वे कोई अर्थ वा फल लाभ नहीं कर सकते और जो पुरुष अर्थयुक्ति अवलम्बन करके समयके अनुसार शत्रुओंके साथ सन्धि और मित्रोंके सङ्ग विरोध करते हैं, महत् फल लाभ करते हैं। प्राचीन विषयोंके जाननेवाले पण्डित लोग इस विषयमें किसी वटवृक्षके निकटमें स्थित बिड़ाल और मूषिकके सम्वाद युक्त प्राचीन इतिहासका प्रमाण दिया करते हैं। किसी महावनके बीच अनेक तरहके पक्षियोंसे युक्त, लतासमूहसे घिरा हुआ, बहुत बड़े शाखा और बादलकी तरह शीतल छायासे युक्त। सब वनमें व्याप्त व्याल और मृगसमूहसे परिपूरित बहुत बड़ा मनोहर बटका वृक्ष था। पलित नाम एक महाबुद्धिमान मूषिक उसके मूलस्थलको अवलम्बसे सौ दरवाजेको बिल बनाकर उसमें वास करता था। और पक्षियोंको भक्षण करनेवाला लोमश नाम बिड़ाल पहिलेसे ही उस वृक्षकी शाखाका सहारा करके परम सुखसे निवास करता था। वनवासी कोई चाण्डाल प्रतिदिन सूर्य्य अस्त होनेपर उस बट वृक्षके समीप आके पशुपक्षियोंके बन्धनके निमित्त कूटयन्त्र विस्तार किया करता था वह वहांपर यथा रीतिसे तांतमय जालको बिछाके घरमें जाकर सुखसे सोता और रात बीतनेपर सबेरे वहां आके उपस्थित होता था, रातके समय अनेक तरहके मृग उस पाशजालमें बंध जाया करते थे। किसी दिन वह बिड़ाल प्रमादरहित होके भी उस जालमें बंध गया था। सदा आततायी शत्रु उस महाबुद्धिमान बिड़ालके बंधने पर पलित नाम चूहा अवसर पाके निर्भयताके सहित घूमने लगा। मूषिक विश्वस्तभावसे उस वनके बीच भक्ष्यवस्तुओंको खोजते हुए घूम रहा था, कुछ समयके अनन्तर उस जालमें बंधा हुआ मांस देखा, फिर उसने जालमें बंधे हुए शत्रुके विषयमें मनही मन उपहास करते हुए कूटयन्त्रके ऊपर चढ़के मांस भक्षण करने लगा। उसने मांस भक्षणमें आसक्त होके एक महाघोर निज वैरीको समीप आते देखा। पृथ्वीपर बिलमें वास करनेवाले उस जन्तुका शरीर शर-पुष्पके समान, उसके नेत्र लालवर्ण, वह अत्यन्त चञ्चल था और उसका नाम हरितनकुल था। वह चूहेका गन्ध सूंघके शीघ्र उधर आने लगा और उसे भक्षणके वास्ते ऊर्द्धमुख होकर पृथ्वी पर स्थित रहा।

इधर उस चूहेने उस वृक्षके कोटरमें रहनेवाले चपाचर तीक्ष्णतुण्ड चन्द्रक नाम एक दूसरे वैरी उलूकको वृक्षकी डालियोंपर भ्रमण करते देखा। चूहा नेवला और उलूकके बीच स्थित होकर अत्यन्त भयके वशमें होकर इस प्रकार चिन्ता करने लगा, कि "यह अत्यन्त दुःख भय आपदके समय चारों ओरसे भय उत्पन्न और मरण सम्भव तथा मरण उपस्थित होने पर हितैषी पुरुषको कैसा कार्य्य करना चाहिये।" चूहा इसी प्रकार चारों ओरसे घिरकर सब तरफ भयका कारण देखते हुए भयसे दुःखित होके सूक्ष्म बुद्धिसे विचार करने लगा; कि विपद नष्ट होनेके उपायके जरिये क्लेश निवारण करके जीवनके समयको प्रशस्त करना उचित है, परन्तु चारों ओरसे मेरे समीप यह संशय युक्त समस्त आपद उपस्थित हुई हैं। मैं यदि पृथ्वी पर गमन करूं तो सहसा नकुल आके मुझे भक्षण करेगा,

यहां पर रहनेसे उलूकके ग्रासमें पतित होना पड़ेगा और बिड़ाल जालसे छूटने पर मुझे भक्षण करनेमें विलम्ब न करेगा, परन्तु मेरे समान बुद्धिमान पुरुष कभी मोहित होनेयोग्य नहीं हैं, इससे युक्ति और बुद्धिशक्तिके प्रभावसे जहांतक होसकेगा, मैं अपने जीवन रक्षाके वास्ते यत्न करूंगा। नीतिशास्त्रको जाननेवाले, बुद्धिमान ज्ञानी पुरुष कठिन विपदमें पड़के उसमें नहीं फंसते। इस समय बिड़ालसे उपकारके अतिरिक्त दूसरा उपाय नहीं देखता हूं; परन्तु यह विषम शत्रु इस समय विपदग्रस्त हुआ है; इसका महत् उपकार करना मुझे उचित मालूम होता है। इस समय मैं तीन शत्रुओंके बीच घिरके किस प्रकार जीवन रक्षाकी आशा कर सकता हूं; इससे बिड़ाल मेरा सदाका शत्रु है, तौभी उसका आश्रय ग्रहण करना ही उचित मालूम होता है मैं नीति शास्त्रको अवलम्बन करके इसे हितका उपदेश प्रदान करूं, इस हीके जरिये इन सब शत्रुओंको बुद्धि पूर्व्वक वञ्चना कर सकूंगा। यह मूढ़ बिड़ाल मेरा सदाका शत्रु है, इस समय अत्यन्त विपदग्रस्त हुआ है, इससे स्वार्थ साधन करनेके लिये सङ्गतिके क्रमसे यदि इसे सम्मत कर सकूं, तभी जीवनकी रक्षा होगी। यह इस समय विपदग्रस्त हुआ है, इससे मेरे साथ सन्धि करनेसे कर भी सकता है। बलवान पुरुष विषम विपदमें पड़नेसे जीवनकी रक्षाके निमित्त सन्निकृष्ट शत्रुके साथ सन्धि करें, ऐसा प्राचीन आर्य्य लोग कहा करते हैं, पण्डित शत्रु भी अच्छा है; मूर्ख मित्र कदापि उत्तम नहीं है। इस समय शत्रु बिड़ालके निकट मेरा जीवन प्रतिष्ठित है; जो हो, मैं इससे आत्मा मुक्तिका उपाय करूंगा, यह शत्रु मूर्ख होने पर भी मेरे सहवासके कारण पण्डित हो सकेगा। चूहा शत्रुओंमें घिरकर इसी प्रकार चिन्ता करने लगा।

अनन्तर सन्धि विग्रहके समय और प्रयोजन सिद्धिके उपायको जाननेवाला चूहा धीरज देके बिड़ालसे यह वचन बोला, हे बिड़ाल! मैं सुहृदभावसे तुमसे कहता हूं, कि तुम जीवित हो न? मैं तुम्हारे जीवनकी रक्षा हो, ऐसी ही इच्छा करता हूं, क्यों कि वह हम दोनोंके वास्ते कल्याणकारी है, हे प्रिय दर्शन! तुम भय मत करो, सुखपूर्व्वक जीवित रहोगे। तुम यदि मेरी हिंसा करनेकी इच्छा न करो, तो मैं तुम्हें विपदसे छुड़ाऊंगा। इस विषयमें कोई उत्तम उपाय है, और मेरे अन्तःकरणमें मालूम होरहा है, जिसके जरिये तुम मेरे सहारे विपदसे छूटोगे, और मैं भी कल्याण लाभ कर सकूंगा आत्मबुद्धि विचारसे मैंने अपने और तुम्हारे कल्याण सिद्धिके वास्ते ऐसा उपाय देखा है, वह मेरे और तुम्हारे दोनोंके ही वास्ते कल्याणकारी है। हे बिड़ाल! यह नकुल और उलूक पापबुद्धि अवलम्बन करके मेरे सम्मुख वर्त्तमान हैं, ये दोनों यदि मुझे आक्रमण न कर सकें, तभी इस समय मेरा मङ्गल है। यह वृक्षका डालके ऊपर बैठा हुआ चञ्चल नेत्रवाला पापात्मा उलूक चिल्लाते हुए मुझे देख रहा है, इससे मैं उसके भयसे अत्यन्त व्याकुल होरहा हूं। साधुओंकी आपसमें सप्त पद उच्चारण पूर्व्वक आलापसे ही मित्रता होती है, तुम मेरे वही मित्र और पण्डित हो, मैं तुम्हारे साथ यथार्थ मित्रका कार्य्य करूंगा, अब तुम्हें कुछ भय नहीं है। हे बिड़ाल! तुम मेरे बिनासहाय जालको काटनेमें समर्थ न होगे, यदि मेरी हिंसा न करो, तो मैं तुम्हारा समस्त पाश काट दूंगा, तुम इस वृक्षके अग्रभाग और मैं इसके मूलको अवलम्बन करके वास कर रहा हूं हम दोनों ही बहुत दिनोंसे इस वृक्षका आश्रय करके वास कर रहे हैं, वह तुमसे छिपा नहीं है। जो पुरुष किसीका विश्वास नहीं करता और जिसका कोई विश्वास नहीं करते वैसे सदा

अतएव इन दोनों पुरुषोंकी पण्डित लोग प्रशंसा नहीं करते, इसलिये हम लोगोंके सदाका सहवास और प्रीति परिवर्द्धित हो; प्रयोजनका समय बीतनेपर पण्डित लोग निन्दा किया करते हैं, इससे इस विषयमें यही यथार्थ युक्ति समझो, तुम यदि मेरे जीवन रक्षाके अभिलाषी होगी, तो मैं भी तुम्हारे जीवनकी रक्षा करनेके वास्ते इच्छा करूंगा। कोई मनुष्य काष्ठके सहारे अत्यन्त गहरी महानदी पार होता है, वैसे ही हम दोनोंके मिलापका परिणाम सुखप्रद होवे मैं तुम्हें जालसे छुड़ाऊंगा, तुम भी मुझे विपदसे बचाओगे। मूषिकवर पलित इसी प्रकार दोनोंके हितकर युक्तियुक्त ग्रहणीय वचन कहके समयकी अपेक्षा करते हुए देखने लगा।

अनन्तर चूहेका शत्रु विचक्षण बिड़ाल उसका युक्तियुक्त सुनने योग्य सुन्दर वचन सुनके उत्तर दिया, और वह बुद्धिमान तथा वाक्य निपुण बिड़ाल चूहेके वचनको सुनके और अपनी अवस्था देखके सन्धि करनेमें सम्मत हुआ। अन्तमें तीक्ष्ण दांत और वैदूर्य्यनेत्र बिड़ालोंमें मुख्य लोमश चूहेको धीरे धीरे देखके बोला। हे प्रियदर्शन! तुम्हारा कल्याण होवे, तुम जो मेरे जीवन रक्षाके वास्ते यत्न करते हो उससे मैं अत्यन्त ही आनन्दित हुआ हूं यदि कल्याणका उपाय जानते हो, तो करो; बिलम्ब मत करो। मैं आपदग्रस्त हूं और तुम मुझसे भी अधिक आपदमें पड़े हो, इससे दोनों आपदग्रस्तोंकी सन्धि होवे; बिलम्बका प्रयोजन नहीं है। समयपर जिसमें कार्य्य सिद्धि हो, वैसा ही करो; मैं इस क्लेशकारी विपदसे छूटनेपर तुम्हारे किये हुए उपकारको व्यर्थ नहीं करूंगा। मैं मान त्यागके तुम्हारा अनुरक्त, भक्त, शिष्य, हितकारी होकर शरणागत हुआ हूं।

मूषिकवर पलितने बिड़ालका ऐसा वचन सुनके उसे अपने वशमें जानकर विनयपूरित अर्थयुक्त हितकर वचनसे बोला, कि आपने जो उदार वचन कहे, वह तुम्हारे समान पुरुषके विषयमें विचित्र नहीं है, दोनोंके हितके निमित्त मैंने जिस उपायका विधान किया है, वह मुझसे सुनो। नेवलेसे मुझे अत्यन्त भय लगता है, इससे मैं तुम्हारे समीप बैठता हूं, मैं तुम्हारी रक्षा करनेमें समर्थ हूं; इससे आप मेरी रक्षा कीजिये, बध न करना; चन्द्रक उल्लू मुझे आक्रमण करनेकी आशा करता है, इससे उससे मुझे बचाओ। हे मित्र! मैं सत्यपूर्व्वक शपथ करता हूं; कि तुम्हारा समस्त पाश काट दूंगा।

लोमशने पलित चूहेका युक्ति और अर्थयुक्त वचन सुनके हर्षके वशमें होकर उसे देखके स्वागत वचनसे सम्मानित किया। अनन्तर वह वीरवर बिड़ाल सुहृदभावसे स्थित हो प्रसन्नता और शीघ्रतासे पलितको सम्मानित करके विशेष चिन्ताके अनन्तर बोला, हे मित्र! जल्दी आओ, तुम्हारा मङ्गल होवे, तुम मेरे प्राण समान सखा हो। हे बुद्धिमान! तुम्हारी ही कृपासे मैं जीवन लाभ करूंगा। इस सङ्कटके समयमें मैं तुम्हारा जो कुछ उपकार कर सकूं, उसका तुम आज्ञा करो; मैं वैसा ही करूंगा। हे मित्र! हम दोनोंमें सन्धि रहे, इस विपदसे छूटनेपर मैं मित्रों और बन्धु बान्धवोंके सहित तुम्हारा जो कुछ प्रिय और हितकर कार्य्य होगा, वह सब सिद्ध करूंगा। हे प्रियदर्शन! इस विपदसे छूटनेपर मैं तुम्हारी प्रसन्नता तथा सत्कार साधन करूंगा। उपकृत पुरुष बहुतसा प्रत्युपकार करके भी पूर्व्व उपकारकी समानता नहीं कर सकता। उपकृत पुरुष पहिले उपकारका स्मरण करके प्रत्युपकार किया करता है, और प्रथम उपकर्त्ता निष्कारण ही उपकार करता है।

भीष्म बोले, चूहेने स्वार्थसाधनके लिये बिड़ालको इस प्रकार सम्मत करके विश्वासपूर्व्वक उस अपराध करनेवालेके गोदमें प्रवेश

किया। बुद्धिमान चूहेने बिड़ालसे इस प्रकार आश्वासित होकर पिता माताकी तरह विश्वस्त होकर उसकी छातीपर शयन किया। नकुल और उल्लू चूहेको बिड़ालके शरीरमें लीन होते देखकर निराश हुए और उन दोनोंकी परम प्रीति देखके अत्यन्त भयभीत तथा विस्मययुक्त होगये। वे लोग बलवान, बुद्धिमान, सत्स्वभाव और सन्निहित होके भी बलपूर्व्वक चूहेको आक्रमण करनेमें असमर्थ होगये। उल्लू और नकुल बिड़ाल और चूहेको कार्य्यवशसे सन्धि करते देखकर दोनों ही शीघ्र ही निज स्थानपर चले गये।

हे महाराज! अनन्तर देशकालका जाननेवाला पलितला समयकी उपेक्षा करते हुए थोड़ा थोड़ा बिड़ालके शरीरके पाशको काटने लगा। अनन्तर बिड़ाल बन्धनके दुःखसे अत्यन्त क्लेशित रहके चूहेको पाश काटनेमें विलम्ब करते देखकर आतुरताके सहित शीघ्रता करने लगा।

बिड़ाल बोला, हे मित्र! तुम विलम्ब क्यों करते हो? स्वयं कृतकार्य्य होकर क्या तुम मेरी अवज्ञा करते हो। हे शत्रुनाशन! व्याधा आगे आरहा है, इससे तुम जल्दी पाश काटो। शीघ्रता करनेवाले बिड़ालके ऐसा कहनेपर बुद्धिमान पलित चूहेने अपक्वबुद्धि बिड़ालसे पथ्य और आत्महितकर बचन कहा। हे प्रियदर्शन! तुम मौनभावसे रहो, शीघ्रता और भय करना, तुम्हें उचित नहीं है, मैं समयज्ञ हूं इससे प्रकृत समय परित्याग नहीं करता। हे मित्र! असमयमें आरम्भ कार्य्य करनेवालेका प्रयोजन सिद्ध नहीं होता और वह कार्य्य ही समयपर न होनेसे महत् भय उत्पन्न करता है तुम्हारे असमयमें बन्धनसे छूटनेपर तुमसे मुझे भयकी सम्भावना है, इससे समयकी प्रतीक्षा करो, शीघ्रता क्यों करते हो? शस्त्रधारी चाण्डालको जब आते देखोगे, तभी हम लोगोंको ज्योंही भय होगा; त्योंही तुम्हारे पाशको काट दूंगा; उस ही समय तुम बन्धनसे छूटके वृक्षके ऊपर चढ़ोगे, तुम्हारे जीवन रक्षाके अतिरिक्त मुझे दूसरा कोई भी कार्य्य नहीं है। हे लोमश! तुम्हारे त्रसित तथा डरकर भागनेपर मैं बिलमें प्रवेश करूंगा; तुम भी वृक्षकी शाखाको अवलम्बन करोगे। चूहेने जब आत्महित साधनके निमित्त बिड़ालसे ऐसा कहा, तब जीनेकी इच्छा करनेवाला वाक्य तत्त्वज्ञ महाबुद्धिमान लोमश आत्मकार्य्यको पूर्ण रीतिसे सिद्ध करनेके निमित्त शीघ्रता करके पाशको काटनेमें विलम्ब करनेवाले चूहेसे बोला, मित्र साधु लोग प्रीतिपूर्व्वक इस प्रकार मित्रका कार्य्य नहीं करते; मैंने जैसे शीघ्रताके सहित तुम्हें विपदसे मुक्त किया, तुम्हें भी वैसे ही शीघ्रताके सहित मेरा हित साधन करना उचित है। हे बुद्धिमान्! इस समय जिससे हम दोनोंका कल्याण होवे, तुम उस विषयमें यत्नवान करो; अथवा यदि तुम पहिले बैरको स्मरण करके समय बिताओगे, तो इस पापके कारण निश्चय रूपसे तुम अपनी आयुको नष्ट होती देखोगे। यदि अज्ञानताके कारण पहिले मैंने कुछ पाप कर्म्म किया हो,तो उसे तुम स्मरण मत करो, मैं क्षमा प्रार्थना करता हूं; तुम मेरे ऊपर प्रसन्न हो जाओ। बिड़ालके ऐसा कहने पर शास्त्र जाननेवाला बुद्धिमान विज्ञ चूहा उस समय उससे यह हितकर बचन बोला कि, हे बिड़ाल! तुमने निज प्रयोजन सिद्धिके लिये व्याकुल होके जो सब बचन कहा, उसे मैंने सुना है; और मैंने भी अपने प्रयोजन सिद्धिकी अभिलाषासे कातर होके तुमसे जो कहा है, उसे तुम जानते हो। जो मित्र अत्यन्त भयभीत और जो भयसे विचलित है, सांपके मुखसे निज हाथ बचनेकी तरह उसकी यथा रीतिसे रक्षा करनी उचित है। जो पुरुष बलवानके साथ सन्धि करके आत्मरक्षाका उपाय नहीं करता, उसके भुक्त अन्न आदि अपथ्य वस्तुकी तरह

उपकारक नहीं होते । इस जगत्‌में बिना कारणके कोई पुरुष किसीका मित्र वा सुहृत् नहीं होता ; स्वार्थ साधनकेही निमित्त शत्रु मित्रोंका संघटन हुआ करता है । जैसे पाले हुए हाथियोंसे जङ्गली हाथियोंको बांधते हैं, वैसे ही स्वार्थके सहारे ही स्वार्थ साधन हुआ करता है. साध्य हो जानेपर कोई करनेवालेको ओर नहीं देखता ; इससे सब कार्य्योंको ही विशेष रीतिसे करना योग्य है । हे लोमश ! तुम उस समय व्याधाके भयसे भागनेमें तत्पर होगे, इससे मुझे पकड़ न सकोगे । मैंने अनेक तांतोंको काट दिया है, अब केवल एक ही तांत बाकी है ; उसे भी जल्दी काटूंगा. तुम निश्चिन्त रहो । बिपदयुक्त चूहा और बिड़ालके इसी प्रकार वार्त्तालाप करते हुए रात्रि बीत कर सबेरा हुआ । रात्रि बीतकर सबेरा होनेपर लोमशके हृदयमें भय उत्पन्न होने लगा । अनन्तर भोरके समय एक विकृत-रूपवाला, कृष्ण पिंगल वर्ण, स्थूल नितम्बवाला, केशरहित रुक्ष-मूर्त्ति, ऊंचे कानोंसे युक्त, बृहत् वक्र कुत्तोंके समूहसे घिरा हुआ, मलिन, बदसूरत और हाथमें शस्त्र लिये हुए परिघ नाम चाण्डाल दीख पड़ा । बिड़ाल उस यमदूतके समान चाण्डालको देखकर त्रस्तचित्त तथा भयभीत होके चूहेसे बोला, मित्र ! इस समय क्या करोगे ? चूहेने बिड़ालका ऐसा बचन सुनते ही पाश काट दिया । बिड़ालने बन्धनसे छूटकर और शत्रुके महाघोर भयसे मुक्त होकर उस वृक्ष पर चढ़के उसकी शाखाका अवलम्बन किया पलित चूहा भी बिलमें घुस गया ।

हे भरतश्रेष्ठ ! इधर चाण्डाल वागुरा ग्रहण करके क्षण भरमें सब तरफ देखके निराश होकर निज स्थान पर चला गया । अनन्तर वृक्षकी शाखा पर बैठे हुए लोमशने वैसी विपदसे छूटके तथा दुर्लभ जीवन लाभ करके बिलके बीच स्थित पलितको पुकारके कहा, हे मित्र ! तुम मेरे साथ क्यों बिना कुछ वार्त्तालाप किये ही सहसा निज स्थान पर गये हो ? तुमने मेरा जैसा उपकार किया है, वह मुझे सदाके वास्ते स्मरणीय है और मैं तुम्हारा उपकार करनेमें समर्थ हूं ; इसे जान कर भी तुम मेरी शङ्का तो नहीं करते हो ? हे मित्र ! तुम मेरे बिश्वास पात्र होके प्राणदान करके सुख भोगके समय निकट क्यों नहीं आते हो ? जो पुरुष पहिले मित्रता करके फिर उसका अनुष्ठान नहीं करता, वह नीचबुद्धि कष्टकारी आपदके समय मित्र लाभ करनेमें समर्थ नहीं होता । हे मित्र ! तुमने सामर्थके अनुसार मेरा सत्कार किया है, मैंने भी आत्म सुखमें आसक्त होकर तुम्हारे साथ मित्रता की है, इससे मेरे साथ सुख भोग करना तुम्हें उचित है । मेरे जो सब बन्धुबान्धव, सम्बन्धी आदि आत्मीय हैं, वे सब इस प्रकार तुम्हारा सम्मान करेंगे, जैसे शिष्य लोग गुरुकी सेवा करते हैं ; तुम मेरे प्राणदाता हो, इससे मैं भी तुम्हारा और तुम्हारे बन्धु बान्धवोंका सम्मान करूंगा ; कौन कृतज्ञ पुरुष अपने जीवन दाताकी पूजा नहीं करता ? तुम मेरे शरीर, घर तथा सब धनके स्वामी बनो और मुझे सत् उपदेश प्रदान करो । हे बुद्धिमान् ! तुम मेरे अमात्य बनो और पिताकी तरह मुझे बुद्धि दान किया करो । मैंने अपने जीवनकी शपथ करके कहा है कि मुझसे तुम्हें कुछ भी भय नहीं है ; तुम बुद्धि कौशलमें साक्षात् शुक्राचार्य्य हो इससे मन्त्रबलसे मेरा जीवन दान करके तुमने हम लोगोंके ऊपर अधिकार किया है । बिड़ालने इसी प्रकार चूहेसे सान्त्व बचन कहा, तब पर-मार्थको जाननेवाला चूहा कोमल भावसे आत्महितकर बचन कहने लगा । वह बोला, हे लोमश ! तुमने जो कुछ कहा, मैंने वह सब सुना ; इस समय मैं जो कुछ बिचार सिद्ध जानके कहता हूं, उसे सुनो । शत्रु मित्र दोनोंको ही

विशेष रूपसे मालूम करना उचित है, इससे ही लोग प्राज्ञ सम्मत अत्यन्त सूक्ष्म विषय कहा करते हैं। शत्रुरूपी मित्रों और मित्ररूपी शत्रुओंके साथ सन्धि होने पर भी काम क्रोधके वशमें रहनेवाले पुरुष उसे प्रकृत रीतिसे मालूम नहीं कर सकते। इस जगत्में कभी स्वाभाविकही कोई किसीका मित्र वा शत्रु नहीं होता, कार्य्य वशसे ही मित्र और शत्रु हुआ करते हैं। जो पुरुष निज प्रयोजन सिद्धिके वास्ते जिसे अवलम्बन करके जीवन धारण करते हैं, यदि उसकी पीड़ा देखें, तो प्राण त्याग किया करते हैं, जबतक उस भावका विपर्य्यय नहीं होता, तबतक वह उसके मित्र हुआ करते हैं। सुहृदता और शत्रुता स्थिर नहीं रहती; प्रयोजनसे ही शत्रु वा मित्र हुआ करते हैं। कालक्रमसे मित्र भी शत्रु होता और शत्रु भी मित्र हुआ करता है, इससे स्वार्थ ही बलवान है। जो पुरुष प्रयोजन न जानके मित्रोंका विश्वास करता है, वह शत्रुओंके विषयमें अविश्वास स्थापित किया करता है, उसका जीवन विचलित होता है। शत्रु वा मित्रके विषयमें प्रयोजन न जानके जो पुरुष प्रसन्न-चित्त होता है, उसकी भी बुद्धि विचलित होजाती है। अविश्वासी पुरुषका विश्वास न करे, विश्वासी पुरुषका भी अत्यन्त विश्वास करना उचित नहीं है; क्योंकि विश्वाससे उत्पन्न हुआ भय विश्वासकी जड़का काटता है। पिता, माता, पुत्र, मामा, भानजे सम्बन्धी और बान्धव आदि प्रयोजनके अनुसार प्रिय हुआ करते हैं। प्रिय पुत्रके पतित होने पर पिता माता उसे परित्याग करके जन समाजमें अपनी रक्षा करते हैं, इससे स्वार्थ कैसा सारवान है; उसे मालूम करो। हे बुद्धिमान्! जो पुरुष किसी विपदसे छूटने पर फिर शत्रुके सुखका उपाय खोजता है; उसकी प्रायः निष्कृति नहीं होती; तुम वटवृक्षसे इस स्थान पर उतरे थे; परन्तु पहिले ही जो आलम्बन संयोजित हुआ था; चपलताके कारण उसे न जान सके। मनसे चञ्चल दूसरा कुछ भी नहीं है, इससे दूसरेकी चपलता किस प्रकार अधिक हो सकती है? इसलिये चित्त चञ्चल होनेसे निश्चय ही सब कार्य्य नष्ट होते हैं। इस समय तुम जो मुझसे मधुर वचन कहते हो, वह मुझे प्रसन्न करनेवाला है यह ठीक है, परन्तु मैं भी विस्तार पूर्व्वक मित्रताके उपायसे युक्त जो कथा कहता हूं, उसे सुनो। इस संसारमें लोग कारणके अनुसार ही सबके प्यारे होते हैं और कारणके अनुसार ही द्वेष हुआ करता है; जीव मात्र ही प्रयोजन चाहनेवाले हैं, इससे बिना कारणके कोई किसीको प्रिय नहीं होता, दो सहोदर भाइयोंका सौभ्रात्र और दम्पतिका परस्पर प्रेम जब बिना कारणके नहीं है, तब इस जगत् में किसीकी प्रीति निष्कारण ही सङ्घटित होती है, ऐसा नहीं देखा गया है; तब भाई और भार्य्या किसी कारणसे क्रुद्ध होनेपर भी वे लोग स्वभाविक प्रसन्न हुआ करते हैं, दूसरे लोग उस तरह प्रीतियुक्त नहीं होते। इस जगत्में कोई दानके जरिये प्रिय होता है, कोई प्रिय वचनसे प्यारा बनता है; दूसरे कार्य्यके निमित्त मन्त्र, होम और जपसे प्रीतिलाभ करते हैं। हम दोनोंकी प्रीति विशेष कारणसे उत्पन्न हुई थी, इस समय उस कारणकी समाप्ति हुई है, इससे दूसरा कोई श्रेष्ठ कारण रहनेपर भी वह प्रीति निवर्त्तित होती है। ऐसा कौनसा कारण है,—जिससे मैं तुम्हारा प्यारा बन सकूं, बिना कारणके जैसा व्यवहार करना होता है, उसे मैं विशेष रूपसे जानता हूं। काल ही कारणको सुधारता है, कारण कभी स्वार्थसे रहित नहीं होता। बुद्धिमान पुरुष स्वार्थ विषयमें निपुण हैं, इससे लोग प्राज्ञ पुरुषोंका ही अनुवर्त्तन किया करते हैं। स्वार्थको जाननेवाले विद्वान पुरुषके विषयमें ऐसा वचन कहना तुम्हें उचित नहीं है। तुम

मेरे विषयमें स्नेह प्रकाश कर सकते हो, यह ठीक है, परन्तु यह उस स्नेहके प्रकाशका समय नहीं है; इससे स्वार्थके कारणसे मैं अस्थिर सन्धि-विग्रह विषयमें विलक्षण रीतिसे स्थिर हूं। यह सब सन्धि-विग्रह क्षण क्षणमें बादलकी तरह अनेक प्रकारके रूप धारण करते हैं; तुम आज ही मेरे शत्रु थे, अभी हमारे मित्र हुए; फिर आज ही मेरे शत्रु हुए हो; इससे सब योगोंकी कैसी चपलता है, उसे देखो। पहिले जबतक कारण था, तबतक हम लोगोंकी मित्रता थी, इस समय वह मित्रता चली गई है, वह कालके अनुसार दूसरे किसी कारणसे नहीं हो सकती। तुम स्वाभाविक ही मेरे शत्रु हो परन्तु दूसरे वैरीसे मेरी रक्षा करनेकी सामर्थ्यके कारण मित्र हुए थे, उस मित्रताका कार्य्य निवृत्त हुआ है। अब स्वभावने शत्रुभाव धारण किया है, इससे मैं प्राचीन पुरुषोंके बनाये हुए शास्त्रोंको जानके किस प्रकार तुम्हारे कृतपाशमें प्रवेश करूं? मैं तुम्हारे बलवीर्य्यके सहारे विपदसे मुक्त हुआ हूं, तुम भी मेरी सामर्थके प्रभावसे विपदसे पार हुए हो; इससे जब आपसका अनुग्रह निवृत्त हुआ है, तब फिर समागम नहीं होसकता। हे प्रियदर्शन! इस समय तुम कृतार्थ हुए हो, मेरा भी प्रयोजन सिद्ध हुआ है, इससे मुझे भक्षण करनेके अतिरिक्त आज तुम्हारा मेरे सङ्ग कुछ भी कार्य्य नहीं है। मैं भक्ष्य हूं, तुम भोक्ता हो, मैं निर्व्वल और तुम बलवान हो; ऐसे असदृश सम्बन्धके स्थानमें हम दोनोंकी सन्धि नहीं होसकती। इस समय मैं तुम्हारे बुद्धि कौशल विषयमें ऐसा ही मालूम करता हूं कि आपदसे छूटके अब तुम अनायास कर्म्मके अदिसे भक्ष्य लाभकी इच्छा करते हो, तुम भक्ष्यके वास्ते ही बन्धे थे, और क्षुधासे पीड़ित होनेपर मेरे सहारे मुक्त हुए हो। इस समय शास्त्रसिद्ध बुद्धि अवलम्बन करके मुझे भक्षण करना, मैं तुम्हें भूखा समझता हूं और तुम्हारे भोजनका समय भी उपस्थित हुआ है। इससे तुम मुझे ही लक्ष्य करके भक्ष्य खोज रहे हो। मित्र! तुम स्त्री-पुत्रोंके बीचमें रहके भी अब मेरे साथ सन्धि करके सेवा करनेमें यत्नवान होरहे हो; तब मैं उसमें सम्मत होनेमे समर्थ नहीं हूं। तुम्हारी प्रियभार्य्या और प्रणयीपुत्र तुम्हारे सङ्ग मुझे स्थित देखके भक्षण करनेमें क्यों विरत होंगे? समागमका कारण शेष हुआ है, इससे अब मैं फिर तुम्हारे साथ न मिलूंगा; यदि तुम कृतज्ञता स्मरण करो, तो स्वस्थ रहके मेरी कल्याणकी चिन्ता करते रहो, जो असत् शत्रु क्लेश युक्त और भूखा होकर अपना भक्ष्य खोजता है, कौन बुद्धिमान पुरुष उसके अधिकारमें गमन करता है? तुम्हारा कल्याण होवे, मैं जाता हूं। मैं तुमसे दूर रहके भी व्याकुल होता हूं। हे लोमश! इससे मैं तुम्हारे साथ न मिल सकूंगा, तुम निवृत्त रहो। और यदि तुम कृतज्ञ होनेकी अभिलाष करते हो, तो बन्धुत्वका स्मरण करो; मेरे विश्वस्त तथा असावधान रहनेपर कभी मेरा अनुसरण न करना, ऐसा होनेसे ही सौहृद्य-रक्षा हुई।

निर्व्वल पुरुषको बलवानके साथ संसर्ग रखना कभी उत्तम नहीं है, भयका कारण शेष होनेपर भी निबल पुरुषको बलवानके समीप सदा भय करना उचित है। यदि तुम्हारा दूसरा कुछ प्रयोजन हो तो कहो क्या करूं? मैं तुम्हारी अभिलषित सब वस्तुओंको ही प्रदान कर सकता हूं परन्तु आत्म प्रदान नहीं कर सकता; अपने वास्ते पुत्र, कन्या, धन, रत्न और राज्य पर्य्यन्त परित्याग किया जासकता है, इससे सर्व्वस्व परित्याग करके भी स्वयं अपनी रक्षा करे। अपनी रक्षाके वास्ते जो सब धन रत्न आदि ऐश्वर्य्य शत्रुके हाथमें समर्पण किया जाता है, जीवित रहनेपर वह सब फिर निज हस्त-